गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
नवम्बर-दिसम्बर 2023
Vol. 11, Issue 11-12

Impact Factor : 4.553

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

संपादक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed International Refereed Journal

वर्ष : 11 अंक : 11–12 नवम्बर–दिसम्बर : 2023 आईएसएसएन : 2321–8037

संस्थापक सम्पादिका :

स्मृति शेष डॉ. विश्वकीर्ति

संरक्षक :

हरविन्द्र कमल, पटियाला

मार्गदर्शन :

डॉ. राजेन्द्र गोदारा

श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी

लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्रेष्ठ चौधरी

सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

प्रधान सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

सचिव, गीनादेवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

सम्पादक :

डॉ. रेखा सोनी

शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

सम्पादकीय कार्यालय :

6–एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान–335001

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर (राजस्थान)

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज, अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

प्रो. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग तोशाम (हरियाणा)

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय, सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुकेश चंद
राजकीय महाविद्यालय, बाडी, धौलपुर, राजस्थान।

डॉ. पवन ठाकुर
बरेली (उत्तर प्रदेश)

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर, अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

कानूनी सलाहकार : **डॉ. रामफल दलाल** एडवोकेट, भिवानी
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट, पटियाला।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed International Refereed Journal

(Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	06–06
2.	आज के युग में दृश्य–श्रव्य अनुवाद : एक संक्षिप्त परिचय	अनुश्री पी. एस.	07–12
3.	अनुवाद संकल्पना के संदर्भ में मानक अनुवाद में पुनरीक्षण एवं मूल्यांकन का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. रंजीत कुमार	13–24
4.	वैश्वीकरण दौर में भारतीय शिक्षा और भूगोल शिक्षण	डॉ. नटवर तेली	25–29
5.	Nirad C Chaudhury : AS AN AUTOBIOGRAPHER	Poonam Yadav	30-34
6.	ज्ञान चतुर्वेदी की रचना 'पागलखाना' में व्यक्त सामाजिक चेतना	कु० विजय लक्ष्मी, डॉ० राकेश चन्द्र	35–39
7.	THE TECHNIQUE OF PLAY OF BOYS AND GIRLS FOOTBALL PLAYERS OF JAIPUR REGION	Ms. Monika Pundhir, Dr. Surjeet Singh Kaswan	40-44
8.	निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का अध्ययन	आरती भांभू, डॉ. सुमन कुमारी	45–50
9.	संस्कृत साहित्य में नारी का महत्व	डॉ. नवीन कुमारी	51–53
10.	समकालीन चयनित हिंदी उपन्यासों में तृतीय लिंग की सामाजिक संघर्ष	प्रो. डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, डी श्रीदेवी	54–57
11.	कालिदास के नाटकों में सौन्दर्य	डॉ. नवीन कुमारी	58–60
12.	भीमरावाम्बेडकरचरिताश्रितकाव्येषु महापरिनिर्वाणम्	कृति यादव	61–64
13.	जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में अम्बेडकरवादी दर्शन	अजय कुमार चौधरी	65–69
14.	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के समायोजन पर भावात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन	डॉ. नितिन, सुनीता यादव	70–74
15.	रमणिका गुप्ता के कथा–साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन संघर्ष	श्वेता कुमारी	75–77
16.	माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा और समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन की आदतों के प्रभाव का अध्ययन	रचना, डॉ. रेनु कंसल	78–88
17.	कुसुम खेमानी की कहानियों में नारी संवेदना	उमा यादव, करसन रावत	89–92
18.	मानव जीवन में शब्दों की महत्ता	डॉ. सुशील चन्द्र बहुगुणा	93–97
19.	आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों पर मानसिक प्रशिक्षण के प्रभाव का अध्ययन	जुबेर खान, डॉ. गजेन्द्र सिंह सरोहा	98–104

20.	जिला स्तरीय मध्यम तेज गेंदबाजों के प्रदर्शन पर शारीरिक प्रशिक्षण का प्रभाव का अध्ययन	तरूण शर्मा, डॉ. गजेन्द्र सिंह सरोहा	105–109
21.	स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा की भूमिका : (1920–1942)	रूचि वत्स	110–114
22.	रमणिका गुप्ता के कथा-साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन संघर्ष	श्वेता कुमारी	115–117
23.	**THE ARTISTIC BEAUTY OF ARUN JOSHI'S NOVEL**	**PRIYANKA KUMARI**	**118-122**
24.	**DIASPORIC CONSCIOUSNESS IN THE NOVELS OF BHARATI MUKHERJEE**	**RAJEEV RENU**	**123-128**
25.	**DIASPORAS' CONSCIOUSNESS IN V.S.NAIPAUL'S A HOUSE FOR MR.BISWAS**	**SANJEEV RENU**	**129-133**
26.	**An Analysis of Environmental Degradation And Its Effect on Sustainable Development**	**Dr. Kiran Angra**	**134-138**
27.	प्रेमचंद की कहानियों में दलित ('ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'दूध का दाम', और 'कफन' कहानी के विशेष संदर्भ में)	राज कुमार मेहता, डॉ० सत्येन्द्र कुमार	139–142
28.	**Value Education in India from Vedic to Modern Era**	**Sourav Mandal**	**143-147**
29.	**Impact of Social Media among Society : Pros and Cons**	**Dr. Kiran Angra, Dr. Kaushal Chauhan**	**148-153**
30.	डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक जी की कविताओं में जीवन मूल्य	के. मंगलक्ष्मी	154–157
31.	नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गई' उपन्यास में चित्रित विदेशी संस्कृति	कु. चारूशिला अनिल कदम	158–163
32.	मध्यप्रदेश की सहरिया जनजाति की उत्पत्ति	प्रो. रंजना टोणपे, ममता गौड़	164–166
33.	जीवित लोगों का मृत्युभोज – चहल्लुम	दीपक कुमार सेठिया	167–169
34.	हिंदी के प्रमुख कहानीकार और उनकी कहानियों में गाँव	षेक करीमुन्नीसा, प्रो. संजय एल. मादार	170–173
35.	डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शैक्षिक विचार	महेशचन्द गुर्जर, डॉ० शरद कुमार वर्मा	174–179
36.	स्वामी रामकृष्ण परमहंस का दर्शनशास्त्र एवं नव-वैदान्तिक विचार	रितु, डॉ० नितिन	180–185
37.	ज्ञानी देवी के गद्य-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ	राजबीर सिंह	186–188
38.	चंद्रसेन विराट के गीत और समाज	शिवानी	189–194

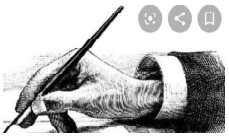

सम्पादक की कलम से..

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित संगम मासिक पत्रिका का नवम्बर–दिसम्बर 2023 का संयुक्त अंक आप सभी विद्वतजन को समर्पित करते हुए हर्ष की अनुमति हो रही है। आप सभी के लेखनीय सहयोग से पत्रिका दिन–प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर है। यह आप सभी की मेहनत और सहयोग का ही परिणाम है कि शोध के क्षेत्र में पत्रिका का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जा रहा है। प्रस्तुत अंक में पर्यावरणीय संवेदना, लोकतंत्र, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, समकालीन महिला साहित्यकारों, श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, श्रीमदभागवत गीता, कबीर जीवन दर्शन, कालिदास के नाटक में सौन्दर्य बोध, जनजातीय, प्रवासी, स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा का योगदान, मृत्युभोज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अध्यात्म पर उच्च कोटि के शोधालेखों का चयन समिति ने कर प्रकाशित किया है। जिस प्रकार मानव जीवन और पर्यायवरण एक दूसरे के पर्यायवाची है उसी प्रकार से साहित्य, साहित्कार, समाज शोधार्थी और प्राध्यापक एक–दूसरे के पर्यायवाची है। साहित्यकार सृजन करता रहे, पाठक पढ़ता रहे तो लेखन कुछ हद तक सार्थक सिद्ध होता है। अगर शोधार्थी किसी योग्य प्राध्याप के सानिध्य में साहित्यकार द्वारा सृजित साहित्य की विभिन्न दृष्टियों से आलोचना कर किसी निर्णय पर पहुंचता है तो साहित्यकार का सृजन और भी जनउपयोगी सिद्ध होता है। साहित्यकार किस मनोभाव से सृजन कर रहा है समाज को अपने लेखन से क्या दे रहा है उस पर निर्णय किया जा सकता है। इसलिए शोधार्थियों को सदैव स्वाध्यायशील रहते हुए विभिन्न लेखकों की पुस्तकों का पठन–पाठन करते रहना चाहिए।

भारत देश शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणीय रहा है। इसी कारण इसे विश्वगुरू भी कहा जाता है। देश की आजादी के बाद डॉ.. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में 1948 में विश्वविद्यालय आयोग का गटन किया गया, डॉ. लक्ष्मण स्वामी महालीयर की अध्यक्षता में वर्ष 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया, डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन 1964 में शिक्षा संबंधी समस्याओं का अध्ययन एवं समाधान करने के लिए किया गया था। आगे चलकर वर्ष 1968, 1986, 1979 में शिक्षा सम्बन्धी नीतियां घोषित की गईं। जिसके आधार पर सम्पूर्ण भारतवर्ष में स्कूली एवं विश्वविद्यालीय शिक्षा प्रदान की जाती रही है। वर्तमान में नई शिक्षा नीति 2020 भारत सरकार द्वारा घोषित की गई जिससे आगामी स्कूली एवं विश्वविद्यालीय शिक्षा प्रदान की जायेंगी। बहुत से राज्यों, विश्वविद्यालयों ने इसे अपनाकर अपने–अपने पाठ्यक्रमों का निर्माण कर शिक्षा प्रारम्भ कर दी है। वह दिन दूर नहीं जब भारत देश पुनः शिक्षा के क्षेत्र में पुनः विश्वगुरू कहलायेगा।

भारत देश तीज–त्यौहारों का देश है। इस देश में बारहमास त्यौहार चलते रहते हैं जो हमारी संस्कृति, परम्पराएं, रीति–रिवाजों को समृद्ध करते हैं। जिससे हम उर्जावान होकर राष्ट्र के नवनिर्माण में सहभागी बनते हैं। यह परम्पराएं इसी प्रकार से चलती रहे जिससे हमारी परम्पराएं जीवित रहती है और परम्पराओं से प्रेरित होकर हमारी भावी संतानें राष्ट्र निर्माण करती रहें। जिससे वह अपना जीवन सफल बनाकर समाज का नव निर्माण करते हुए अपना जीवन यापन सफलता पूर्वक कर सकें।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 7-12

आज के युग में दृश्य–श्रव्य अनुवाद : एक संक्षिप्त परिचय

अनुश्री पी. एस.
शोध विद्यार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़।

परिचय :-

दृश्य–श्रव्य अनुवाद (ऑडियो–विजुअल अनुवाद), को संक्षिप्त रूप से अक्सर ए. वी. टी. के नाम से जाना जाता है। इसमें ऑडियो या विजुअल रूपों या दोनों के संयोजन में एक भाषा से दूसरी भाषा में पाठ–सामग्री का अनुवाद शामिल होता है। पारस्परिक रूप से जुड़ी हुई आज की इस दुनिया में, दृश्य–श्रव्य सामग्री, संचार माध्यम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फिल्मों और टीवी शो से लेकर कॉर्पोरेट प्रस्तुतियों एवं ऑनलाइन पाठ्यक्रमों तक, उच्च गुणवत्ता वाले दृश्य–श्रव्य अनुवादों की मांग पहले इतनी अधिक नहीं रही। इस लेख में दृश्य–श्रव्य अनुवाद तथा उसमें जुड़ी संगतियों के बारे में जैसे कि इसके महत्व, चुनौतियों और इसके पीछे की विकसित तकनीक पर संक्षिप्त रूप से परिचय देने की कोशिश किया गया है। इस डिजिटल युग में सूचना का प्रसार भाषाई और सांस्कृतिक सीमाओं से आगे निकल गया है। इसने दृश्य–श्रव्य अनुवाद के महत्व को नई ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है। सिनेमा के उत्कृष्ट कृतियों से लेकर शैक्षिक वीडियो और विविध प्रस्तुतियों तक, दृश्य–श्रव्य सामग्री के सटीक और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील अनुवाद की मांग सर्वोपरि हो गई है। दरअसल, दृश्य–श्रव्य अनुवाद संभवतः वह पाठ्यक्रम है जिसमें पाठ शुरू से अंत तक सबसे अधिक बदलाव से गुजरता है। इस प्रक्रिया के सभी चरणों में अनुवादक द्वारा प्रस्तुत पाठ में कुछ हद तक हेरफेर शामिल है। यह वस्तुतः अपरिहार्य है कि अनुवादक द्वारा शुरू में दिए गए अनुवाद में संशोधन होंगे। जैसाकि कहा जाता है, अनुवादक द्वारा पूर्ण अनुवाद प्रस्तुत करने के बाद, पाठको प्रूफ–रीडर के पास भेजा जा सकता है और फिर सिंक्रनाइज़ेशन से गुजरना पड़ सकता है। इन दो चरणों में पाठ में संशोधन शामिल है, जो कभी–कभी अपेक्षित नहीं होते हैं और कभी–कभी विशेष रूप से आवश्यक हो सकता है।

दृश्य-श्रव्य अनुवाद का महत्व :-

1. **सांस्कृतिक अभिगम्यता :-** ऐसी दुनिया में जहां विविधता का जश्न मनाया जाता है, ऑडियो–विजुअल अनुवाद उस पुल के रूप में कार्य करता है जो विभिन्न संस्कृतियों और पृष्ठभूमि के लोगों को साझा सामग्री के माध्यम से जुड़ने की अनुमति देता है। यह सुनिश्चित करता है कि मूल सामग्री में अंतर्निहित सूक्ष्मताएं, हास्य एवं सांस्कृतिक संदर्भ अनुवाद में खो न जाएं। दृश्य–श्रव्य अनुवाद संस्कृतियों के बीच अंतर को कम करता है, जिससे सामग्री वैश्विक दर्शकों के लिए सुलभ हो जाती है। यह सुनिश्चित करता है कि कई गई मूल पाठ में मौजूद अंशों की बारीकियों, चुटकुलों और सांस्कृतिक संदर्भों को सटीक रूप से संप्रेषित किया जाए।

2. **बाज़ार विस्तारण :-** व्यवसायों के लिए, दृश्य–श्रव्य अनुवाद उनकी पहुंच बढ़ाने का प्रवेश द्वार है। अच्छी तरह से क्रियान्वित अनुवाद कार्य नीति के साथ नए–नए प्रभावी दृश्य–श्रव्य अनुवाद कंपनियों को बाजारों में प्रवेश करने, विविध दर्शकों से जुड़ने और वैश्विक उपस्थिति स्थापित करने में अनुमति देता है और सक्षम बनाता है। अंतर भाषी और अंतर सांस्कृतिक प्रचार की अंतरराष्ट्रीय नीति को बढ़ावा देने के लिए, उपशीर्षक प्रक्रिया के कलाकारों को ऑडियो विजुअल उत्पाद के लिए अतिरिक्त लागत मानी जाने वाली राशि, यानी उपशीर्षक तथा विपणन के सबसे लागत प्रभावी तरीके के बीच उपशीर्षक कार्यक्रम एक समझौता करना चाहिए। विपणक को लक्ष्य बाजार के साथ वांछित स्तर के लेन–देन के लिए उत्पादकों और वितरकों की आवश्यकता पड़ता है और दृश्य–श्रव्य परिदृश्य के विभिन्न क्षेत्रों में उपशीर्षक, उदाहरण के लिए फिल्मों की मांग का विश्लेषण करना चाहिए। मार्केटिंग का कार्य मांग के स्तर को प्रभावित करके उत्पाद के लाभों को दर्शकों की जरूरतों और रुचियों के साथ जोड़ने के तरीके ढूंढना है जिससे कंपनी को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद मिलेगी। यह कार्य विपणन अनुसंधान एवं नियोजन द्वारा किया जाता है।

दृश्य-श्रव्य अनुवाद के प्रकार :-

1. **उपशीर्षक :-** उपशीर्षक, दृश्य–श्रव्य अनुवाद का सबसे सामान्य रूप है। व्यापक रूप से नियोजित इस तकनीक में दर्शकों को मूल ऑडियो सुनते हुए अनुवादित पाठको पढ़ने की अनुमति मिलती है। उपशीर्षक के लिए संक्षिप्तता और सटीकता के बीच एक नाजुक संतुलन की आवश्यकता होती है। उपशीर्षक को उस सटीक फ्रेम के साथ मेल खाते हुए देखा जाता है जहां एक वक्ता बात शुरू करता है और समाप्त करता है, कुछ फ्रेम के कभी–कभी समायोजन के साथ या अधिक पढ़ने के समय की अनुमति देता है तथा परिवर्तन की अनुमति लेता है। दर्शकों को यही उम्मीद है। उपशीर्षक जो वक्ता की बात सुनने से पहले ही प्रविष्ट हो जाते हैं, या जो तुरंत प्रकट नहीं होते, भ्रमित करने वाले होते हैं। दर्शकों को याद दिलाया जाता है कि वे एक अनुवाद पढ़ रहे हैं और उन्हें लगता है कि कुछ छूट गया है या गलत है, जिससे उपशीर्षक पर विश्वास कम पड़ जाता है। उपशीर्षक मूलतः एक टीम प्रयास है। जब एक टीम के सभी सदस्य प्रक्रिया के सभी हिस्सों को निष्पादित करने में सक्षम होते हैं, जो प्रत्येक चरण के माध्यम से कई जांचों से गुजरना होता है।

2. **डबिंग :-** डबिंग में मूल ऑडियो को लक्ष्य भाषा में सिंक्रनाइज़ अनुवाद के साथ बदलना शामिल है। यह विशेष रूप से फिल्मों और टीवी शो में लोकप्रिय है। डबिंग प्रक्रिया अत्यधिक जटिल है, क्योंकि डब संस्करण हमेशा पहले ही तैयार किया जाता है और इसमें कई सारे कारक भी शामिल होते हैं। अक्सर डबिंग स्क्रिप्ट में अनुवादक ने अनुवाद की तुलना में अनुकूलन जैसी कार्यनीति का विकल्प चुना है। डबिंग के उद्देश्य के मापदंडों के भीतर, जो स्वीकार्य है।

3. **वॉयस-ओवर :-** डबिंग के समान, वॉयस–ओवर मूल ऑडियो को बरकरार रखता है लेकिन इसे अनुवादित आवाज के साथ प्रसरण किया जाता है। इस तकनीक का उपयोग अक्सर वृत्तचित्रों, साक्षात्कारों और समाचार क्षेत्रों में किया जाता है।

4. **लिप सिंक्रोनाइजेशन :-** लिप सिंक्रोनाइजेशन दृश्य–श्रव्य अनुवाद में खासकर डबिंग के संदर्भ में चुनौतिपूर्ण प्रमुख कारकों में से एक है। इसे अक्सर इस प्रकार के अनुवाद की विभेदक विशेषता के रूप में माना जाता है, हालांकि वास्तव में, यह केवल एक महत्वपूर्ण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है जो धीरे–धीरे डबिंग पेशेवरों

और दर्शकों दोनों के समर्थन नष्ट होता जा रहा है। डबिंग या वॉयस–ओवर में लिप सिंक्रोनाइज़ेशन हासिल करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। अनुवादकों को अपने अनुवादों को मूल वक्ता की ताल और मुँह की गतिविधियों के साथ संरेखित करने के लिए सावधानीपूर्वक समय देना चाहिए। अनुवाद का समय एवं मूल ऑडियो के समय दोनों मेल खाना चाहिए। जहां अनुवाद वक्ता के मुंह की गतिविधियों के साथ सहजता से संरेखित होकर दोष रहित लिप सिंक्रोनाइजेशन प्राप्त करना, अपने आप में एक कला है। सिंक्रोनाइज़ेशन अनुवादक को अपने रचनात्मक कौशल का पूर्ण उपयोग करने के लिए मजबूर करता है। इसलिए निस्संदेह इसका अनुवाद प्रक्रिया और उत्पाद पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

5. **ट्रांसक्रिप्शन और कैप्शनिंग :–** इसमें श्रवण बाधित दर्शकों की सुविधा के लिए सुलभता उद्देश्यों के लिए बोली गई सामग्री का एक टेक्स्ट संस्करण प्रदान करना शामिल है। एक महत्वपूर्ण पहुंच सुविधा प्रदान करते हुए, प्रतिलेखन में बोली जाने वाली सामग्री का एक पाठ संस्करण प्रदान करना शामिल है। दूसरी ओर, कैप्शनिंग में श्रवण बाधित दर्शकों की सहायता के लिए स्क्रीन पर टेक्स्ट प्रदर्शित करना शामिल है।

दृश्य–श्रव्य अनुवाद में चुनौतियाँ :–

श्रवण और दृश्य दोनों तत्वों की एक साथ उपस्थिति के कारण यह अन्य प्रकार के अनुवाद की तुलना में चुनौतियों का एक अनूठा सेट प्रस्तुत करता है। दृश्य–श्रव्य अनुवाद में आने वाली कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं :–

1. **समय की कमी :–** अनुवादक अक्सर तंग समय सीमा के तहत काम करते हैं, खासकर मनोरंजन जैसे उद्योगों में जहां रिलीज शेड्यूल महत्वपूर्ण होते हैं। इसके लिए उन्हें अनुवाद की गुणवत्ता से समझौता किए बिना कुशलतापूर्वक काम करने की आवश्यकता है। बोले गए संवाद या उपशीर्षक प्रदर्शन के लिए उपलब्ध सीमित समय के कारण मूल सामग्री का पूरा अर्थ बताना मुश्किल हो सकता है। अनुवादकों को यह सुनिश्चित करते हुए संक्षिप्त होना चाहिए कि अनुवादित पाठ सटीक और सुसंगत है।

2. **सांस्कृतिक संवेदनशीलता :–** अनुवादकों को सांस्कृतिक बारीकियों से परिचित होना चाहिए, जो उन्हें हास्य, कठबोली, मुहावरों, चुटकुलों और संदर्भों को एक विश्वसनीय अनुकूलन सुनिश्चित करने की जटिलताओं को नेविगेट करने में सक्षम बनाता है, जिसका लक्ष्य भाषा में प्रत्यक्ष समकक्ष नहीं हो सकता है और उचित रूप से अनुवादित होना चाहिए। अनुवादकों को स्रोत और लक्ष्य दोनों संस्कृतियों की गहरी समझ होनी चाहिए। इच्छित अर्थ और सांस्कृतिक संदर्भ को बनाए रखते हुए इन तत्वों को अपनाना चुनौतीपूर्ण है।

3. **प्रासंगिक अनुकूलन :–** उस संदर्भ को समझना जिसमें दृश्य–श्रव्य सामग्री प्रस्तुत की जानी है, वह महत्वपूर्ण है। इसमें पात्रों, सेटिंग और समग्र कथानक का ज्ञान शामिल है, जो अनुवाद में प्रयुक्त शब्दों और अभिव्यक्तियों की रुचि को प्रभावित कर सकता है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ज्यादातर मामलों में, न तो प्रूफ–रीडर और नही सिंक्रोनाइज़र मूल भाषा को समझते हैं। परिणाम स्वरूप, यह जोखिम है कि किए गए परिवर्तन मूल पाठ से भिन्न हो सकते हैं।

4. **पाठ की लंबाई पर प्रतिबंध :–** उपशीर्षक, विशेष रूप से, सख्त वर्ण और पंक्ति सीमाओं के साथ आते हैं जिसके लिए संक्षिप्त लेकिन सटीक अनुवाद की आवश्यकता होती है। अनुवादकों को सटीकता या संदर्भ का त्याग किए बिना, संक्षिप्त रूप से अर्थ बताने में अपने आप को माहिर बनाना चाहिए।

5. **सिंक्रनाइज़ेशन :–** यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि अनुवादित ऑडियो या उपशीर्षक मूल ऑडियो और दृश्य तत्वों के साथ सिंक्रनाइज़ हैं। यह उन मामलों में विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकता है जहां लिप–सिंकिंग महत्वपूर्ण है, जैसे कि फिल्में या टीवी शो में।

6. **तकनीकी सीमाएँ :–** कुछ मामलों में, तकनीकी बाधाएँ हो सकती हैं जो अनुवाद प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ भाषाओं को समान अर्थ व्यक्त करने के लिए अधिक वर्णों या शब्दों की आवश्यकता हो सकती है, जो स्थान सीमाओं के कारण उपशीर्षक में एक चुनौती हो सकती है।

7. **आवाज और टोन मिलान :–** वॉयसओवर या डबिंग का अनुवाद करते समय, एक ऐसे आवाज अभिनेता को ढूंढना जो मूल अभिनेता के स्वर, शैली और भावनात्मक अभिव्यक्ति से मेल खा सके जो मुश्किल हो सकता है। मूल प्रदर्शन की अखंडता बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

8. **अभिगम्यता संबंधी विचार :–** विकलांग व्यक्तियों तक विचार पहुंचना, यह सुनिश्चित करना ए.वी.टी. का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसमें सटीक और स्पष्ट उपशीर्षक, ऑडियो विवरण और सुलभ सामग्री के अन्य रूप प्रदान करना शामिल है।

9. **तकनीकी विशेषज्ञता :–** माध्यम के आधार पर, अनुवादकों को ऑडियो–विजुअल अनुवाद के लिए विशेष सॉफ़्टवेयर या टूल से परिचित होने की आवश्यकता हो सकती है, जैसे उपशीर्षक सॉफ़्टवेयर, ऑडियो संपादन प्रोग्राम और डबिंग उपकरण।

10. **कानूनी और कॉपीराइट मुद्दे :–** अनुवादकों को कॉपीराइट और लाइसेंसिंग प्रतिबंधों के साथ–साथ विभिन्न क्षेत्रों में ऑडियो–विजुअल सामग्री वितरण से संबंधित किसी भी कानूनी आवश्यकताओं के बारे में पता होना चाहिए।

11. **गुणवत्ता नियंत्रण :–** अनुवाद प्रक्रिया के दौरान निरंतरता और सटीकता बनाए रखना आवश्यक है। गुणवत्ता नियंत्रण उपाय, जैसे प्रूफरीडिंग और समीक्षा, यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं कि अंतिम उत्पाद वांछित मानक स्तर को पूरा करता है।

12. **नैतिक विचार :–** अनुवादकों को नैतिक दुविधाओं का सामना करना पड़ सकता है, खासकर संवेदनशील या विवादास्पद सामग्री से निपटने के दौरान। उन्हें सटीकता, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और संभावित पूर्वाग्रहों से संबंधित मुद्दों पर ध्यान देना चाहिए।

दृश्य–श्रव्यअनुवाद में तकनीकी प्रगति :–

1. **मशीनी अनुवाद एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता :–** कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.)–संचालित अनुवाद उपकरण तेजी से परिष्कृत होते जा रहे हैं, जो अनुवादकों को उनके काम में सहायता कर रहे हैं। वे मानव अनुवादकों को अमूल्य सहायता प्रदान करते हुए सटीकता बनाए रखते हुए प्रक्रिया को तेज़ कर सकते हैं।

2. **स्वचालित वाक् पहचान (ए.एस.आर.) :–** ए.एस.आर. तकनीक प्रतिलेखन और कैप्शन की सटीकता में सुधार कर रही है, जिससे उन्हें श्रवण बाधित व्यक्तियों के लिए अधिक सुलभ और सटीक बनाया जा रहा है।

3. **आवाज संश्लेषण :–** स्वाभाविकता और अभिव्यक्ति में प्रगति के साथ सिंथेटिक आवाजों ने उल्लेखनीय प्रगति की है। यह तकनीक मानव वॉयस–ओवर का विकल्प प्रदान करती है, खासकर उन परिदृश्यों में जहां मानव स्पर्श आवश्यक नहीं हो सकता है। आवाजें अधिक प्राकृतिक और सजीव होती जा रही हैं, जो एसा लगता

है मानो मानवीय वॉयस–ओवर का विकल्प पेश कर रही हैं।

दृश्य–श्रव्य अनुवाद में भविष्य के अभिवृत्ति :–

1. **इमर्सिव टेक्नोलॉजीज :–** जैसे–जैसे आभासी वास्तविकता (वी.आर.) और संवर्धित वास्तविकता (ए.आर) जोर बढ़ रहा है, अनुवादित पाठ गहन (इमर्सिव) अनुभवों की मांग बढ़ने की संभावना है। यह अत्याधुनिक तकनीकों में दृश्य–श्रव्य अनुवाद के एकीकरण के लिए रोमांचक अवसर प्रस्तुत करता है। इसमें आभासी दुनिया के भीतर सामग्री का अनुवाद करना या आभासी बैठकों के दौरान वास्तविक समय में अनुवाद प्रदान करना शामिल हो सकता है।

2. **इंटरएक्टिव अनुवाद :–** प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ, इंटरैक्टिव अनुवाद जो उपयोगकर्ताओं को उनकी भाषा प्राथमिकताओं के आधार पर सामग्री को अनुकूलित करने की अनुमति देते हैं, अधिक प्रचलित हो सकते हैं।

3. **मशीन अनुवाद और वाक् पहचान में प्रगति :–** कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग में चल रहे विकास के साथ, मशीन अनुवाद प्रणालियों की सटीकता और क्षमता में सुधार होने की संभावना है। इससे अधिक कुशल और विश्वसनीय ऑडियो–विजुअल अनुवाद सेवाएं प्राप्त हो सकती हैं।

4. **वास्तविक समय अनुवाद सेवाएँ :–** वास्तविक समय या लाइव ऑडियो–विजुअल अनुवाद, जहां लाइव इवेंट या बातचीत के दौरान बोली जाने वाली भाषा का वास्तविक समय में अनुवाद किया जाता है, अधिक सामान्य हो सकता है। इसे उन्नत वाक् पहचान और मशीनी अनुवाद प्रौद्योगिकियों के माध्यम से सुगम बनाया जा सकता है।

5. **वैयक्तिकृत उपयोगकर्ता अनुभव :–** प्रौद्योगिकी वैयक्तिकृत ऑडियो–विजुअल अनुवाद अनुभवों की अनुमति दे सकती है, जहां उपयोगकर्ता भाषा, आवाज और शैली सहित अपनी प्राथमिकताओं के आधार पर अनुवाद सेटिंग्स को अनुकूलित कर सकते हैं।

6. **मल्टीमॉडल अनुवाद :–** भविष्य के ऑडियो–विजुअल अनुवाद सिस्टम में पाठ, भाषण, चित्र और वीडियो जैसे कई तौर–तरीके शामिल हो सकते हैं। इससे अधिक व्यापक और सटीक अनुवाद संभव हो सकेगा, विशेषकर उन संदर्भों में जहां दृश्य तत्व महत्वपूर्ण हैं।

7. **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) – संचालित सामग्री स्थानीयकरण :–** ए.आई.–संचालित एल्गोरिदम दृश्य–श्रव्य सामग्री के स्थानीयकरण में सहायता कर सकता है, जब यह सुनिश्चित करते हैं कि यह विशिष्ट लक्षित दर्शकों के लिए सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त और प्रासंगिक हो।

8. **समावेशी डिजाइन और पहुंच :–** विकलांग लोगों के लिए ऑडियो–विजुअल सामग्री को सुलभ बनाने पर अधिक जोर दिया जा सकता है। इसमें बेहतर बंद कैप्शनिंग, सांकेतिक भाषा व्याख्या और अन्य पहुंच सुविधाएँ शामिल हो सकती हैं।

9. **नैतिक विचार और पूर्वाग्रह शमन :–** किसी भी एआई–संचालित तकनीक की तरह, ऑडियो–विजुअल अनुवाद प्रणालियों में संभावित पूर्वाग्रहों को संबोधित करने, विविध भाषाई और सांस्कृतिक संदर्भों में निष्पक्षता और सटीकता सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

10. **ब्लॉकचेन और कॉपीराइट मुद्दे :–** ब्लॉकचेन जैसी तकनीकों का उपयोग विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में ऑडियो–विजुअल सामग्री से संबंधित कॉपीराइट और लाइसेंसिंग चिंताओं को दूर करने के लिए किया जा

सकता है।

11. **स्मार्ट डिवाइस और IoT के साथ एकीकरण :-** ऑडियो–विजुअल अनुवाद को स्मार्ट होम डिवाइस, पहनने योग्य तकनीक और IoT सिस्टम में सहजता से एकीकृत किया जा सकता है, जिससे विभिन्न रोजमर्रा के परिदृश्यों में वास्तविक समय में अनुवाद की अनुमति मिलती है।

निष्कर्ष :-

ऑडियो–विजुअल अनुवाद एक उभरता हुआ क्षेत्र है जो विविध वैश्विक दर्शकों के लिए सामग्री को सुलभ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उन्नत प्रौद्योगिकी और कुशल अनुवादकों की विशेषज्ञता की सहायता से, दृश्य–श्रव्य अनुवाद का भविष्य सांस्कृतिक आदान–प्रदान के विस्तार और अंतर्राष्ट्रीय संचार की सुविधा के लिए रोमांचक संभावनाएं रखता है। ऑडियो–विजुअल अनुवाद प्रौद्योगिकी और संस्कृति के चौराहे पर खड़ा है, जो तेजी से परस्पर जुड़ी दुनिया में वैश्विक संचार की सुविधा प्रदान करता है। जैसे–जैसे प्रौद्योगिकी आगे बढ़ रही है और कुशल अनुवादक भाषाई अनुकूलन की सीमाओं को आगे बढ़ा रहे हैं, दृश्य–श्रव्य अनुवाद का भविष्य एक गतिशील और परिवर्तनकारी शक्ति होने का वादा करता है, जो अधिक से अधिक अंतर–सांस्कृतिक समझ और कनेक्टिविटी को बढ़ावा देता है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि तकनीकी विकास की गति तेज़ हो सकती है, जहाँ जो अंतमें कहा गया बिंदुओं से अद्यतन होकर नए अभुवृत्तिएवं नवाचार सामने आ सकते हैं। इसलिए, मैं दृश्य–श्रव्य अनुवाद अभिवृत्ति पर नवीनतम अंतर्दृष्टि के लिए क्षेत्र के नवीनतम स्रोतों या विशेषज्ञों से परामर्श करने की सलाह दिया जाता है। कुल मिलाकर, दृश्य–श्रव्य अनुवाद के लिए एक अद्वितीय कौशल सेट की आवश्यकता होती है जो भाषाई दक्षता, सांस्कृतिक जागरूकता, तकनीकी विशेषज्ञता और रचनात्मकता को जोड़ती है। इस क्षेत्र में अनुवादक सामग्री को उसके मूल इरादे और प्रभाव को संरक्षित करते हुए वैश्विक दर्शकों के लिए सुलभ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. ऑडियो वीशुएल ट्रांसलेशन इन दी तर्ड मिलेनियम, जार्ज डियज़ सिंटास।
2. ऑडियो वीशुएल ट्रांसलेशन – लैंग्वेज ट्रांस्फर ऑन स्क्रीन, जार्ज डियज़ सिंटास एवं गुनिल्ला अंडरमन द्वारा संपादित।
3. टॉपिक्स इन ऑडियो वीशुएल ट्रांसलेशन, पिलर ओरियो द्वारा संपादित।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 13-24

अनुवाद संकल्पना के संदर्भ में मानक अनुवाद में पुनरीक्षण एवं मूल्यांकन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. रंजीत कुमार
वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी, कैब्स, डी.आर.डी.ओ, बेंगलुरु।

अनुवाद कार्य किसी भी जीवंत भाषा में एक अनिवार्य प्रक्रिया है। वह दूसरी भाषाओं के साथ आदान–प्रदान का, ग्रहणशीलता के संबंध का एक महत्त्वपूर्ण साधन भी है। अनुवाद के बिना भाषाएं, अपने ही भीतर बंद होकर विचारों, भावों और अनुभव के व्या पक क्षेत्र से कट जाती हैं, और उनकी अपनी सृजनात्मंक ऊर्जा भी अवरुद्ध होकर सूखने लगती है। सभी भारतीय भाषाएं खासकर हिंदी तो इस देश की विशेष राजनैतिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण यों भी बहुत हद तक अनुवाद–निर्भर और अनुवाद उन्मुख है और बहुत दिनों से हिंदी में देश–विदेश की भाषाओं का साहित्य् अनुदित होता है। अनुवाद कार्य एक सामाजिक दायित्वे है जिससे हमारे देश की साहित्य का विकास होता है साथ ही अनुवादक के माध्याम से विदेशी भाषा का साहित्य का आनंद हम लोक भाषा में प्राप्तह करते हैं। सारे संसार की जानकारी एवं प्रगति की सूचना हमें अनुदित साहित्य से प्राप्ता होता है। अनवुाद आज केवल हमारे देश की ही आवश्यकता नहीं बल्कि विश्व की आवश्यककता है।

प्रायः एक व्यक्ति अपने संपूर्ण जीवनकाल में 2 या 3 भाषाएं मेहनत करके सीख पाता है, परंतु विश्व भर में लगभग 150 भाषाएं हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार का साहित्य उपलब्ध है। विज्ञान के चमत्कार ने हमें विश्व को बहुत ही नजदीक ला दिया और अनुवाद दो भाषाओं एवं संस्कृतियों की दूरी को कम कर दिया है। इससे अनुवाद भी प्रभावित हुआ आम लोगों की आवश्यक जानकारियों एवं सूचनाओं को अनुवाद के माध्यम से आमजन तक प्राप्त होने लगा उससे आमजन का विकास हुआ। चिंतन एवं मनन का क्षेत्र भी व्यापक हुआ। अनुवाद के सेतु सभी भाषाओं की नदी को पार कराता है। यह देश के विकास एवं समृद्धि का साधन है। हम दूसरे शब्दों में कहें तो अनुवाद साधन एवं साध्य दोनों है। अनुवाद साहित्य के विस्तार एवं संवर्द्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसके माध्यम से ज्ञान विज्ञान का विकास होता है साथ ही आमजन के लिए भाषा सेतु का काम करता है। विश्व की सांस्कृतिक विरासत एवं सभ्यता की जानकारी अनूदित साहित्य से प्राप्त होता है। इसके अलावा व्यवसाय एवं वाणिज्य का द्वार अनुवाद खोलता है। विश्व को एक देश से दूसरे देश से जोड़ने में भी अनुवाद की भूमिका उल्लेखनीय रहती है।

अनुवाद के सिद्धांत :-

अनुवाद की संपूर्ण जानकारी अनुवाद के सिद्धांत के माध्यसम से प्राप्त होता है। इसके साथ ही अनुवाद का सैद्धांतिक विवेचन के माध्यम से अनुवाद के विभिन्न विचारधारा, दर्शन और सिद्धांत की जानकारी प्राप्त होती है।

अनुवाद आज अपने सैद्धान्तिक संदर्भ में बहुआयामी और प्रयोजन में बहुमुखी हो गया है, किन्तु अनुवाद की सार्थकता और व्यावहारिकता में जो संवर्धन हुआ, उसी अनुपात में उसके सिद्धांतों पर गहराई से चिंतन नहीं हुआ। कुछ विद्वानों ने अनुवाद को 'अर्थान्तरण' अथवा 'भाषिक प्रतिस्थापन' की संज्ञा दी है, किन्तु अनुवाद न तो 'अर्थान्तरण' है और न ही 'भाषिक प्रतिस्थापन'। वस्तुतः भाषा की प्रकृति ऐसी स्थिर और समरूपी नहीं है कि एक भाषा की इकाई को दूसरी भाषा की इकाई द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सके। "अनुवाद की परिभाषाओं, प्रक्रिया एवं अनुवाद चिंतन के उपरांत यह आवश्यक हो जाता है कि अनुवाद के विभिन्न सिद्धांतों पर भी चर्चा की जाए। वस्तुतः अनुवाद सिद्धान्त कोई विशिष्ट विचारधारा नहीं है बल्कि विभिन्न विचारकों ने अनुवाद के संबंध में जो सिद्धान्त बताए हैं वे अनुवाद सिद्धान्त कहलाते हैं।"[31]

अनुवाद के उद्देश्य :-

अनुवाद का मुख्य उद्देश्य दो या दो से अधिक भाषा के बीच सेतु का कार्य करना होता है। दूसरे शब्दों दो या दो अधिक क्षेत्र, राष्ट्र की विभिन्न भाषा– संस्कृरति, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक जीवन को दूसरे भाषा में उपलब्ध कराता है। दो संस्कृति एवं भाषा की दूरी को कम करता है। ज्ञान एवं विज्ञान की सूचना मनोवांछित या भाषा में उपलब्ध कराता है। अनुवाद आज के युग का चमत्कार जो दो देशों या समाजों की दूरी को पाटता है। "एक भाषा के भाव–वैभव को ही नहीं, बल्कि उसके ध्वन्यात्मक प्रतीकों को भी दूसरी भाषा में यथावत रूपांतरित और प्रतिस्थापित करना अनुवादक का लक्ष्य होता है, इसीलिए अनुवाद को 'एक सांस्कृतिक सेतु' की संज्ञा प्राप्त हुई है। इसे एक ऐसी तकनीक माना गया है 'जिसका आविष्कार मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडंबनाओं से बचने के लिए किया था'।"[1] इस प्रकार अनुवाद आज के युग में भाषा साहित्यक के विस्तार एवं संवर्द्धन के साथ–साथ मानवीय, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, विश्व शांति एवं विश्व समृद्धि के पवित्र लाभकारी उद्देश्यों का पूरा करता है।

अनुवाद की संपूर्ण जानकारी अनुवाद के सिद्धांत के माध्यम से प्राप्त होता है। इसके साथ ही अनुवाद का सैद्धांतिक विवेचन के माध्यम से अनुवाद के विभिन्न मानक सिद्धांत की जानकारी प्राप्ति होती है। अनुवाद आज अपने सैद्धान्तिक संदर्भ में बहुआयामी और प्रयोजन में बहुमुखी हो गया है, किन्तु अनुवाद की सार्थकता और व्यवहारिकता में जो संवर्धन हुआ, उसी अनुपात में उसके सिद्धांतों पर गहराई से चिंतन नहीं हुआ। कुछ विद्वानों ने अनुवाद को 'अर्थान्तरण' अथवा 'भाषिक प्रतिस्थापन' की संज्ञा दी है, किन्तु अनुवाद न तो 'अर्थान्तरण' है और न ही 'भाषिक प्रतिस्थापन'। वस्तुतः भाषा की प्रकृति ऐसी स्थिर और समरूपी नहीं है कि एक भाषा की इकाई को दूसरी भाषा की इकाई द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सके। "अनुवाद की परिभाषाओं, प्रक्रिया एवं अनुवाद चिंतन के उपरांत यह आवश्यक हो जाता है कि अनुवाद के विभिन्न सिद्धांतों पर भी चर्चा की जाए। वस्तुतः अनुवाद सिद्धान्त कोई विशिष्ट विचारधारा नहीं है बल्कि विभिन्न विचारकों ने अनुवाद के संबंध में जो सिद्धान्त बताए हैं वे अनुवाद सिद्धान्त कहलाते हैं।"[1]

इसी विकासशीलता के पूर्वानुमान की दृष्टि से प्रख्यात अनुवादशास्त्री पॉल एंजिल्स ने कहा था कि 21वीं

सदी में प्रत्येक देश में दो प्रकार का साहित्य होगा। एक उसका अपना साहित्य और दूसरा अनूदित साहित्य। इसी अनूदित साहित्य के माध्यम से हम दूसरी भाषा, संस्कृति, समाज, ज्ञान–विज्ञान, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी और उसकी रचनाधर्मिता से साक्षात्कार कर सकते हैं। भाषाविदों के द्वारा दी गई अनुवाद की परिभाषाएं निम्न है– अनुवाद संबंधी सिद्धांतों पर स्वतंत्र ग्रंथों का लेखन वस्तुतः बीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ। इसी शताब्दी के दौरान साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक पत्रिकाओं में अनुवाद पर लेखों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इन्हीं भाषा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं ने अनुवाद की कई परिभाषाओं को जन्म दिया। कई परिभाषाओं पर सवाल भी उठाए गए तो कुछ परिभाषाओं को मान्यताएं भी मिलीं लेकिन आज भी अनुवाद की कोई एक परिभाषा नहीं मिलती है। परिभाषाओं पर विचार किया जाए तो अनुवाद की परिभाषा भाषा वैज्ञानिकों ने भी दी है और साहित्यकारों (कवियों) ने भी दी है।

(1) Translating consists in producing, in the receptor language the closet natural equivalent to the message of the source language, first in meaning and second in style. (Nida)

प्रसिद्ध परिभाषा – ''मूल भाषा के संदेश के समतुल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की यह समतुल्यता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से निकटतम एवं स्वाभाविक होती है।''[3] (नाइडा एवं टेबर)

अनुवाद का स्वरूप :–

अनुवाद सिद्धांत के स्वरूप के दो उल्लेखनीय पक्ष हैं–

1. समन्वय और
2. संतुलन अनुवाद सिद्धांत

अनुवाद का सिद्धांत मुख्यतः अनुवाद की प्रकिया एवं लक्ष्यत पर आधारित होता है एवं इसके बहुविधापरक आयाम, इसका समन्वयशील पक्ष है। तुलनात्मक दृष्टि से अनुवाद का दो भाषाओं से संबंधित होना स्पष्ट होता है जिसमें भाषाओं की समानता–असमानता के प्रश्न उपस्थित होते हैं। पाठ संकेत विज्ञान के तीनों पक्ष अर्थ, विचार तथा संदर्भ मीमांसा अनुवाद के संदर्भ में प्रासांगिक हैं। अर्थविचार में भाषिक संकेत तथा भाषाबाह्य यथार्थ के बीच में संबंध का अघ्ययन होता है।

संदर्भ मीमांसा के अन्तर्गत भाषा प्रयोग का उद्देश्यघ तथा संदेश के अर्थविचार में भाषिक संकेत तथा भाषा बाह्य यथार्थ के बीच में संबंध का अघ्ययन होता है। संदर्भ मीमांसा के अन्तर्गत भाषा प्रयोग का उद्देश्यं तथा संदेश के प्रति वक्ता–श्रोता की अभिवृत्ति भाषा प्रयोग की भौतिक तथा माध्यम आदि की मीमांसा होती है। स्पष्ट है कि संकेत विज्ञान की परिधि भाषाविज्ञान की अपेक्षा व्यापक है तथा अनुवाद कार्य एक सम्प्रेषण व्यापार या प्रकृति में है, जैसे शत–प्रतिशत यथार्थ न होना यानि अपूर्ण अनुवाद इत्यादि। इसी से अनुवाद कार्य में शब्दानुवाद आज की वैश्विक आवश्यकता है। यह एक ही राष्ट्र के भिन्न–भाषी लोगों अथवा समुदायों के बीच संवाद का माध्यम है तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक सेतु एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को साकार करता है। यह निश्चय ही अनुवाद का सामाजिक और व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य है। अनुवाद का महत्त्व शैक्षिक और ज्ञानात्मक क्षेत्रों में इन क्षेत्रों के प्रसार और विस्तार के लिये होता है। यह अनुवाद का साधन रूप है। अनुवाद का साध्य रूप प्रायः साहित्यानुवाद में देखने को मिलता है।

साहित्य साधन रूप में अनुवाद :–

विश्व की किसी एक भाषा में उपलब्ध सूचना अथवा ज्ञानात्मक निष्कर्ष को दूसरी भाषा में पहुँचाना और लाना आज की बुनियादी ज़रूरत है। खासकर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में इसके कारण समूचा विश्व परस्पर निकटतम सम्पर्क में आया और भूमंडलीय ग्राम की अवधारणा सामने आई। वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी, वाणिज्यिक, आर्थिक और राजनीतिक सरोकार के मोर्चे पर हमारी सम्बद्धता गहन हुई। संवाद और सरोकार का यह क्षितिज निश्चय ही अनुवाद के साधन रूप को मजबूती से सामने लाता है। यों कहें तो अनुवाद राष्ट्र के उन्नयन का सबल एवं शक्तिशाली माध्यम है जिसकी धुरी पर संपूर्ण विश्व। का बाजार घूमता है और उसके परिधि में उपभोक्ता बाजार विद्यमान रहता है। भूमंडीकरण के दौर में अनुवाद एक महत्व्र उपूर्ण साधन के रूप में सिद्ध हुआ। बाजारवाद के प्रभाव से भाषा साहित्य के विस्तांर में नई गति मिली है। इसलिए वैज्ञानिक प्रगति की सूचना आमजन तक पहुँचाने में अनुवाद ही सबसे अधिक सशक्त शक्तिशाली साधन के रूप प्रयुक्त हो रही है। इसका माध्यम जनसंचार, इंटरनेट, लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य एवं घरेलु उत्पाएदों का विवरणिका इत्यादि रहा है।

साहित्य साध्य के रूप में अनुवाद :–

''ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में अनुवाद अपने आप में साध्य है। डार्विन का विकासवाद हो या मार्क्स के साम्यवादी विचार, फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक निष्कर्ष हों या महात्मा गांधी का सत्याग्रह–ये राष्ट्र की सीमा को लांघकर समूचे मानव समुदाय को आंदोलित और आलोड़ित करने वाले साबित हुए हैं जो कि अनुवाद की महिमा के कारण है। दर्शन, विज्ञान, विचारधारा और साहित्य क्षेत्र की श्रेष्ठ उपलब्धियों को एक भाषा की सीमा से बाहर लाकर उसे सार्वदेशिक और सार्वजीन बनाना ज्ञान–क्षेत्र की सहज और स्वाभाविक गतिविधि होती है जो अनुवाद का साध्य रूप है।''[19] अनुवाद के प्रति निष्ठावान लोग बहुत पहले से होते आ रहे हैं, आज भी हैं और आगे आने वाले दिनों में भी होंगे। भले ही इस क्षेत्र में मनोयोग से काम करने वाले कम होते हैं। सच यह है कि अनुवाद करना अथवा अनुवादक बनना कहीं से भी दोयम श्रेणी की प्रतिभा का कार्य नहीं है। यह तथ्य अब सिद्ध हो चुका है।

वर्तमान युग सूचना क्रांति का युग है और इस युग की गाड़ी के दो पहिए हैं– एक अनुवाद और दूसरी आधुनिक प्रौद्योगिकी। ज्ञान–विज्ञान और वाणिज्य–उद्योग के व्यापक क्षेत्र में सूचना का समूचा संवहन केवल एक भाषा में असम्भव है। अनुवाद साधन और साध्य–दोनों रूपों में विश्व की बहुभाषिक संस्कृति को संबल दे रहा है। मानव समाज को उन्नत बना रहा है। अनुवाद कार्य अपने–आप में एक ध्येय है, एक कार्यक्षेत्र है। अनुवाद का प्रयोजन पटल बहुत ही विस्तृत हो गया है। भूमंडलीकरण के युग में अनुवाद कार्य विकास कार्य की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। हमें अनुवाद के विभिन्न प्ररिपेक्ष्य एवं प्रयोजन की जानकारी होनी चाहिए। अनुवाद विश्व साहित्य की समृद्धि एवं विश्व प्रगति का वाहक है।

सामान्य अनुवाद की प्रक्रिया और मानक प्रविधि :–

डॉ. भोलानाथ तिवारी अनुवाद के प्रक्रिया को पाँच चरणों में विभाजित करते हैं। वे हैं :–

1. **पाठ–पठन :–** पहला चरण अनूद्य सामग्री को पढ़ना और अनुशीलन करना साथ ही नई दृष्टि से भाषिक भाव को समझना।
2. **पाठ–विश्लेषण :–** दूसरे चरण में अनुवाद की दृष्टि से पाठ का विश्लेकषण करना।

भाषांतरण :– तीसरे चरण में दूसरे चरण के पाठ–विश्लेषण के आधार पर विभक्त स्रोत–भाषा की इकाईयों का

लक्ष्य–भाषा इकाईयों में अंतरण करना।

समायोजन :– चौथे चरण में अंतरित पाठ का लक्ष्य भाषा ही भाषा की दृष्टि से समायोजन करना।

मूल से तुलना :– अनुवादक को चौथे चरण में जाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझते हैं। बल्कि मूल से तुलना अवश्य करना।''[28]

अनुवाद मानक प्रक्रिया और चरण का तात्पर्य :–

अनुवाद कार्य को प्रारंभ करने के लिए एक निश्चित प्रकार की प्रक्रिया और प्रविधि से गुजरना पड़ता है। अनुवाद कार्य विभिन्न चरणों में संपन्न होता है। इसलिए अनुवाद की प्रकिया का प्रत्येक चरण का विस्तृत विवरण और विश्लेषण अति आवश्यक हो जाता है। प्राचीन समय में गुरु जो कुछ अपने शिष्यों के समक्ष कहते थे, शिष्य उसे दोहराते थे, इस विधा को अनुवाद कहा जाता था। कालांतर में जैसे–जैसे नई–नई खोजें हुईं, नए–नए विषय उभरे और अनुवाद शब्द का भी विस्तार हुआ और इसे दो भाषाओं में सेतु के रूप में देखा जाने लगा। अनेकों भाषाओं में इसे अलग–अलग नामों से जाना जाने लगा यथा तजुर्मा, उल्था, टीका तथा भाषांतरण आदि। अनेक विद्वानों ने इसकी अलग–अलग परिभाषाएं दीं परंतु सभी परिभाषाओं का एक ही निष्कर्ष है, एक भाषा की सामग्री का दूसरी भाषा में अंतरित करने को अनुवाद कहते हैं परंतु ऐसा करते समय दोनों भाषाओं की भाषागत विशेषताओं का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अनुवाद की इस विधा को करने की एक विशिष्ट प्रक्रिया होती है।

संक्षेप में अनुवाद प्रक्रिया के प्रमुख सोपान :–

(1) स्रोत भाषा के भाव या विचार को लक्ष्य भाषा में यथा संभव उसके मूल रूप में लाना।

(2) स्रोत भाषा की अभिव्यंजना–शैली (संरचना–विधि) के यथासंभव समान (या अधिक–से–अधिक) अभिव्यक्ति पद्धति का प्रयोग लक्ष्य भाषा में भी करना।

(3) स्रोत भाषा के कथ्य (संदेश प्रयोजन) को यथासंभव अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास करते हुए भी कथन–भंगिमा और अभिव्यंजना–प्रवाह में लक्ष्य भाषा की निजी परंपरा एवं प्रकृति की अनुरूपता का ध्यान रखना। उदाहरणतः अंग्रेजी में मिलियन (Million), बिलियन (Billion) आदि संख्याओं का हिंदी अनुवाद करते समय लाख, करोड़ आदि का प्रयोग उचित होता है।

पाठबोधन और पाठ का अध्ययन :– अनुवाद करने से पूर्व पाठ्य वस्तु (Text) को सावधानी पूर्वक पढ़ा जाना चाहिए। स्रोत भाषा की अपनी भाषिक संरचना सांस्कृतिक विशेषता, शैली, व्याकरण तथा भाषा सौष्ठव होता है। अतः अनुवादक द्वारा पाठयवस्तु को उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर ही पढ़ना चाहिए। कई बार लेखक, टंकक या मिलानकर्ता द्वारा वाक्य में कुछ छूट भी जाता है या मात्राएं कुछ अलग ही अर्थ प्रकट करने लगती हैं :–

उदाहरण :– A badminton tournament was organized in the flood hit stadium. सामान्यतः मैच दिन या रात में organised होते हैं। रात में रोशनी की व्यवस्था की जाती है। इसीलिए यहाँ पर flood hit शब्द है न कि floodhit । यह शब्द गलती से floodhit हो गया है और यदि इसे सावधानी से नहीं पढ़ा जाएगा तो इसका अनुवाद रोशनी युक्त स्टेडियम के स्थान पर बाढ़ग्रस्त स्टेडियम पढ़ा जाएगा जो कि सही नहीं होगा।

सार्थक भाव की समझ और अर्थग्रहण – पाठ्य वस्तु को सावधानी पूर्वक पढ़ने के बाद अर्थग्रहण करना चाहिए। अर्थ ग्रहण करते समय निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष ध्यान दिया जाए :–

1. **व्याकरण :–** व्याकरण भाषा साहित्य को मानक रूप देता है। व्याकरण के विभिन्न घटकों को देखते हुए

अर्थग्रहण किया जाना चाहिए। शब्द वाक्य में प्रयोग होने के बाद लिंग, वचन क्रिया, संज्ञा विशेषण के अनुरूप अपना अर्थ देता है।

उदाहरण– 1. A stone on the road. यहाँ stone संज्ञा है।

2. Did you stone him. यहाँ stone क्रिया है।

3. A is stone deaf. यहाँ stone विशेषण है।

2. शब्दकोश और पारिभाषिक शब्दावली :– अनुवाद कार्य के सबसे उपयोगी अनुवाद उपकरण होता है अनुवादक के लिए शब्दकोश एक बाइबिल होता है। यह महत्त्वपूर्ण उपकरण या औजार होते हैं जो अनुवाद कार्य में हमेशा मददगार होता है। शब्दकोश विभिन्न प्रकार के होते हैं। अनुवादक स्रोतभाषा एवं लक्ष्य भाषा के अनुसार शब्द कोश का चयन करता है और उसका प्रयोग करता है। अनुवादक के हर संकट एवं चुनौती का समाधान शब्दकोश करता है इसलिए इसे अनुवादक का बाइबिल कहा जाता है। अनुवाद कार्य करते समय अनुवादक का महत्त्वपूर्ण उपकरण उसका विभिन्न प्रकार द्विभाषी शब्दकोश, शब्दावली, एवं थिसारस होता है। अनुवादक स्रोत सामग्री एवं लक्ष्य भाषा के आधार पर शब्द कोश, पारिभाषिक शब्दावली, विश्वकोश, महाकोश, ई–कोश आदि का मदद लेता है। इस प्रकार अनुवादक द्वारा शब्दों का अर्थ जानने एवं समझने के लिए शब्दकोशों की सहायता ली जाती है। विषय के अनुसार ही शब्दकोश का चयन किया जाना चाहिए। यदि प्रशासनिक सामग्री है तो ऐसी स्थिति में प्रशासन शब्दावली यदि इंजीनियरी, विज्ञान, तकनीकी, मानविकी, रक्षा, तकनीकी, न्याय, कला की सामग्री है तो तदनुसार संबंधित शब्दावली देखी जानी चाहिए। शब्दावली देखते समय शब्द की क्रिया, संज्ञा विशेषण रूप को देखा जाना चाहिए। कई बार क्रिया का अन्य रूप शब्दकोश में नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में विशेष सावधानी बरती जाए। उदाहरण– Ground Chilli हम अगर शब्दकोश देखेंगे तो Ground शब्द के लिए भू, पृथ्वी, जमीन, धरा आदि पर्याय मिलेंगे। यहाँ Grind शब्द का Past Participle form होता है ground और इसका अर्थ है– पिसी हुई मिर्ची होगा।

3. उपमान :– भाषा को अलंकारिक बनाने के लिए कई बार उपमानों का भी प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्थिति में ऐसे उपमानों का तदनुसार ही अर्थ ग्रहण किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए अनुरक्षण विभाग का श्री.....गधा है। यहाँ इसका अनुवाद donkey नहीं होगा– अर्थात dull होगा। इसी प्रकार उल्लू है का अर्थ मूर्ख है, परंतु यह भी सावधानी बरती जाए जहाँ भारत में उल्लू का अभिप्राय मूर्ख है वहीं जापान में उल्लू का अर्थ समझदार है।

4. बहुत से उक्तियाँ विद्वत जनों के द्वारा दी जाती हैं और उन्हे मात्र खोजे जाने की आवश्यकता है जैसे सत्यं, शिवं, सुंदरम् का अनुवाद है– The Truth, The God, The Beauty Ground इस प्रकार Saluting my country वंदेमातरम् Truth prevails ever–सत्यमेव जयते संविधान के कुछ शब्द जैसे– Sovereign Democratic संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी लोकतांत्रिक गणराज्य आदि।

5. अन्य पद से सान्निध्य :–

पद के साथ शब्द के संबंध के अनुरूप अर्थ ग्रहण किया जाता है। जैसे– Leave is granted –छुटटी मंजूर की जाती है। Advance is sanctioned. अग्रिम मंजूर किया जाता है। The proposal is accepted –प्रस्ताव

मंजूर किया जाता है। यहाँ पर leave के साथ granted, Advances के साथ sanctioned तथा Proposal के साथ Accepted के अनुसार ही शब्द चयन किया गया है।

6. **प्रोक्ति :-** प्रोक्ति संप्रेष्य और संप्रेषण की अंतर्निहित आवश्यकता साधने वाली वाक्योपरि इकाई है। सष्पूर ने इसे discourse कहा। उन्होंने बताया कि Language is not a system of speaking but talking इसी बातचीत को उन्होंने प्रोक्ति का नाम दिया। अतः प्रोक्ति को संप्रेषण की पूर्ण इकाई मानते कुछ ही अनुवाद दिया जाना चाहिए।

7. **विश्लेषण :-** अर्थ ग्रहण करने के पश्चात पाठ्य वस्तु को देश, काल, परिस्थिति, विषय संदर्भ को देखते हुए विश्लेषण किया जाना चाहिए– विश्लेषण में वाक्य संरचना– अर्थात Active को Passive में Passive को Active, Compound, complex sentence, single sentence शब्दावली, भाषा सौष्ठव आदि घटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन और समीक्षात्मक किया जाना चाहिए।

उदाहरण– Family headed by, Team headed by, Rally headed by, Organisation headed by.

1. रिपोर्ट कल भेजी जाएगी

   Report will be send tomorrow

2. इसे कल तैयार कर लिया गया था।

   This has been prepared yestday itself.

यहाँ पहले वाक्य का कल – Tomorrow दूसरे वाक्य का कल–yesterday है। उसी प्रकार एक समय में अनुसंधान का अभिप्राय सुध बुध था जबकि आज इसका अर्थ खोज है।

9. **परिस्थिति और परिवेश** – पानी को जब अनुष्ठान के लिए उपयोग में लाया जाता है तो वह जल बन जाता है परंतु यही जब पौधों में सींचने के लिए उपयोग में लाया जाता है तो यह पानी कहलाता है परंतु जब आंखों से बहता है तो आंसू कहलाता है। यहीं जब प्रातःकाल गुलाब को पंखुड़ियां के ऊपर चमकता है तो शबनम कहलाता है।

10. **संदर्भ :-** तकनीकी क्षेत्र में Plant संयंत्र है जबकि वनस्पति विज्ञान में Plant का अर्थ पौधा है। चिकित्सा में Treatment–उपचार है। तथा आम बोलचाल में Treatment – व्यवहार है।

11. **प्रसंग :-** कुर्सी–एक आम वस्तु chair है परंतु कुर्सी की लड़ाई– Post है।

भाषांतरण :-

अर्थग्रहण तथा विश्लेषण के बाद अनुवादक को भाषांतरण करना चाहिए। स्रोत भाषा से लक्ष्य में भाषांतरण करते समय भी लक्ष्य भाषा के विभिन्न विराम चिह्न वर्तनी संबधी उक्तियों आदि को देखा जाता है। भाषांतरण करते समय यह भी देखा जाना चाहिए कि यदि स्रोत भाषा में कहीं शीर्षक या कुछ रेखांकित पदों को (underline) किया गया तो लक्ष्य भाषा में भी यह किया जाना चाहिए।

समायोजन :-

भाषांतरण हो जाने के बाद समायोजन किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम स्रोत भाषा की पाठ्य वस्तु के साथ लक्ष्य भाषा की पाठ्य वस्तु को मिलान कर लिया जाता है तथा यह देखा जाता है कि कोई शब्द या वाक्य या

आंकड़ा या तथ्य छूट तो नहीं गया है। यदि छूट गया है तो उसे लक्ष्य भाषा में उस स्थान पर जोड़ा जाना चाहिए।

पुनरीक्षण एवं मूल्यांकन :-

यह अनुवाद प्रक्रिया का अंतिम चरण होता है जिसमें समस्त अनूदित सामग्री को एक बार बहुत ही सावधानीपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए तथा यह देखा जाना चाहिए कि कहीं अर्थ का अनर्थ तो नहीं हुआ है या कहीं अनुवाद में किसी बात को स्रोतभाषा की तुलना में कम शब्दों में काम पूर्ण रूप से व्यक्त किया जा सकता हो या कहीं किसी शब्द, पद, वाक्यम की लक्ष्य भाषा है और अधिक स्पष्ट करने के लिए उसे आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक वाक्यों में लिखा जा सकता है। उदाहरण के लिए यह वाक्य–राबड़ी देवी को सोनिया गांधी जी द्वारा मुख्यमंत्री बनने पर बधाई दी गई। उपर्युक्त वाक्य, लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

अतः लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुकूल ही इस वाक्य को बनाया जाना चाहिए अर्थात सोनिया गांधी ने राबड़ी देवी को मुख्यमंत्री बनने पर बधाई दी। अर्थात पुनरीक्षण करते समय सभी तथ्यों यथा शब्द चयन, भाषा प्रकृति, शैली, भाषा सौष्ठव आदि शब्दो, घटकों की दृष्टि से अनूदित सामग्री का पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। वास्तव में अनुवाद में पहला कर्म–पुरुष अनुवादक है और उसका परिष्कार देनेवाला दूसरा कर्म–पुरुष पुनरीक्षक है। यदि संभव हो तो तीसरा कर्म–पुरुष मूल्यांवकक भी पृथक ही होना चाहिए ताकि वह मूल तथा अनूदित का तुलनात्मिक अध्यतयन करते हुए उचित–अनुचित एवं ग्राह्य या अग्राह्य का निर्णय भी कर सके। परंतु भारत में अनुवादक ही सर्वज्ञ होता है। वह पुनरीक्षक भी होता है और अपेक्षा अनुसार मूल्यांकक भी। यह कदापि उचित नहीं, पर स्थिति यही है। सामान्यषतः होता यह है कि दो अनुवादक यदि है तो एक का अनुवाद दूसरे के पास पुनरीक्षण हेतु भेजा जाता है।

यहाँ पुनरीक्षण से निष्ठा, समर्पण और तटस्थहता की अपेक्षा रहती है। पुनरीक्षक सोचता है कि 'पड़ोसियों के बच्चों की देखभाल' भला मैं क्यों करूं? जबकि वह यह नहीं सोचता है कि यदि वह ऐसा करेगा तो वह सामान्य न रहकर विशिष्ट एवं स्तुथत्यर हो जाएगा। यदि अनुवाद या पुनरीक्षक से संतुष्टि नहीं मिलती तो समझिए कहीं कोई कमी–त्रुटि है। एक अन्यए उदाहरण देखिए

"P V Narsimha Rao has gone again into a stage of Unconsciousness."

अंग्रेजी की प्रवृति के हिसाब से यह ठीक हो सकता है। फिर यह भी क्यो जरूरी है कि अंग्रेजी ठीक ही लिखी गई है? अनुवादक बेचारा 'मक्षिका स्था ने मक्षिका' या 'ना कुछ छोड़ो ना जोड़ो का मूल मंत्र लिए, 'अंध अनुवादक' बन जाता है। इस कारण वह इस वाक्य का अनुवाद कर देता है– ''पी.वी नरसिम्हा राव फिर बेहोशी की हालत में चले गए'' क्या उपयुक्त अनुवाद से ऐसा नहीं लग रहा कि पी. वी. नरसिम्हा राव उठे और जान–बूझकर बेहोशी की हालत में चले गए हो। जैसे कोई एक कमरे से दूसरे कमरे में चला गया उसी तरह से वे उठकर बेहोशी में चले गए हों। अतः सही अनुवाद होना चाहिए था 'पी.वी. नरसिम्हा राव फिर बेहोश हो गए।'

आदर्श अनुवाद पुनरीक्षक के गुण :-

पुनरीक्षक तथा मूल्यांकनकर्ता को समीक्षक एवं संपादक की दृष्टि से अनूदित पाठ की जांच परख करनी होती है। पुनरीक्षक के लिए अपेक्षित है कि वह मानक अनुवाद कार्य को सुनिश्चित करने हेतु निम्नलिखित

दायित्व को निभाते है :–

(1) पुनरीक्षक को स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा में दक्ष तथा निपुण होना आवश्यक है।

(2) उसे धैर्यवान, समर्पित एवं निष्ठावान होना चाहिए ताकि वह जनहित के कार्य के साथ पूरा न्याय कर सके। उसमें तटस्थता और निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए। ताकि वह अनुवादक का पूरक बन सके।

(3) अनुवादक की शैली की गंध को अनूदित पाठ में समाहित होने से यथा संभव रोकना चाहिए और अपनी गंध को भी रोकने का सार्थक प्रयास करना चाहिए।

(4) पुनरीक्षक, वास्तविक संशोधक एवं संपादक बनकर अनुवाद को निखारने तथा परिष्कृत करने वाला होना चाहिए।

(5) पुनरीक्षण के पश्चारत उस सामग्री का अपेक्षा तथा आवश्यकता के अनुसार तटस्थ मूल्यांकन भी करना अथवा करवाना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि लेखक का मूल कथ्य क्या है? वह उस कथ्य को किस शैली में प्रस्तुत कर रहा है और क्यों? उसकी रचना का कुल प्रभाव क्या है? और उसे अनुवाद में कैसे उतारा जा सकता है?

(6) उसे स्पष्ट एवं संदिग्ध संकल्पकनाओं का निवारण कर उन्हें स्पष्ट, बोधगम्यक एवं असंदिग्ध बनाने का हर संभव प्रयास भी करना चाहिए।

(7) वाक्यों की अन्विति, अवतरणों की संरचना, सुपाठ्यता, भाषा का भावानुकूलन, विचार–प्रवहन तथा भाव–प्रवणता आदि के संबंध पुनरीक्षक से पूर्णतः जागरूकता की अपेक्षा रहती है।

उससे 'गिद्ध दृष्टि' से मूल तथा अनुवाद के संदर्भ में पूरी तरह से सचेत एवं सजग रहना अपेक्षित है।

प्रूफ रीडिंग :–

अनुवादक का कार्य अनुवाद सम्पन्न हो जाने पर ही पूरा नहीं हो जाता, अनुवाद हो जाने के बाद भी कुछ सामग्री प्रकाशन/मुद्रण हेतु भेज दी जाती है, अतः मुद्रण या प्रकाशन की इस प्रक्रिया में पहला चरण प्रूफ रीडिंग होता है। अतः अनुवादक को प्रूफ रीडिंग के विषय में भी पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। प्रूफ रीडिंग का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण प्रूफ शोधन में अधिक समय लगता है और मुद्रक भी आपके संशोधनों को नहीं समझ पाता है। अतः प्रूफ शोधन संबंधी जानकारी प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी है। अनुवादक के लिए तो यह परम आवश्यक है।

परिभाषा :–

किसी भी साहित्य का प्रकाशन के पहले वह प्रूफ रीडिंग प्रक्रिया से गुजरता है जिससे साहित्य परिमार्जित एवं मानक रूप ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में व्यवहारिक, तथ्यात्महक एवं वर्तनी पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

डॉ. जे. पी. नौटियाल के अनुसार "प्रूफ रीडिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कच्चे कागज पर मुद्रण से पहले जाँच हेतु निकाली गई छपी सामग्री की एक छाप को सुधार करने हेतु पढ़ा और सुधारा जाता है।"[29]

उक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रूफ रीडिंग का मुख्य उद्देश्य है त्रुटियों का सुधार। प्रूफ रीडिंग की कुछ अपनी विशेष शब्दावली होती है इसकी जानकारी प्राप्त करना नितांत आवश्यक है। अनुवाद और प्रूफ रीडिंग दोनों में एक समानता यह भी है कि दोनों में ही अत्यधिक सावधानी बरतनी पड़ती है जरा–सी नजर चूकते ही या ध्यान बंटते ही त्रुटि हो जाती है। अतः दोनों ही कार्यों को करते समय एकाग्रचित होना प्रथम आवश्यकता है। अनुवाद के संबंध में हम संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रूफ रीडिंग को हम दो भागों में विभाजित करके इसका अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। प्रूफ रीडिंग के दो भाग इस प्रकार हैं :–

1. प्रूफ रीडिंग का सैद्धान्तिक पक्ष, 2. प्रूफ रीडिंग का व्यावहारिक पक्ष।

सैद्धान्तिक पक्ष :–

प्रूफ रीडिंग के सैद्धान्तिक पक्ष में हम प्रूफ रीडिंग से संबन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं का उल्लेख किया गया है।'' प्रूफ रीडिंग का अर्थ : (1) प्रूफ का अर्थ विभिन्न शब्दकोशों के अनुवाद निम्नवत हैं : The concise Oxford Dictionary के अनुसार – Trial Impression taken from typ or film (Page 825) Chambers English Hindi Dictionary के अनुसार – प्रूफ रीडिंग प्रूफ शोधन है।''[2]

अर्थात् प्रूफ एक ऐसा कागज है, जो मुख्य पाठ के मुद्रण से पूर्व जाँच हेतु निकाला जाता है ताकि इसकी अशुद्धियों में सुधार किया जा सके इस सुधार की प्रक्रिया को ही प्रूफ रीडिंग कहते। प्रूफ दो प्रकार का होता है

1. मशीन प्रूफ :–

इसमें व्याकरणिक दोष एवं वर्तनी को सुधारा जाता है। यह सुधारा गया अंतिम चरण का प्रूफ होता है, जिसे मशीन में मुद्रण हेतु भेजने से पहले निकाला जाता है। यह प्रूफ बहुत ही उपयोगी होता है।

2 प्रेस प्रूफ :–

यह अंतिम प्रूफ होता है। इसमें सभी स्तरों पर किए गए संशोधन शामिल होते हैं।

व्यावहारिक पक्ष :–

प्रूफ रीडिंग करते समय हमें अनेक चिह्नों, शब्दावलियों का प्रयोग करना पड़ता है। ये शब्दावलियाँ प्रायः सभी भाषाओं में समान रूप से प्रयुक्त होती हैं। परंतु कुछ शब्दावलियाँ सिर्फ अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त होती हैं, जैसे – Capital Letters या Small Letters जैसी संकल्पना केवल रोमन लिपि अर्थन अंग्रेजी या रोमन लिपि में लिखी जाने वाली भाषाओं में प्रयुक्त होती हैं। प्रूफ शोधन हेतु चिह्न सामग्री में लगाए जाते हैं तथा उसका विवरण मार्जिन में लिखा जाता है। प्रूफ रीडिंग करने का एक मानक तरीका होता जिसके अनुपालन से पाठ या साहित्य परिमार्जित हो जाता है। इसके भाषा विज्ञान का ज्ञान अवश्य होनी चाहिए साथ मानक वर्तनी की जानकारी होनी चाहिए। इस प्रकार प्रूफ रीडिंग के द्वारा लिखित साहित्य स्तरीय रूप ग्रहण करता है।

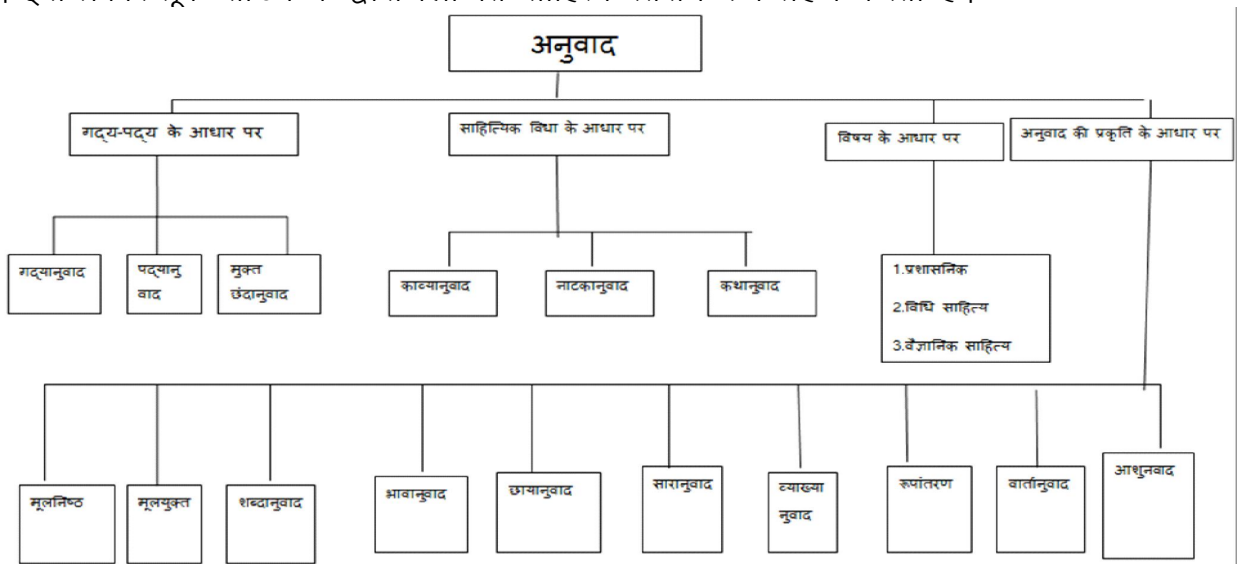

एक भाषा में व्यक्त विचारों को, यथा संभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। अनुवाद की अवधारणा के माध्यम से हमें अनुवाद के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य की जानकारी मिलती है। अनुवाद में भाषाई पारस्परिकता दरअसल अंतरभाषिक होता है। यह कथन के भाषिक रूपांतरण के रूप में। इसी वजह से अनुवाद को भाषाओं का संवाद कहा जाता है।

अनुवाद पर डॉ. पूरनचंद टंडन ने गंभीरता से विचार किया है – "अनुवाद उपकार भी है तो उपहार भी। उपासना भी है तो साधना भी। ऊर्जा भी है। तो ऋजुता भी। एकाग्रचित्त होने या बनने का मार्ग भी है तो कर्मठता और कर्तव्यपरायणता की प्रतिबद्धता भी। गांभीर्ययुक्त अनुशासन भी है तो चिंतनशील विधा भी। जिज्ञासा को समाप्त और शांत करने का साधन भी है तो विषय एवं भाषागत दक्षता प्रदान करने वाला गुरु भी। दूरदर्शिता का झरोखा भी है अनुवाद तो दृढ़प्रतिज्ञा होकर लक्ष्य साधन की शक्ति भी। उपकृत करने की शिक्षा भी है अनुवाद तो 'धैर्य, ध्यान और ध्येय' प्राप्ति का मार्ग भी है अनुवाद। नवीनता और निमग्नता का संगम भी है, अनुवाद तो निष्ठा, परिश्रम, परहित, पुरुषार्थ, प्रज्ञा और प्रतिभा–प्रतिष्ठा का काम भी है अनुवाद।"[2] आज विश्व के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जो उथल–पुथल है, उसका सार्थक निराकरण अनुवाद है। लेकिन अनुवाद की गरिमा और सार्वभौमिक प्रतिष्ठा का आंकलन करने के लिए अनुवादक को भाषाई विकसन–शीलता के लिए एक अमिट साक्ष्य बन जाता है। अनुप्रयुक्त पक्ष (applied aspect of evolutionness of Language) पर अधिक ध्यान देना चाहिए। इस बदलते समाज में प्रत्येक दिन नई–नई संकल्पनाओं का विकास हो रहा है और उन संकल्पनाओं के तदनुकूल नए–नए शब्दों का निर्माण स्वतः हो रहा है। इतिहास के पटल पर होने वाली घटनाएं भी कभी–कभी ऐसे ऐतिहासिक क्षणों को लिखकर चली जाती हैं जो सदा–सदा अमेरिका के 'वर्ल्ड ट्रेड सेंटर' की और 'मुंबई' में आतंकवादियों की क्रमशः 11 सितंबर, 2001 और 26 नवम्बर, 2008 की घटनाएं विश्व इतिहास में सदैव के लिए एक दुःखद अध्याय बन कर रह जाती है। आज 9/11 और 26/11 कहने मात्र से ही प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक ऐसा चित्र उपस्थित हो जाता है जिसका अनुवाद शब्दों के माध्यम से तो कभी किया ही नहीं जा सकता है।

मानव जीवन पर त्रासदी या घटनाओं के प्रभावों एवं भावनाओं का अनुवाद करना अनुवादक के लिए कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है। इस संबंध में अंग्रेजी–हिंदी ही नहीं विश्व की किसी भी भाषा में अनुवाद असाध्य है। अनुवादक के समक्ष इन दो घटनाओं के अनुवाद के लिए कोई शब्द नहीं है। वैसे अंग्रेजी की एक उक्ति इस संबंध में अत्यंत सार्थक सिद्ध होती है– अनुवाद कार्य में अनुवादक अपने कोश की सहायता से आगे बढ़ता है, लेकिन कोशविज्ञान (Lexicology) पर अध्ययन करने वाले विद्वानों ने कभी सोचा या कल्पना भी न की होगी कि अंक भी कभी शब्द बन पाएंगे।

वस्तुतः ये शब्द क्या, पूरी तरह से प्रोक्ति ही हैं। प्रशासन में नित नई–नई योजनाओं और नियमों का समावेशन हो रहा है। Language is a poor substitute of thoughts. अनुवादक को इनके अनुवाद के प्रति भी सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। अर्थात विश्व की भाषाओं में अनेक विकसनशील घटकों का निर्माण हो रहा है। साहित्य निर्माण में इन घटकों का योगदान अप्रतिम है। विश्व की भाषाओं में इन्हीं विकसनशील घटकों के आधार पर अनुवाद कार्य निरंतर बढ़ता जा रहा है।

निष्कर्ष के रूप कहा जा सकता है कि अनुवाद प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य पुनरीक्षण और मूल्यांकन होता है।

संदर्भ :-

1. डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल – अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार, पृ० 96, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० 2006
2. डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल – अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार, पृ० 96, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० 2006
3. जयंती प्रसाद नौटियाल, अनुवाद – सिद्धान्त एवं व्यवहार, पृ० 67, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं० 2006
4. जी. गोपीना अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग, पृष्ठव सं 9, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985
5. हंसा– अरुण कुमार झा, नौवा अंक, 2012–13, गैस टरबाइन अनुसंधान स्थापन पृष्ठ–40
6. अनुवाद, अंक 143–144, अनूदित फारसी साहित्य विशेषांक (मानव संस्कृति और उसकी आत्मा का प्रकाशक : फारसी अनुवाद, पृष्ठ–42)

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 25-29

वैश्वीकरण दौर में भारतीय शिक्षा और भूगोल शिक्षण

डॉ. नटवर तेली
सहायक आचार्य, संजीवनी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर।

सारांश :-

वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिससे वर्तमान में कोई भी क्षेत्र नहीं बच पाया है, चाहे वो आर्थिक हो, सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो या तकनीकी का क्षेत्र हो। फ़िर शिक्षा का क्षेत्र इस से कैसे बच पाता? लगातार शिक्षा में परिवर्तन हो रहे हैं, इन परिवर्तनों ने भूगोल शिक्षण में कई आधारभूत बदलाव किये हैं। जैसे नवीन तकनीकी का प्रयोग, नवीन शिक्षण विधियों का प्रयोग, वैश्विक समझ विकसित करने वाली विषय वस्तु का समावेश के साथ साथ वैश्विक भागिदारी के लिये तैयार करने के प्रयासों को को प्राथमिकता मिली है।

की वर्ड :- वैश्वीकरण, भारतीय शिक्षा, भूगोल शिक्षण।

भारतीय शिक्षा में वैश्वीकरण :-

शिक्षा की किसी भी देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में भूमिका असंदिग्ध है। क्योंकि विकास की वर्तमान और भावी संभावनायें मानव संसाधन के विकास पर निर्भर है तथा मानव संसाधन का विकास शिक्षा पर निर्भर करता है। विकसित देशों ने इसीलिये शिक्षा पर प्राथमिकता से ध्यान दिया। भारत में भी आजादी से पहले और बाद में विभिन्न आयोग और समितियों ने शिक्षा पर विचारणीय कार्य किया है। आजादी से पहले की बात करें तो मैकाले का विवरण पत्र, वुड घोषणा पत्र, भारतीय शिक्षा आयोग, विश्वविद्यालय आयोग, सैडलर आयोग, हार्टोंग आयोग, वुड एबट समिति, सार्जेंट प्रतिवेदन आदि समितियों ने शिक्षा पर महत्वपूर्ण कार्य किया।

स्वतंत्र भारत में भी शिक्षा में गतिशीलता बनाये रखने के लिये अनेक आयोग और समितियों का गठन किया गया। यथा समय शिक्षा नीतियाँ तथा योजनायें बनाई गई। ताराचन्द समिति, राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, आचार्य नरेन्द्र देव समिति, श्रीमाली समिति, कोठारी आयोग, आचार्य राममूर्ति समिति, जनार्दन रेड्डी समिति, यशपाल समिति आदि का गठन किया गया। साथ ही विभिन्न आयोगों के सुझाव पर पूरे भारत में शिक्षा नीतियाँ लागू की गई। लेकिन देखा जाये तो 1991 के बाद भारत तथा विश्व के अन्य भागों में साम्यवादी व्यवस्था के समाप्त होने के बाद से ही बदलाव की शुरुआत होने लगी थी। इसी वजह से समाज की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियों में अचानक परिवर्तन आना शुरु हो गया। इन परिस्थितियों ने समाज को बदलना और प्रभावित करना शुरु कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत में शिक्षा भी प्रभावित हुई, तथा इस का परिदृश्य बदलने लगा।

वास्तव में वैश्वीकरण आर्थिक घटनाओं से जुड़ी ऐसी प्रक्रिया है, जो भौगोलिक दूरियों को कम करने,

आपसी अन्तः क्रिया बढ़ाने तथा संपर्क की व्यवस्थाओं से संबंधित है। साथ ही यह विभिन्न समुदायों, राज्यों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, गैर सरकारी संस्थाओं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का एक जाल है जो वैश्विक संपर्क बनाता है। दुनियाभर में सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है, चाहे वे सांस्कृतिक हो या आर्थिक, राजनीतिक या पर्यावरणीय हो। जाहिर है कि यह एकरूपता के पक्ष में और स्थानिकता के विरुद्ध है। आर्थिक पक्ष की जिस प्रधानता का यहाँ जिक्र किया गया है, वह शिक्षा को गहरे से प्रभावित कर रही है, जिससे ज्ञान प्राप्त करने, बच्चे के संपूर्ण विकास, सीखने, स्थानिकता जैसी धारणाएं हतोत्साहित होती है और शिक्षार्थियों के उपभोक्ता जैसी भूमिका में आने का खतरा पैदा हो जाता है। क्योंकि नब्बे के दशक में जो आर्थिक नीतियाँ लागू की गई उनसे सरकार ने अपने आप को कई जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया, तथा सरकार द्वारा संचालित होने वाले कई क्षेत्रों को बाजार के हवाले कर दिया। नतीजा यह हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण की बाढ़ आ गई। यह बाढ़ सिर्फ़ शहरों तक ही सीमित नहीं रही, गांवों और कस्बों तक भी पहुंच गई। यानी शिक्षा का लक्ष्य मात्र तात्कालिक जरुरतें पूरी करने मात्र का साधन मान लिया गया है, जो किसी खास क्षेत्र में वेतनभोगी बना सकने योग्य बना सके। शिक्षा में रचनात्मकता, आलोचनात्मकता और संवाद क्षमता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को नजरअंदाज किया जाने लगा है। अतः यह कहा जाना कि भले ही हमने राजनीतिक आजादी प्राप्त कर ली हो, पर ज्ञान पर आज भी पश्चिमी सभ्यता का ही प्रभाव है। यही वजह रही है कि आज साहित्य, समाज, दर्शन, भाषा आदि की शिक्षा को बोझ माना जाने लगा है।

इन्ही चुनौतियों के मद्देनज़र शिक्षाविद अनिल सद्गोपाल ने 'शिक्षा में बदलाव का सवाल' में लिखा है "वह पाठ्यक्रम कैसा होगा जो हमें विश्व की विभिन्न धाराओं का सामना करने तथा उनसे कुछ सीख पाने के लिये इस प्रकार से सशक्त करे कि हम अपनी जड़ों से जुड़े रहें? अभी तक हमने वर्तमान शिक्षा प्रणाली के बुनियादी सिद्धान्तों पर सवाल उठाने की जुर्रत भी नहीं की है जो बुरी तरह विफ़ल हो चुकी है।" (सदगोपाल, 2009)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 में लिखा गया है कि "शिक्षा का उद्देश्य लोकतंत्र, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दूसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों को प्राप्त करने के प्रति प्रतिबद्धता का निर्माण करना होना चाहिये।" (एनसीईआरटी, 2005) साथ ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 यह अनुसंशा करती है कि विद्यार्थी को बाहरी जीवन व स्थानीय पर्यावरण से जोड़ा जाये।

भारत विश्व में अपनी राष्ट्रीय आय में से शिक्षा पर खर्च करने वाले देशों की सूची में से काफ़ी पीछे है, जबकि हमारी सरकार अपनी कुल राष्ट्रीय आय का एक बड़ा हिस्सा हथियारों की खरीद पर खर्च करती है। यह एक जरुरी सवाल है कि शिक्षा पर खर्च होने वाला कोटा लगातार कम होता जा रहा है। इस का प्रभाव यह हुआ कि सरकारी संस्थाएँ बिखर गई, "जब हम शिक्षितों की बात करेंगे तो फ़िर हमें उन्हें प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक में बांटना होगा, शोध में बांटना होगा। प्राथमिक शिक्षा एक तरफ़ सरकारी संस्थानों से प्राइवेट संस्थानों की तरफ़ लगातार रुख करती चली जा रही है, वहीं दूसरी तरफ़ लगातार महंगी होती चली जा रही है। एक जमाना था जब केवल सरकारी स्कूल हुआ करते थे, ट्रस्ट स्कूल हुआ करते थे और बहुत थोड़े निजी शिक्षण संस्थाओं तक चुनिंदा अमीरों के बच्चे पहुंच पाते थे। आज गरीब, किसान, मजदूर भी अपने बच्चे को प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना चाहता है क्योंकि सरकारी शिक्षण संस्थाओं का स्तर लगातार गिरा है।" (मीणा, 2019)

भारत में शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता और सरकारी संसाधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुये

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग 2005 ने निजीकरण का समर्थन किया और कहा कि देश में शिक्षा के अवसरों का दायरा बढाने की आवश्यकता है तथा उसमें निजी निवेश को प्रोत्साहित किया जाना उचित है। "एक सवाल शिक्षा की उपादेयता का भी है। वर्तमान में बाजार और पूंजी के प्रभाव में शिक्षा डिग्री मात्र रह गई है। शिक्षित लोगों को न रोजगार उपलब्ध है और न समाज के विकास में कोई भूमिका। शिक्षा सामाजिक विकास का माध्यम तभी हो सकती है जब उसका सीखने से संबंध हो और पाठ्यक्रम समाजोन्मुखी हो। इसलिये शिक्षा की सामाजिक उपादेयता सुनिश्चित करनी होगी और हमें देश के विकास में शिक्षा को सहयोगी रूप में आगे लाना होगा।" (मीणा, 2019)

शिक्षा में सूचना प्रोद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षा की परंपरागत प्रणाली को बहुत बदल के दिया। दुरस्थ शिक्षा का संप्रत्यय भी संभव हो पाया। इसके साथ–साथ शिक्षा की विषयवस्तु, दृष्टिकोण और अध्यापन की आवश्यकतायें भी बदली है। यही कारण है कि आज मानविकी विषयों से ज्यादा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा है। शिक्षण विधियों में भी परिवर्तन आया। परंपरागत शिक्षण विधियों की जगह नवीन आधुनिक विधियों ने ले ली, स्व–अधिगम को प्रोत्साहित किया गया। ग्रुप डिस्कशन, सेमीनार, कोपरेटिव लर्निंग, वर्कशोप, ट्युटोरियल, ब्रेन स्टार्मिंग आदि का प्रयोग शिक्षा में किया जाने लगा।

वैश्वीकरण और भूगोल शिक्षण :-

भूगोल सामाजिक विज्ञान का विषय है और समाज का नजदीक से अध्ययन करता है। अतः नयी आर्थिक नीतियों के प्रभाव स्वरूप बदलते समाज के मद्देनजर यह विषय और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में पाठ्यचर्या के स्वरूप के बारे में लिखा है कि "अपनी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता को सुदृढ करने के लिये पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिये कि वह युवा पीढी को इस के लिये सक्षम बना सके कि वह नई प्राथमिकताओं व बदलते सामाजिक संदर्भ मे उभरते दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में अतित का पुनर्मूल्यांकन कर पाएं।" (एनसीईआरटी, 2005) साथ ही एन.सी.एफ़. 2005 पाठ्यचर्या के क्षेत्र में एक युगांतकारी कदम उठाते हुए पाठ्यपुस्तकों को ज्ञान का एकमात्र स्रोत नहीं मान कर इन्हें सीखने के लिये सामग्री के रूप में प्रस्तावित करता है।

एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी महसूस करते हुए एन.सी.एफ़. 2005 यह मानता है कि "हम पर यह जिम्मेदारी आ गई है कि हम सारे बच्चों को जाति, धर्म संबंधी अन्तर, लिंग और असमर्थता संबंधी चुनौतियों से निरपेक्ष रहते हुए स्वास्थ्य, पोषण और समावेशी स्कूली माहौल मुहैया करायें जो उनको शिक्षा ग्रहण में मदद पहुँचाएँ तथा सशक्त बनाएँ।" (एनसीईआरटी, 2005) साथ ही एन.सी.एफ़. 2005 का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य 'शिक्षा बिना बोझ के' भी है, जिसे प्राप्त करने के लिये पाठ्यचर्या निर्माण के "पाँच निर्देशक सिद्धान्तों का प्रस्ताव रखा है–

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना।
- पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना।
- पाठ्यचर्या का इस तरह से संवर्धन करना कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया कराये बजाय इसके कि पाठ्यपुस्तक केन्द्रित बन कर रह जाये।
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राजव्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिंतायें

समाहित हो।" (एनसीईआरटी, 2005)

भूगोल उन विषयों में से एक है जो एन.सी.एफ़. 2005 के उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने में सबसे महत्वपूर्ण है। मनुष्य और पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों और इन सब के विकास के माध्यम से इस विषय में समाज का अध्ययन किया जाता है। यही कारण है कि आज भूगोल मात्र प्राकृतिक वातावरण या आर्थिक उपादानों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है अपितु इस का क्षेत्र अनेक गूढ़ विषयों जैसे– धर्म, औषध विज्ञान, जातियता, कला आदि को भी अपने में समाये हुए हैं। भूगोल की दो प्रमुख शाखाएँ है– भौतिक भूगोल और मानव भूगोल, लेकिन एक सामाजिक विज्ञान के रूप में देखा जाये तो भूगोल की "समाजशास्त्र से समाज भूगोल, प्रजाति विज्ञान से प्रजातीय भूगोल, अर्थशास्त्र से आर्थिक भूगोल, राजनीति विज्ञान से राजनीतिक भूगोल आदि भूगोल की प्रमुख भूगोल की उपशाखाएँ है जो व्यावहारिक जीवन से जुड़ी हुई है।" (शर्मा ह., 2018) आम तौर पर भूगोल का अर्थ मात्र उच्चावच, नदियाँ, जलवायु और मिट्टी के अध्ययन से लिया जाता है, जो संकीर्णता का द्योतक है। वास्तविकता तो यह है कि भूगोल एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें पृथ्वी के भौतिक वातावरण के साथ–साथ मानवीय क्रियाकलापों एवं उनके आपसी संबंधों का भी अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी विकास, भौतिक वातावरण आदि भी इसके अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित है।

पहले राजस्थान शिक्षा बोर्ड की भूगोल पाठ्यचर्या में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा निर्धारित का अध्ययन करवाया जाता था, जिसके तहत कक्षा 12 की पाठ्यपुस्तक 'भारत के लोग और अर्थव्यवस्था' में जनसंख्या, प्रवास, मानव विकास, मानव बस्तियाँ, भूसंसाधन, जल संसाधन, खनिज तथा ऊर्जा संसाधन, परिवहन तथा संचार, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आदि को स्थान दिया गया था। इसी कक्षा की 'मानव भूगोल के मूल सिद्धान्त' पाठ्यपुस्तक में मानव भूगोल की प्रकृति एवं विषय क्षेत्र, विश्व जनसंख्या, जनसंख्या संगठन, मानव विकास, परिवहन, संचार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित विषयवस्तु को महत्व दिया गया था। साथ ही प्रयोगात्मक कार्यों में आंकड़े, आंकड़ों का संकलन, निरूपण, क्षेत्रीय सर्वेक्षण, कम्प्यूटर अनुप्रयोग एवं स्थानिक सूचना प्रौद्योगिकी को सम्मिलित किया गया था। कक्षा 11 में पाठ्यपुस्तक 'भारत भौतिक पर्यावरण' में भारत की स्थिति, संरचना तथा भूआकृति विज्ञान, अपवाह तंत्र, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा, प्राकृतिक संकट, तथा आपदा प्रबंधन को संकलित किया गया था। 'भौतिक भूगोल के मूल सिद्धान्त' में पृथ्वी की उत्पत्ति एवं विकास, आन्तरिक संरचना, महासागरों एवं महाद्वीपों का वितरण, खनिज एवं शैल, भू–आकृतिक प्रक्रियाएँ, भू–आकृतियाँ तथा उनका विकास, वायुमण्डल का संघठन तथा संरचना, सौर विकिरण, ऊष्मा संतुलन तथा तापमान, वायुमंण्डलीय परिसंचरण, मौसम प्रणालियाँ, वायुमण्डल में जल, विश्व की जलवायु एवं जलवायु परिवर्तन, महासागरीय जल तथा जल संचलन, पृथ्वी पर जीवन, जैव विविधता एवं संरक्षण से संबंधित विषयवस्तु सम्मिलित थी। प्रायोगिक कार्यों में मानचित्र का परिचय, मापनी, अक्षांश, देशांतर और समय, प्रक्षेप, स्थलाकृतिक मानचित्र, वायुफ़ोटो का परिचय, मौसम यंत्र तथा चार्ट की जानकारी थी।

वर्तमान में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान की भूगोल पाठ्यचर्या में स्वयं बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का ही अध्ययन करवाया जा रहा है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष प्रो. बी.एल. चौधरी के अनुसार "पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा 9 से 12 के विद्यार्थियों

के लिये माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा अपना पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016–17 से कक्षा 9 व 11 तथा सत्र 2017–18 से कक्षा 10 व 12 की पाठ्यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर तैयार कराई गई हैं।" अतः पिछले कुछ अकादमिक सत्रों से कक्षा 12 की भूगोल पाठ्यपुस्तक के खण्ड–अ 'मानव भूगोल के मूल तत्व' में मानव भूगोल का परिचय, विश्व की जनसंख्या, विश्व में मानव अधिवास, विश्व में मानव व्यवसाय, विश्व मंर परिवहन व संचार एवं व्यापार, पर्यावरण तथा मानचित्र कार्य सम्मिलित है। इसी तरह खण्ड– ब 'भारत जनसंख्या एवं अर्थव्यवस्था' में भारत जनसंख्या, संसाधन, कृषि विनिर्माण उद्योग एवं परिवहन, विकास व नियोजन के साथ–साथ राजस्थान की जनसंख्या एवं अर्थव्यवस्था आदि सम्मिलित किया गया है। प्रायोगिक कार्य में मानचित्र – वर्गीकरण एवं मानचित्रांकन, आँकड़ों का एकत्रीकरण एवं विश्लेषण, सांख्यिकीय आँकड़ों का निरूपण, सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तन्त्र, समपटल सर्वेक्षण तथा क्षेत्रीय अध्ययन सम्मिलित है। साथ ही कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक के खण्ड– अ 'भौतिक भूगोल' में पृथ्वी एवं पृथ्वी की गतियाँ, पृथ्वी की आन्तरिक संरचना, महाद्वीप व महासागर की उत्पत्ति, शैल, भूकंप एवं ज्वालामुखी, स्थलाकृति स्वरूप एवं अपरदन, वायुमंडल एवं उष्मा बजट, वायुदाब एवं पवनें, जलवायु एवं वर्षा, जैव विविधता एवं पारिस्थितिकीय तंत्र आदि सम्मिलित है। इसी तरह खण्ड– ब 'भारत का भूगोल' में भारत के स्थिति, विस्तार, विविधता में एकता, संरचना, उच्चावच, स्थलाकृतिक प्रदेश, जल प्रवाह, जलवायु, मानसून, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा, प्राकृतिक आपदाएँ एवं प्रबंधन के साथ–साथ राजस्थान का परिचय, भौतिक स्वरूप, अपवाह तंत्र, जलवायु, वनस्पति एवं मृदा को सम्मिलित किया गया है। प्रायोगिक कार्य में मानचित्र, मापक, प्रक्षेप, उच्चावच प्रदर्शन विधियाँ, स्थलाकृतिक मानचित्र, ऋतु उपकरण एवं मौसम मानचित्र, जरीब व फ़ीता सर्वेक्षण को सम्मिलित किया गया है। इससे पूर्व की कक्षाओं में भूगोल संबंधित कुछ अध्याय सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित किये गये हैं।

भूगोल में जनसंख्या संगठन, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पर्यावरणिक, औद्योगिक गतिविधियों का वैश्विक परिदृश्य में अध्ययन किया जाता है, जो सभी वैश्वीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित है। अतः राजस्थान के परम्परागत से वैश्वीकरण की ओर बढ़ते सामाजिक ढांचे की आम जरुरतों और भूगोल शिक्षण के अन्तर्सम्बधों को जानने, अर्थात लगातार नवीन ज्ञान, तकनीकी तथा विचारों की और बढ़ते समाज की आवश्यकता का पता लगा कर लगातार पाठ्यक्रम तथा शिक्षण को अध्यतन किया जाना आवश्यक है।

संदर्भ :-

1. सदगोपाल, अ. (2009). शिक्षा में बदलाव का सवाल। नई दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी।
2. एनसीईआरटी. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005. नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद।
3. मीणा, ग. स. (2019, जुलाई 19). ताकि विकास में सहयोगी बने शिक्षा लेख। उदयपुर, राजस्थान, भारत, राजस्थान पत्रिका।
4. शर्मा, ह. (2018, नवंबर 13). मानव भूगोल : प्रकृति व विषय क्षेत्र. Retrieved जुलाई 24, 2019, from examnotes.online: http://examnotes.online

पता– नटवर तेली, महावीर कॉलोनी, कानोड़, जिला– उदयपुर (राज.) पिन– 313604
Email - natwarteli@gmail.com, Mob. 9460695814

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 30-34

Nirad C Chaudhury : AS AN AUTOBIOGRAPHER

Poonam Yadav
RESEARCH SCHOLAR, SINGHANIA UNIVERSITY.

Why does an individual desire to compose their autobiography? Is it to vindicate oneself, to vindicate oneself to contemporaries, or to vindicate oneself to posterity? Undoubtedly, in one sense, an autobiography is a manifestation of ordinary human vanity. One does not wish for their accomplishments to be entirely forgotten by others. Additionally, human recollections are fleeting, and the permanence of the written word is far more enduring.

If an author were to commence their autobiography by disclosing their date of birth and subsequently recounting every detail of their lengthy and uneventful life, such an approach would not be well-received by a significant portion of readers. During the Victorian era, when a prominent politician passed away, a designated individual was tasked with composing an official biography that was presented to the public in a chronological manner. The author of said biography took great care to ensure that all of the leader's accomplishments and written works were included in the text. However, there exist biographies and autobiographies that have been written from a distinct perspective and in a dissimilar style. Andre Malraux's Anti-Memoirs serves as a prime example of this. Malraux's work is a rebellion against the convention of composing memoirs in a chronological sequence. His approach involves writing from the standpoint of subject matter, while also incorporating his own recollections and reflections. He traverses continents, periods, and subjects without adhering to any particular timeline or logical progression.

Lord Haldane's autobiography is widely regarded as one of the finest examples of English literature. In this work, Haldane takes an objective view of his own life and, in the final chapter, provides a comprehensive summary of his experiences and the lessons he has learned. One of the key themes that emerge from his reflections is the notion that a single lifetime is sufficient for any individual. Haldane also emphasizes that the quality of one's work and the passion with which it is pursued are ultimately more important than the outcome or success of any given endeavor. This philosophy reflects the perspective of a courageous, fair-minded individual who possesses a clear-

eyed understanding of both himself and the world around him.

The primary purpose of composing an autobiography is to compile and preserve in a book the recollections of one's past that have illuminated and enriched the entirety of one's being. It is not feasible to undertake the writing of one's autobiography during youth, as one is still preoccupied with aspirations for the future. Rather, it is during the twilight of one's life, when all fervor has dissipated and one no longer harbors dreams of the future, that the time is ripe for reflection, recollection, and summation.

The Autobiography of An Unknown Indian, authored by Nirad C. Chaudhuri, is a literary work that stands alongside the classic self-revelations of Mahatma Gandhi and Jawaharlal Nehru. While it is natural to compare autobiographies, such comparisons can often be superficial. Beyond the fact that these works are personal accounts of their respective authors, there exists no commonality between them. It is therefore inappropriate to group together books that are written in different tones and styles. The story of my experiments with Truth starts with a religious proposition :

"What I want to achieve, - what I have been striving and pining to achieve these thirty years, is self-realization, to see God face to face, to attain Moksha. I live and move and have my being in pursuit of this goal. All that I do by way of speaking and writing and all my ventures in the political field are directed to this same end".[1]

At this juncture, we possess a vantage point from which to observe both the world and its extraneous facets. Jawaharlal Nehru's methodology towards existence and its predicaments diverges from that of Gandhi's. Nehru expounds in The Discovery of India :

"My early approach to life's problems had been more or less scientific, with something of the easy optimism of the science of the nineteenth and early twentieth century. A secure and comfortable existence, and the energy and self-confidence I possessed, increased that feeling of optimism. A kind of vague humanism appealed to me. Religion, as I saw it practised, and accepted even by thinking minds, whether it was Hinduism or Islam or Buddhism or Christianity, did not attract me".[2]

Nehru further says :

"Essentially I am interested in this World, in this life, not in some other world or a future life".[3]

Nirad Chaudhuri's autobiography chronicles the journey of an individual who struggles to establish a sense of self amidst the perplexing cultural milieu of the nation. He chooses to identify himself as an obscure Indian.

Consequently, all three writers adopt a definitive stance and articulate their perspectives on

life and the world.

It is challenging to discuss an "autobiographical style" or "autobiographical form" as there is no such genre, style, or form. As evidenced by the autobiographies of Nehru and Gandhi ji, the book's style and form are determined by the author's approach to their past and entire life. An autobiography presupposes several things, including the writer's status as a national figure in politics, literature, or religion. Additionally, it assumes that the facts of their life are as significant to them as they are to their readers, and as such, the facts of their life and history converge at a crucial point. Through their life, we gain insight into national history at a specific time, as exemplified in Nehru's "An Autobiography" and Nirad Chaudhuri's "Autobiography of an Unknown Indian."

The Autobiography of An Unknown Indian is dedicated to the remembrance of the British Empire in India, and Chaudhuri endeavors to provide a comprehensive portrayal of India's interaction with the western world. In the preface to the autobiography, Chaudhuri explicitly states his purpose for the work:

"The story I want to tell is the story of the struggle of a civilization with a hostile environment, in which the destiny of British rule in India became necessarily involved. My main intention is thus historical, and since I have written the account with the utmost honesty and accuracy of which I am capable, the intention in my mind has become mingled with the aspiration that the book may be regarded as a contribution to contemporary history".[4]

Hence, the autobiographical nature of the work serves as a mere instrument to achieve a particular objective. Nonetheless, it would be remiss to underestimate the significance of the book, as it chronicles the life story of an individual whose beliefs are often at odds with those of his compatriots. Chaudhuri is not the sole author to explore the theme of the Indo-British encounter. In her historical novel, The Golden Honeycomb[5], Kamala Markandaya endeavors to provide a fictional appraisal of this encounter. The novel spans the period from the 1857 uprising to India's attainment of independence in 1947. It depicts an evolutionary process in which dialectical interaction shapes events through an apparent opposition between the foreign and the indigenous, represented by two distinct ways of life, cultures, and political systems. The rural masses in India continue to adhere to their traditional lifestyle, except for a "new class" of natives who occupy a small niche in the imperial scheme, paying a heavy price in total subservience to their foreign masters and almost complete alienation from their land and people. The teeming populace, with its deep-rooted traditions, represents the other pole, the golden honeycomb, where bees collect honey and imperial poachers drain it away.

Numerous authors have demonstrated how a limited cohort embraced the lifestyle and customs of the novel (British) sovereign and, as it were, became 'anglicized'. They were assimilated by the

novel rulers into their administrative, educational, and cultural establishments. Consequently, they constituted the core around which a novel class eventually materialized. The advent of this novel class has been expounded upon by Chaudhuri in virtually all of his literary works.

In The Autobiography of An Unknown Indian, Chaudhuri grapples with a sense of discordance with his Indian heritage, which may be attributed to his European sensibilities acquired through English education and Western influences. Chaudhuri articulates an emotional connection that has persisted between himself and England since his formative years. The initial three chapters of the book delve into Chaudhuri's recollections of his childhood in Kishorganj, his birthplace, Banagram, his ancestral village, and Kalikutch, his mother's village. Additionally, Chaudhuri dedicates a chapter to England, wherein he shares his impressions of the country. These impressions were formed through his readings and limited interactions with Englishmen.

Chapter IV of Chaudhuri's work is entirely dedicated to an analysis of his impressions of England. Within the Autobiography, there exists a dedicatory note that succinctly encapsulates Chaudhuri's perspectives on the British raj. This note comprises two distinct points, one pertaining to politics and the other to culture. Specifically, the dedicatory note states:

"To the memory of the British Empire in India which conferred subject hood on us but withheld citizenship."[6]

A potent political accusation is observed in this context. Chaudhuri's second assertion is as follows :

"All that was good and living within us was made, shaped, and quickened by the same British rule".[7]

Chaudhuri's Autobiography does not overtly articulate the profound correlation between the two aspects. On one hand, he elucidates the unjust treatment meted out to us by the British, while on the other, he acknowledges the advantages. Chaudhuri unequivocally conveys that his motive behind penning his Autobiography is of a historical nature. Kushwant Singh expounds on Chaudhuri's Autobiography :

"Nirad had been writing in Bengali for many years. But it was not until the publication of his first book in English, The Autobiography of An Unknown Indian that he really aroused the interest of the class to which he belonged and which, because of the years of indifference. to him, he had come heartily to loathe the Anglicised upper-middle class of India".[8]

Regarding the rationale behind Chaudhuri's decision to dedicate his book to the British Empire, Kushwant Singh expounds :

"That having lost their own traditions (the Anglicised upper middle class) and not having fully

imbibed those of England, they were a bastard breed with pretensions to intellectualism that seldom went beyond reading blurbs and reviews of books. He therefore decided to dedicate the work "To the British Empire". The wogs took the bait and having only read the dedication sent up a howl in protest. Many people, who would not have otherwise read the autobiography, discovered to their surprise that there was nothing anti-Indian in its pages..... And at long last India had produced a writer who did not cash in on naive Indian isms but could write the English language as it should be written" as few, if any living Englishmen could write."[9]

References :

1. M. K. Gandhi, The Story of My Experiments with Truth, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1927, Introduction.
2. Jawaharlal Nehru, The Discovery of India, The Signet Press, Calcutta, 1946, P. 10.
3. Ibid, P. 11
4. Nirad C. Chaudhuri, The Autobiography of An Unknown Indian, Jaico Books, Bombay, 1964, P. ix.
5. Kamala Markandays, The Golden Honeycomb, B. I. Publications, New Delhi, 1977
6. The Autobiography of An Unknown India, P. v.
7. Ibid.
8. Kushwant Singh, "Nirad Chaudhuri", in Rahul Singh(ed), Kushwant Singh's India, IBH Publishing House, Bombay, 1969, P. 189.
9. Kushwant Singh's India, P. 190

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 35-39

ज्ञान चतुर्वेदी की रचना 'पागलखाना' में व्यक्त सामाजिक चेतना

कु० विजय लक्ष्मी, शोध छात्रा,
डॉ० राकेश चन्द्र, एसोसिएट प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग, जे०वी० जैन कॉलेज, सहारनपुर।

भूमिका :-

ज्ञान चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य में श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी और मनोहर श्याम जोशी जैसे व्यंग्यकारों की पीढ़ी को आगे बढ़ाया है। ज्ञान चतुर्वेदी ने व्यंग्य लेखन की एक विशिष्ट शैली को अपनाया है। व्यंग्य उपन्यासों– बारामसी, नरक यात्रा, मरीचिका इत्यादि में व्यंग्य लेखन की इस शैली को लोगों ने पसंद किया है। इसी यात्रा में आगे बढ़ाते हुए ज्ञान चतुर्वेदी का 'पागलखाना' उपन्यास वर्ष 2018 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को 32वें व्यास सम्मान (2022) से सम्मानित किया गया है।

विषय-प्रवेश :-

ज्ञान चतुर्वेदी का जन्म 2 अगस्त, 1952 को झाँसी (उत्तर प्रदेश) के मऊरानीपुर में हुआ। वह पेशे से चिकित्सक थे। भारत सरकार के बीचएचईएल अस्पताल में हृदय रोग विभाग में रहते हुए उन्होंने सेवानिवृत्ति प्राप्त की है। ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने लेखन यात्रा की शुरूआत 1970 के दशक में की। उनका पहला उपन्यास 'नरक यात्रा' है, जो चिकित्सा शिक्षा और व्यवस्था पर व्यंग्य के रूप में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद बारामासी, मरीचिका और 'हम न मरब' उपन्यास प्रकाशित हुआ। 'इंडिया टुडे' तथा 'नया ज्ञानोदय' सहित कई दैनिक मसाचार–पत्रों में काफी समय तक उनके व्यंग्य छपते रहे।

'पागलखाना' ज्ञान चतुर्वेदी की नवीनतम रचना है। यह रचनाकार की दृष्टि का अभिन्नतम रूप है। इस रचना को पढ़ते हुए यह लगता है कि रचनाकार बार–बार पाठकों के सामने दस्तक देता है, अपने नए सामर्थ्य और नवीन विषयों के साथ। 'बाजार' इस पुस्तक के केन्द्र में है। बाजार किस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार, उसके चरित्र को बदलता है, उसे रचना दर्शाती है। रचना एक टाइम मशीन में बैठकर हमें आगे ले जाती है। यह उन खतरों से हमें जागरूक करती है जो बाजार के कारण हमारे सामने आ रही है।

रचनाकार पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर ही यह लिख देता है– ''उन पागलों की कथा जो जीवन को बाजार से बड़ा मानते रहे।''

इस वाक्य से रचनाकार अपनी रचना के उद्देश्य को गंभीरपूर्वक सामने रखता है। वह स्पष्ट करता है कि रचना बाजार से अधिक बाजार के गिरफ्त में आए लोगों की है। फैंटेसी और कल्पनाओं के माध्यम से पात्रों के उपजते हालातों को टटोलने का प्रयास रचना में किया गया है। यहाँ व्यंग्य चुभते हुए नस्तर जैसा है।

बाजार ने मनुष्य की चेतना और संवेदना को पढ़ा है। उसने समाज के रूप में मानवीय कमजोरियों, व्यक्ति के प्रेम, घृणा, गुस्से और घमंड को समझा है और उसी अनुरूप अपने लिए जगह की तलाश की है। बाजार ने हमारे मन के अकुलाहट को समझा है। यह मन की आकांक्षाओं को गहराई तक समझने का प्रयास किया। बाजार की सफलता इसी प्रक्रिया में है कि वह हमारे ऊपर हावी हो जाए और व्यक्ति पर शासन करने में सफल रहे।

'पागलखाना' उपन्यास बाजार की चेतना का चित्र खींचने में सक्षम है। बाजार समाज के किनारे बसा ग्राहक की राह देखने वाला सुविधा–तंत्र नहीं है। वह यह चाहने लगा है कि हमें क्या चाहिए, यह बाजार ही तय करेगा। उपन्यास के व्यंग्य की धार इतनी तीखी है कि जहाँ अपने पाठकों के दिमाग पर चढ़ती है, वहीं व्यवस्था और समाज के हृदय में चुभती है। व्यंग्य की नोक से वह अपने समाज और परिवेश के असली चेहरे को उकेरने में सफल हुआ है। ज्ञान चतुर्वेदी समकालीन यथार्थ को व्यंग्य के साथ सामने लाने में अपनी संवेदनाओं का सार्थकता के साथ प्रयोग करते हैं।

ज्ञान चतुर्वेदी 'पागलखाना' उपन्यास में बाजार को लेकर, तो फैंटेसी रचने का प्रयास करते हैं। यह उसके खतरे दिखाने के साथ समाज और व्यक्ति पर पड़ने वाले उसके प्रभावों का कुशलता के साथ ऑब्जर्वेशन करता है। इस प्रक्रिया को दर्शाते हुए ज्ञान चतुर्वेदी ने लिखा है– ''यह वे भी मानते हैं कि बाजार के बिना जीवन संभव नहीं है। लेकिन बाजार कुछ भी हो, है तो सिर्फ एक व्यवस्था ही, जिसे हम अपनी सुविधा के लिए खड़ा करते हैं। लेकिन वही बाजार अगर हमें अपनी सुविधा और सम्पन्नता के लिए इस्तेमाल करने लगे तो? आज यही हो रहा है। बाजार अब समाज के किनारे बसा ग्राहकों की राह देखता एक सुविधा तंत्र भर नहीं है। वह समानांतर से भी आगे जाकर अब उसकी संप्रभुता को चुनौती देने लगा है।''

'पागलखान' बाजार की गिरफ्त में फँसते जा रहे हमारे समाज और कालांतर में उसके दुष्परिणामों की मनोरंजक, लोमहर्षक और भयावह तस्वीर की कहानी है। व्यंग्यात्मतक लेखन शैली के बेजोड़ लेखक ने भले ही बाजारवाद और उसकी पकड़ में आ रही पूरी दुनिया के दुष्परिणामों की काल्पनिक कहानी यहाँ रची है, लेकिन जो आकलन उपन्यासकार ने दिया है, वास्तव में वह इस बाजारवाद के आरंभ से इसके विध्वंस तक के पागलपन की हकीकत है।

समय ऐसा आया है कि जीवन का हर पहलू बाजार के इशारे पर चल रहा है। विचार, सोच, कपड़े, भाव, प्यार, मुस्कान, संस्कृति, कला, संगीत, साहित्य, लोकजीवन सब कुछ बाजार द्वारा प्रेरित और प्रभावित है। इस प्रक्रिया को देखने के बाद भी कुछ सिरफिरे जीवन को बाजार से बड़ा मानते हैं। जीवन को बड़ा मानने वाले यह सोचकर चलते हैं कि बाजार जीवन के लिए नहीं है। ऐसे लोगों को बाजार की शक्तियों ने पागल करार दिया और ऐसे ही पागलों की कथा ज्ञान चतुर्वेदी के माध्यम से 'पागलखाना' उपन्यास का हिस्सा बना है।

'पागलखाना' उपन्यास अपने समय की कहानी कहता है। रचना मानती है कि इंसान असहाय हो चुका है। खुद को गँवाने के बाद व्यक्ति अपनी तलाश करने लगता है। व्यक्ति का जीवन बाजार के हवाले हो चुका है। व्यक्ति बाजार का गुलाम बन गया है।

''अब जमीन के हर चप्पे पर पहला हक बाजार का ही था। फिर जो भी जमीन बाजार से छूट जाए, उसी पर खेती की जा सकती थी, नदी बह सकती थी और घास को उगने की अनुमति थी। इससे भी बची धरती पर आदमी रह सकता था, या चाहे तो दफन भी हो सकता था।''

लेखक की कहानी इस पागलखाने की चकाचौंध के बीच रहने वाली दुनिया और बाजार से भाग रहे लोगों के पागलपन के साथ ज्ञान चतुर्वेदी की शानदार व्यंग्यात्मक शैली में आगे बढ़ती है। बाजार का अंग बन चुके लोग और उससे भाग रहे लोग एक–दूसरे को पागल मानने का भ्रम पाले हुए हैं। उपन्यास के अंत में बाजारवादी पागलखाने के अभ्यस्त लोगों और बाजारवाद के खिलाफ पगलाए लोगों को बाजारवाद के दुष्परिणामों का पता चलता है तो वे उसके विरूद्ध एकताबद्ध होकर उसका विध्वंस करते हैं। लेखक ने अद्‌भुत व्यंग्यात्मक शैली में बाजारवाद के भविष्य के परिणामों की जो तस्वीर हमारे सामने पेश की है, उसे केवल काल्पनिक नहीं बल्कि एक तथ्यात्मक भविष्य की रूपरेखा माना जाना चाहिए।

वर्तमान समय में बाजार व्यक्ति के करीब आ रहा है। व्यक्ति रिश्तों से दूर जाते हुए बाजार से जुड़ता है और बाजार भी दिल खोलकर स्वागत करता हुआ आता है। भाषा, वर्ण, वर्ग, संस्कृति और सम्प्रदाय की सीमाओं को त्यागकर बाजार मनुष्य के लिए अपने दोनों बाँहें फैलाकर उसे गले लगाता है। हमारे जीवन में जिस गति से बाजार का दखल बढ़ रहा है, उससे यह प्रतीत होने लगा है कि जल्दी ही दुनिया पर बाजार अपना कब्जा जमा लेगा। उपन्यासकार एक ऐसे दिन की कल्पना करता है जब बाजार धूप और चाँदनी की भी कीमत तय कर चुका होगा। ऐसे खौफनाक समय की कल्पना करते हुए उपन्यास में लिखा गया है– ''अभी भी सुबहें सुहावनी होती थीं। शाम भी वैसी ही आती थी। रात भी ठीक उसी तरह उतरती थी। सब कुछ वही था पर कुछ था जो अब वैसा नहीं था। अब भी सुबह तो होती थी, परन्तु सूरज यों ही हर एक को फोकट में उपलब्ध नहीं था। रोशनी और धूप के लिए बाकायदा पेमेंट करना पड़ता था। बाजार का सिद्धांत था कि जीवन में कुछ भी मुफ्त में मिलने की आशा करना भी पाप है– नो फ्री लंचेज, प्लीज . . .। अब सूरज, चाँद, सितारे भी बाजार का हिस्सा बन चुके थे। वे दिन हवा हो चुके थे जब लोग कहते थे कि धूप, रोशनी, पानी और हवा पर सबका बराबर का नैसर्गिक अधिकार है। अब सूर्योदय उन्हीं घरों में होता था जिन्होंने सूर्य का प्री–पेड कार्ड बनवा रखा हो और समय पर इसे रिचार्ज भी करते रहते हों।''

'पागलखाना' उपन्यास में रचनाकार बाजार के प्रभाव में व्यक्ति के नाम और पहचान के बदलते जाने की प्रक्रिया को पकड़ा है। वह मानता है कि आने वाले समय में बाजार के सामने व्यक्ति अपनी पहचान खोकर केवल एक 'कस्टमर' बनकर रह जाए। आधार नम्बर या पैन नम्बर की तरह उसकी पहचान डिजिटल बनकर रह जाए। उपन्यास का नायक भी अपना नाम और पहचान भूल चुका है। बाजार उसे उसकी पहचान करने में मदद करता है– ''नाक पर बहुत ध्यान न दें सर। . . . आजकल तो जो नए कस्टमर कार्ड बनकर आ रहे हैं, उनमें तो नाक

है ही नहीं। . . . फोटो से नाक हटाने का ट्रेण्ड चल रहा है आजकल। कस्टमर यही पसन्द कर रहे हैं इन दिनों . . .' बाजार की नए ट्रेण्ड्स पर नजर रहती है। पर . . . पर नकटा आदमी? वह आश्चर्य में पड़ गया। कभी अपने आस–पास भी तो देखिए न जरा। क्या आपको कोई भी आदमी अजीब लग रहा है यहाँ? चारों तरफ नजरें डालिए सर। . . . सब नकटे हैं पर सभी।''

'पागलखाना' उपन्यास बाजार के असहज होते जाने की प्रक्रिया में संविधान और राजव्यवस्था के स्वरूप में आ रहे परिवर्तनों की प्रवृत्ति को उभारता हुआ आया है। व्यंग्य का स्वरूप यहाँ अधिक गहरा है– ''संविधान का क्या हुआ? संविधान की रक्षा की शपथ लेने वालों का क्या हुआ? आजकल वे कहीं भी दिखते क्यों नहीं थे? जो लगाम बाजार पर होनी थी वही लगाम इन लोगों पर कैसे दिख रही थी? . . . क्या अब यहाँ सत्ता वास्तव में सरकार की ही थी? यह क्यों हुआ कि बाजार की सुनामी की एक बड़ी–सी लहर में कानून, नियम, नागरिक अधिकार, संविधान धर्म, कायदे, सामाजिक शास्त्र, समाज और उसका हर सिस्टम कचरे की तरह बह निकला था।''

उपन्यासकार ने बाजार के प्रभाव को संविधान संशोधनों तक की प्रक्रिया में देखा है। उसे सरकार और उसकी नीतियाँ बाजार से प्रभावित दिखती हैं। बाजार की शक्तियों ने सब को चुप कर दिया है। कोई भी किसी नीति अथवा बदलाव का विरोध करने में सक्षम नहीं है या संकोच का अनुभव कर रही है। ज्ञान चतुर्वेदी ने इसे दर्शाते हुए लिखा है– ''वे संविधान में इतने संशोधन करा चुके हैं कि अब संविधान का हर पेज कटा–पिटा है। अब उसे पढ़ना मुश्किल है, समझना तो और भी मुश्किल। . . . हमें बेदखल करना एकदम संविधान– सम्मत घोषित कर दिया जाएगा। वे सरकार का आदेश लेकर आएँगे। वे हमें मुआवजा थमा देंगे। वे हमारा कान पकड़कर हमें सड़क पर बिठा दें तो अदालत भी बस यही कहकर रह जाएगी कि आपको इसका मुआवजा तो दिया जा चुका है न?''

ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में प्रसिद्ध था कि वहाँ सूरज कभी नहीं डूबता, लेकिन वह दौर भी समाप्त हो चुका है। समय के करवट लेने से बड़ी ताकतें झुक जाती है। लेखक का विश्वास है कि बाजार के विरूद्ध भी एक दिन विद्रोह होगा। समय द्वारा बाजार के विरूद्ध विद्रोह। बाजार ने सोचा ही नहीं था। अपने स्कीम में उसने इस बात का इंतजाम नहीं किया था क्योंकि बाजार तो स्वयं को समय से परे मानता था।

''सर समझने की कोशिश तो कीजिए। . . . दरअसल, समय ने विद्रोह कर दिया है . . . किसने? क्या कर दिया है? बाजार पूछने लगा। सरजी, समय ने विद्रोह कर दिया है। वह फिर बोला। समय ने विद्रोह? बाजार आश्चर्यचकित है।''

ज्ञान चतुर्वेदी का मानना है कि जिस गति से बाजार का दायरा बढ़ रहा है, वह दिन दूर नहीं जब बाजार की बाढ़ के पानी में सब डूब जाएँगे और जो डूबने से बचने का प्रयास करेगा, वह पागल समझा जाएगा। बाजार के अखंड साम्राज्य की भयावहता को दिखाने के लिए लेखक ने जो काल्पनिक, दुनिया रची है, वह न सिर्फ गुदगुदाती है बल्कि जबरदस्त चोट भी पहुँचाती है। इस उपन्यास में रचनाकार बाजार का मानवीकरण करते हुए पाठकों को यह बताने में सफल हुआ है कि बाजार एक साथ नायक और खलनायक दोनों हैं।

निष्कर्ष :-

ज्ञान चतुर्वेदी का उपन्यास 'पागलखाना' व्यक्ति सत्य को उभारने के कारण विशिष्ट है। इस उपन्यास में लेखक पूरे समाज को नायकत्व प्रदान करता है। किसी खास व्यक्ति के बदले पूरे समाज को प्रतिनिधित्व देने से उपन्यासकार बाजार के गहरे, सूक्ष्म, गंभीर तथा चिंतनीय प्रभावों को रोचकता के साथ रखने में सक्षम हुआ है। 'पागलखाना' हिन्दी साहित्य का संभवतः पहला ऐसा उपन्यास है जहाँ पात्र नहीं है किन्तु पात्रता हर पंक्ति में निबद्ध है। उपन्यासकार ने कल्पना के सहारे एक विराट सत्य को सामने रखा है जो भाषा, शब्द और शिल्प के माध्यम से एक श्रेष्ठ उपन्यास बन गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. ज्ञान चतुर्वेदी, पागलखाना का कवर, पृ० सं०
2. ज्ञान चतुर्वेदी, पागलखाना, पृ० सं० 32
3. वही, पृ० सं० 31
4. वही, पृ० सं० 21
5. वही, पृ० सं० 73
6. वही, पृ० सं० 31
7. वही, पृ० सं० 69
8. वही, पृ० सं० 271

rajesh.rajan08@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 40-44

THE TECHNIQUE OF PLAY OF BOYS AND GIRLS FOOTBALL PLAYERS OF JAIPUR REGION

Ms. Monika Pundhir, Researcher
Dr. Surjeet Singh Kaswan, Supervisor
Tantia University, Sriganganagar, Rajasthan.

INTRODUCTION :-

Sports are no longer just sports and games. They are business all over the world. The boom in prize money and the practice of internationally renowned sportsman signing on the dotted line to endorse the products has made sports, big business. Sports lovers all over the world are happy that reputed sportsmen are no longer obliged to follow a regime of high thinking and low living.

Football played at a professional level all over the world. Millions of people regularly go to football stadium follow their favourite teams, while billion men watch the game on television, a very large number of people also play at an amateur. Football is a popular game of physical and mental challenges, At least 200 million licensed players participate in football games are arranged each year in the world football is a team game the object of which is advance an inflated round ball towards the opponents goal post by kicking, passing, dribbling and playing with any part of the body except arms.

Football is the most popular and most attended spectacular game in the world. It is not merely a game; it is a part of one's life. It is a vigorous, fast and skilled game for the well-conditioned sportsmen, who must possess strength, speed, agility, balance, flexibility, endurance, coordination and many other undefined qualities required for dribbling, kicking, passing and shooting at the goal. For playing better football, physical fitness is needed, but there is need for good height and weight that constitute good strength.

Football Technique :-

Football is a sport in which different parts of the body can be used, except hands for the field players. To keep the ball action and control by using of the different legal parts of the body was understood as the football technique. In the present study selected football techniques were (a) Dribbling, (b) Finishing,(c) Lofted Pass and (d) Short Pass.

Football is a game in which a player desires the basic ball skills to run faster with ball, to make a shoot through the goal and to make plenty of dribbling continuously. Skills such as passing, shooting, dribbling and kicking are considered as the fundamental skills of football. Research and experience have already proved that the football skills and overall playing ability during competition and practice session goes by the result of proper football drill training and preparation. There are still lack in researches that to which extent the use of proper football drills combined with psychological training will improve the game skills and playing ability.

Methodology :-

Researcher has used survey method to get the information of the present circumstances.

Sample :-

Samples will be collected from various colleges' football players of Jaipur region. Researcher collects data from various government and private colleges for raw score. Total sample are 400 in which 200 boys and 200 girls players from colleges education of government and private colleges respectively.

Data Collection :-

The current research work deals with the analysis of the Performance of boys and girls football Players. The present work deals with the various government & private colleges of Jaipur region of Rajasthan state.

Tool :-

The researchers have used standardized tool for Manchester United Soccer Skill Test Battery for Technique of Play was used to measure the technique of play of the players for this study.

Objective :-

To study technique of play of boys and girls football players of Jaipur region.

Analysis of Data :-

Table showing the significant difference of technique of play of boys and girls football players of Jaipur region

Table - 1 (Technique of Play- Govt. College & Private College)

Source of Variation	N	Mean	S.D.	Df.	t-value	Level of significance
Boys Players	200	87.55	5.38	398	1.52	NS*
Girls Players	200	86.75	5.16			

*Significant at 0.01 &0.05 level

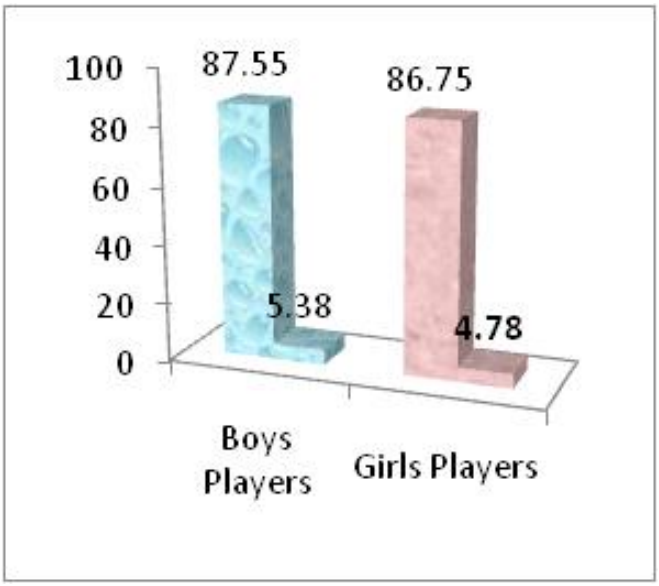

Table 1-difference of the technique of play of boys and girls football players of Jaipur region.

Description – The table 1 shows that Mean score of Government College's and Private College's Boys & Girls football players are 87.55 and 86.75 with a SD values of boys and girls football players are 5.38 and 5.16 respectively. T-value (1.52) is found to be not significant at (0.01 & 0.05) level. Hence the null hypothesis is not rejected which means that there is no significant difference of technique of play of boys and girls football players of Jaipur region.

Result :-

There is no significant difference of technique of play of boys and girls football players of Jaipur region. The Mean Score of both boys and girls players were almost same.

Conclusion :-

The current research work was undertaken into An Analytical Study of Football Players of Jaipur Region in Context to various techniques of play of some hypothesis. Therefore it now becomes essential at this stage of the research work to see whether the hypothesis were rejected or accepted on the basis of data analysed.

REFERENCES :-

1. Ali, A. (2011). Measuring soccer skill performance: a review. Scandinavian journal of medicine & science in sports, 21(2), 170-183.
2. Ahmad, R.H. (2016). Impact of belligerence and behaviour on sports performance. International Journal of Applied Research, 2(1), 06-09.
3. Andrea Stracciolini, MD Rebecca Casciano, Hilary Levey Friedman, Cynthia J. Stein, (2014). Paediatric Sports Injuries A Comparison of Males Versus Females Am J Sports Med April 2014vol. 42 no. 4 965-972.

4. Amanda Carroll (2009). Injury Rates in High School Athletes master dissertation .The University of Toledo.
5. Babalola J.F. et al. (2011). Effects of 8-weeks circuit training programme on physiological and performance characteristics of university racket game players. Journal of Asian Scientific Research, 1(4),143-149.
6. Balsom, P. (1994). Evaluation of physical performance. In: Football (Soccer). Ed: Ekblom, B. London: Blackwell Scientific Pub. 102-123.
7. Bangsbo J, Iaia FM, Krustrup P. (2008). The Yo-Yo intermittent recovery test – A useful tool for evaluation of physical performance in intermittent sports. Sports Med: 38:37–51.
8. Barfield, W.R., Kirkendall, D. and Yu, B. (2002). Kinematic instep kicking differences between elite female and male soccer players. Journal of Sports Science and Medicine 3, 72-79.
9. Barker, J., Jones, M., & Green lees, I. (2010). Assessing the immediate and maintained effects of hypnosis on self-efficacy and soccer wall-volley performance. Journal of Sport and Exercise Psychology, 32(2), 243-252.
10. Bate, D. (1996). Soccer skills practice. Science and soccer. London: E & FN Spon, 227-241.
11. Behm, D. G., & Chaouachi, A. (2011). A review of the acute effects of static and dynamic stretching on performance. European journal of applied physiology, 111(11), 2633-2651.
12. Chelly SM and Denis C (2001). Leg power and hopping stiffness: relationship with sprint running performance. Med Sci Sports Exerc 33: 326-333. 488
13. Cromwell, F.J. Walsh Gromely (2000). "Injuries in elite Gaelic footballers" BJSM, 34:104-108.
14. Culver JE(Ed) (1992). Injuries of the Hand and Wrist. Clin Sports Med, 11(1).
15. Culver JE, Anderson TE (1992). Fractures of the hand and wrist in the athlete. Clin Sports Med 11(1): 101-128,
16. Curtis RJ, Corley FG. Fractures and dislocations of the forearm. Clin Sports Med 5(4).
17. De Villarreal, E. S., Suarez-Arrones, L., Requena, B., Haff, G. G., & Ferrete, C. (2015). Effects of polymeric and sprint training on physical and technical skill performance in adolescent soccer players. The Journal of Strength & Conditioning Research, 29(7), 1894-1903.
18. D•souza (1990). Track and field athletics injuries. British Journal of Sports Medicine Sept 1994: Vol 28 Issue 3. p. 197-202 6p
19. Diana Hopper, Bruce Elliottt and Jenny Lalor(1995). Five year study of netball injuries during match playing: BJSM 1995; 29: 223-228).
20. Dinesh Mohan and GeetamTiwari (2000). Injury Prevention and Control, Taylor and Fancies Publishers New Fetter Lane, LondonEC4 P4EE, UK.
21. Ebrahimi- Atri (2007). An Investigation on prevalence and causes for occurrence of athletic injuries in the state elite gymnast girl students. Proceedings of the fifth state medical congress.43.
22. Elyasi. Ghasem (1998). Survey the incidence localization sport injuries in football. Thesis of Msc Esfahan University.
23. Eric D Zemper Knee and Ankle (1990). Injuries in college football: An four session analysis: American Journal of sports Medicine; 23:147-152.
24. Feltz, Deborah l. (1988). Self'-Confidence and Sports Performance, Exercise and Sport Science Reviews, 16, 423-457.

25. Finnoff, J.T., Newcomer, K. and Laskowski, E.R. (2002). A valid and reliable method for measuring the kicking accuracy of soccer players. Journal of Science and Medicine in Sport 5(4), 348-353.

JOURNALS :-

1. Abraham, George. "Analysis of Anthropometry, Body Composition and Performance Variables of Young Indian Athletes in Southern Region." Indian Journal of Science and Technology, (Dec 2010), Vol. 3(12): 1210-1213.
2. Ali, A. and Farraly, M. (1991). A computer video aided time motion analysis technique for match analysis. Journal & Sports Medicine and Physical Fitness, 31: 1991.
3. Ali, Zafar and Y.P Sharma, "A Comparative Study of Anthropometric Variables between Medallist and Non-medallist Football Players", Journal of Health and Fitness (2009), Vol.1 (1): 58-62.
4. Andrea Blair, Craig Hall and Glynn Leyshon, (1993). "Imagery effects on the performance of skilled and novice soccer players" Journal of Sports Sciences, 11(2) PP.95-101.
5. Arnason A.; Sigurdsson, S.B.; Gudmundsson, A.; Holme, I.; Engebretsen, L.; and Bahr, R. "Physical Fitness, Injuries, and Team Performance in Soccer", Med. Sci. Sports Exerc. (2004), Vol.36 (2): 278-285.
6. Chapman, J., Tunmer, W., &Prochnow, J. (2000). Early reading-related skills and performance, reading self-concept and the development of academic self-concept: A longitudinal study. Journal of Educational Psychology, 92(4), 703-8.
7. Chauhan, M.S. "Correlation between Selected Anthropometric Variables and Middle Distance Running Performance." Journal of Sports and Sports Sciences (2003), Vol.26(3): 42-48.
8. Christian, V. (1985). The construction and evaluation of a soccer skill test, Abstract Research Paper. AAPHERD Convention, p. 167.
9. Claessens A.L. "The Contribution of Anthropometric Characteristics to Performance Scores in Elite Female Gymnasts." J.Sports Sci., (1991), Vol.9 (1): 53-74.
10. Debnath S and Dey N. R. (1999, April). Relationship of Performance with Physiological Traits of National Archers, SAI Scientific Journal, Vol. 22(2), pp. 27 – 30.
11. Ercan (2007). "Effects of technical training on skill development in non-dominant legs of young soccer players", Journal of Sports Science and Medicine, Firat University, Gazi University and Ankara University, Suppl. 10, P-121.
12. Eugenio A. Peluso , Michael J. Ross, Jeffrey D. Gfeller and Donna J. Lavoie (2005). "A comparison of mental strategies during Athletic skills performance", Journal of Sports Science and Medicine, Department of Psychology, Saint Louis University, St. Louis, MO, USA.Suppl. 4, PP.543-549.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 45-50

निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का अध्ययन

आरती भांभू, शोधकर्त्री
डॉ. सुमन कुमारी, शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इक्कीसवीं सदी में स्वर्णिम भारत के उदय का आधार शिक्षा ही है। शिक्षा को राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक और जनआकांक्षाओं की पूर्ति करने के साथ–साथ मानवता के विकास की ओर उन्मुख करने वाली होनी चाहिये। सामाजिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक प्रणाली, उपलब्ध संसाधनों के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में नवीन अनुसंधान करने होंगे। इनके आधार पर शिक्षा राष्ट्रोपयोगी, सामाजिक सन्तुष्टि व विकासोन्मुखी बन पायेगी।

छात्र में कुछ इस प्रकार के व्यवहार होते हैं जिन्हें वह वंशानुक्रम द्वारा माता–पिता से प्राप्त करता है तथा कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जिन्हें वह परिवार, समाज, मित्र मण्डली तथा विद्यालयीय परिस्थितियों से क्रिया–प्रतिक्रिया व अंतःक्रिया द्वारा प्राप्त करता है। यह भी तथ्य है कि वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त विशेषतायें, यथा–बुद्धि, सृजनशीलता, अभिरूचि, आदि वे वंशानुक्रम से प्राप्त करता है जिनमें आयु संवर्द्धन के साथ–साथ परिवर्तन तो होता है परन्तु यह परिवर्तन की मात्रा इतनी अधिक नहीं होती है जिसके परिणामस्वरूप उसके इन व्यवहारों में चरम परिवर्तन हो सके।

व्यक्तित्व :-

साधारण व्यक्ति व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के बाह्य आकर, डील–डौल, रंग–रूप तथा उसका दूसरे व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभाव से लगाते हैं। व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से भी इसका यही अर्थ है। व्यक्तित्व शब्द का उद्‌गम लैटिन भाषा के पर्सनेयर (Personare) से हुआ है। जिसका सम्बन्ध रंग–मंच से था। परसोना (Persona) का अर्थ मुखौटा (Mask) से था जिसे पहन कर नाटक के पात्र रंग–मंच पर आते है। व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग अपनी बोल–चाल, वेश–भुषा, रंग–रूप, व्यवहार आदि में दूसरों को प्रभावित करने के अर्थ में किया जाने लगा।

व्यक्तित्व को अंग्रेजी भाषा में 'पर्सनैल्टी' कहते है। यह अंग्रेजी शब्द, लैटिन भाषा के 'पर्सोना' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ 'नकली चेहरा' है। परसोना का तात्पर्य व्यक्ति के बदलते हुए रूप से हैं।

अंग्रेजी के 'पर्सनॉलिटी' (Personality) शब्द से व्यक्तित्व शब्द का बना है। लैटिन भाषा के Persona शब्द से 'पर्सनॉलिटी' शब्द लिया गया है जिसका अर्थ वेष बदलने के लिये प्रयोग किये जाने वाले मुखौटा (डॉ) से था जिसका प्रयोग कर ग्रीक रोमन कलाकार नाटयमंच पर भिन्न–भिन्न प्रकार के अभिनय का प्रदर्शन करते

थे। ये मुखौटे सब अभिनेताओं को एक–दूसरे से अलग पहचाने के लिए प्रयोग किए जाते थे। इस प्रकार कह सकते है कि पर्सनॉलिटी या व्यक्तित्व शब्द से अभिप्राय आन्तरिक व्यक्ति के बाहरी मुखौटे से था। यह आन्तरिक तत्त्व जीव अथवा वास्तविक जीवन का व्यक्ति माना जाता है। इस प्रकार शुरूआत में व्यक्तित्व को मुखौटे के रूप में लिया गया था।

इस प्रकार व्यक्तित्व को सामजिक प्रभावकता के रूप में माना जा सकता है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में वंश, परंपरा एवं संबंधित परिवेश इन सभी की महत्ती भूमिका होती है।

समायोजन :–

समायोजन ही जीवन है। मनोविज्ञान का विशेष उद्देश्य है व्यक्ति को जीवन में समायोजन करना। दैनिक जीवन में हम सभी प्रायः समायोजन करते है। यदि कार में पाँच व्यक्तियों के लिए स्थान हैं और आठ व्यक्ति सफर कर रहे हैं तो उन्हें कार में समायोजित होना पड़ता है। समायोजन की अवधारणा का जन्म जैविकीय है। संसार के समस्त प्राणियों के समान यह बौद्धिक प्राणी मनुष्य की दिन–रात क्रियाशील रहता है। इस प्रकार सभी परिस्थितियों के साथ उसे सांमजस्य करना पड़ता है।

'समायोजन' शब्द का अंग्रेजी पर्यायवाची 'एड़जेस्टमेंट' है। इसकी व्युत्पति जीवन विज्ञान के 'एकप्शन' शब्द से हुई है। नवजात शिशु जन्म लेने के पश्चात् यदि वातावरण के साथ समायोजिम हो जाता है तो वह जीवित रहता है अन्यथा नहीं। सफलता एवं असफलता केवल समायोजन के परिणाम है। जीवन की समस्याओं का समाधान समायोजन में निहित है। विशेषकर चिन्ताओं के युग में जितना सम्भव हो सके उतना ही सीधे और सरल मार्ग के लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता ही समायोजन का आधार है। आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाना और लक्ष्य प्राप्त करना ही समायोजन की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है।

न्यादर्श :–

प्रस्तुत शोध कार्य के दत्त संकलन कार्य हेतु राजस्थान राज्य के हनुमानगढ़ जिले व श्रीगंगानगर जिले के निजी महाविद्यालयों के 300 शिक्षार्थियों का चयन किया गया है।

विधि :–

इस शोध अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

उपकरण :–

इस हेतु शोधकर्त्री द्वारा मानकीकृत उपकरणों के रूप में यक्तित्व मापन हेतु एस. जलोटा व एस. डी. कपूर द्वारा निर्मित मॉड्रसले की व्यक्तित्व परीक्षा तथा समायोजन मापन हेतु आर. के. ओझा द्वारा निर्मित बेल समायोजन अनुसूची का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी :–

शोध कार्य हेतु शोधकर्त्री द्वारा सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–टैस्ट का प्रयोग किया गया।

शोध के उद्देश्य :–

निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

विश्लेषण :-

सारणी संख्या-1 (व्यक्तित्व)

समूह (वाणिज्य वर्ग)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
पुरूष शिक्षार्थी	50	69.50	9.25	98	2.56	असार्थक
महिला शिक्षार्थी	50	74.06	8.58			

0.01 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या :-

सारणी संख्या[1] के अनुसार निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य वर्ग के पुरूष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व का मध्यमान क्रमशः 69.50 तथा 74.06 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 9.25 व 8.58 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 2.56 है। ये मूल्य 98 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.01 स्तर पर विश्वास मूल्य 2.62 से कम है। अतः 0.01 स्तर पर सार्थक अंतर नहीं है।

निजी महाविद्यालयों के वाणिज्य वर्ग के पुरूष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व में 0.01 सार्थकता स्तर पर कोई अंतर प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है–

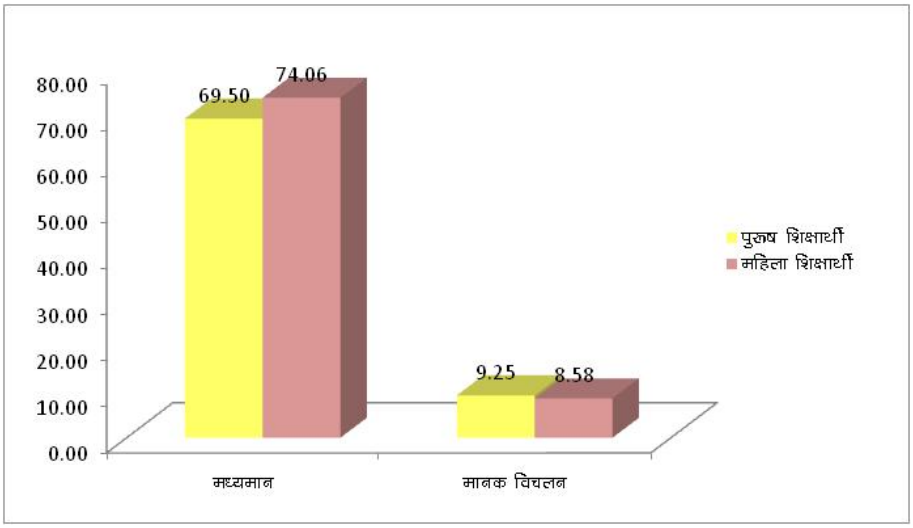

सारणी संख्या-2 (समायोजन)

समूह (वाणिज्य वर्ग)	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	स्वतंत्रता की कोटि	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
पुरूष शिक्षार्थी	50	50.08	15.91	98	0.14	असार्थक
महिला शिक्षार्थी	50	49.58	19.57			

0.01 व 0.05 सार्थकता स्तर

परिणाम एवं व्याख्या :-

सारणी संख्या[2] के अनुसार निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य वर्ग के पुरूष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के समायोजन का मध्यमान क्रमशः 50.08 तथा 49.58 है। इन दोनों समूहों का प्रमाप विचलन क्रमशः 15.91 व 19.57 हैं। अतः दोनों के मध्यमानों के अंतर का टी मूल्य 0.14 है। ये मूल्य 98 स्वतंत्रता की कोटि हेतु 0.05 स्तर पर विश्वास मूल्य 1.98 तथा 0.01 के विश्वास मूल्य 2.62 से कम है। अतः दोनों स्तरों पर सार्थक अंतर नहीं है।

निजी महाविद्यालयों के कला वर्ग के पुरूष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के समायोजन में दोनों स्तरों पर कोई अंतर प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि लेखाचित्र से भी स्पष्ट हो रहा है–

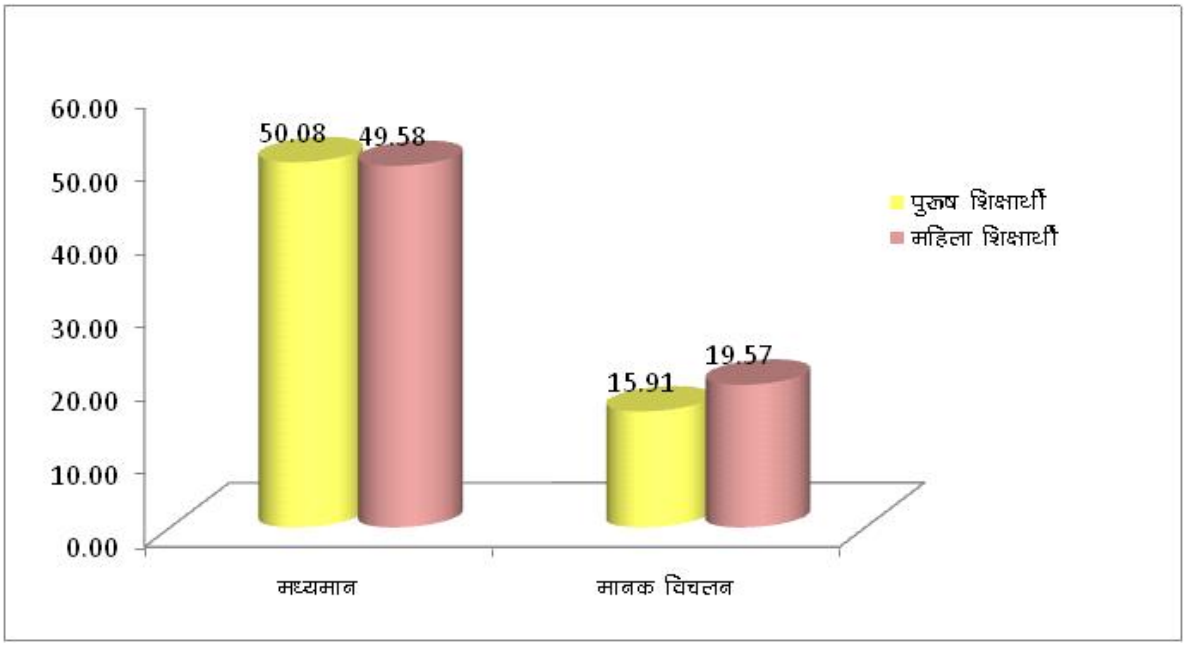

सारांश :-

अध्ययन के परिणाम से निजी महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य वर्ग के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन में तुलनात्मक अंतर पर प्रकाश डालने में मदद मिलेगी। यह शोध निजी महाविद्यालयों में अध्ययनरत वाणिज्य वर्ग के पुरूष शिक्षार्थियों व महिला शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व तथा समायोजन का अध्ययन करने में भी मदद करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अरोड़ा डॉ. रीता, मारवाह डॉ. सुदेश (2004–05)– शिक्षण एवं अधिगम के मनो सामाजिक आधार, जयपुरः शिक्षा प्रकाशन।
2. एम.वी.आर.राजू और वी. ख्वाजा शहमुतुला (2007), 'विद्यालयी विद्यार्थियों में समायोजन समस्याएं' आंध्रा विश्वविद्यालय विखापट्टनम्, प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
3. एस्टेला एवं अन्य (1989), फिलीपीन्स जर्नल और साइक्लॉजी, वाल्यूम 22, पृष्ठ 37–45.
4. श्रीवास्तव, डी.एन. और वर्मा, प्रीति (2007), बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या–459–460
5. श्रीविद्या वी. (2007), 'नवोदय, केन्द्रीय एवं राजकीय स्कूलों के विद्यार्थियों का मानसिक स्वाथ्य एवं समायोजन

समस्याएं' कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़, पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
6. क्लीपर, हुट्टीया (2008). ''दक्षिण–पश्चिमी पैन्सीलुनीयाँ में अचानक आये शराणार्थियों के समायोजन अनुभव तथा शैक्षिक दृष्टि का वर्णात्मक अध्ययन'' प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
7. कपिल एच.के (2010), अनुसंधान, विधियाँ, आगरा।
8. कपूर, अर्चना एवं श्रीवास्तव, निधि (2008), 'कार्यरत महिलाओं के वैवाहिक/सामाजिक समायोजन का बालक एवं बालिकाओं के व्यक्तित्व पर प्रभाव' शीर्षक पर प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
9. कविता प्रकाश एवं रार्बट जे. (2007), 'भारत में गैर सामाजिक मिलनसार बच्चों के विद्यालय समायोजन और सांवेगिक सामाजिक विशेषताएँ' एक प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
10. काबरा, एल.(1991). अनुसूचित जाति एवं गैर अनुसूचित जाति बालिकाओं का उनकी पिछड़ेपन एवं व्यक्तित्व एवं वातावरण समायोजन के साथ लक्ष्य निर्धारण। पीएच. डी. थीसिस, एजुकेशन मोहनलाल सुखाडिया यूनिवर्सिटी, उदयपुर, राजस्थान।
11. कौर, कमलप्रीत (2010). ''विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों में संवेगात्मक परिपक्वता एवं समायोजन का अध्ययन'' पीएच.डी. स्तरीय शोधकार्य।
12. कुशवाह आरती (2003). ''किशोर बालक–बालिकाओं पर किशोर एवं अभिभावक संबंधों का संवेगात्मक परिपक्वता एवं बौद्धिक विकास का समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन'' प्रयोजनात्मक शोधकार्य।
13. कुशवाहा, ए.के. एवं हसन, बी.(2005). व्यक्तित्व आयाम एवं लिंग के संदर्भ में कैरियर निर्णय। जर्नल ऑफ द इंडियन एकेडमी ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी, 31(2),77–82.
14. गैरिट हैनरी ई.(1991). 'शिक्षा और मनोविज्ञान में साख्यिकी का प्रयोग' कल्याणी पब्लिशर्स लुधियाना।
15. गुप्ता लिलेश (2002). ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में भविष्य के प्रति जागरूकता व्यवसायिक रूचि एवं विद्यालय में समायोजन का अध्ययन'' पीएच.डी. शोधकार्य।
16. ढोढियाल, एस. पाठक (1990), शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ संख्या–51.
17. नायक निवेदिता (2005). ''शिक्षकों पर मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन का उनकी आत्म अवधारणा के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव पर अध्ययन'' शोधकार्य।
18. निफेडकर, सुशील, श्याम (2009). ''संवेगों एवं नवआगन्तुकों से समायोजन'' पर सम्मिलित शोधकार्य।
19. पाठक, पी.डी. (2007), शिक्षा मनोविज्ञान. आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर. पृ.सं. 245, 552, 450.
20. पाण्डे, के.सी. (1983). एज्यूकेशनल रिसर्च इन इन्ट्रोडक्शन. नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो।
21. पाण्डे राम शुक्ल (2003). 'शिक्षा मनोविज्ञान' सूर्या पब्लिकेशन मेरठ।
22. प्रजापत, भांकरलाल (2009). ''उत्तर भारत के विभिन्न खेल विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, समायोजनशीलता एवं क्रीड़ा निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।'' पीएच.डी. शोधकार्य, हरियाणा।
23. मित्तल, एम. एन. (2005), शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार. मेरठ, इन्टरनेशल पब्लिशिंग हाऊस. पृ. स.–293–296.
24. मेहता, वी. आर.(2006), अध्ययन पाठ्यक्रम अभिकल्प समितिः मूल्यपरक शिक्षा कोटाः कोटा खुला विश्वविद्यालय. पृष्ठ संख्या–70.
25. राय, पी.एन.(1981), अनुसंधान परिचय. चतुर्थ संस्करण. आगराः विनोद पुस्तकमंदिर पृष्ठ संख्या–63.
26. शर्मा, डॉ. आर. ए (2013)– शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
27. सारस्वत, डॉ. मालती (1997), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखाः आदत और शिक्षा, आगराः विनोद पुस्तक मंदिर. पृ. स. 255.
28. सुखिया, एस.पी. (1973), शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. द्वितीय संस्करण, आगराः विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या–487.

29. हकीम, एम.ए. और अस्थाना, विपिन (1994), मनोविज्ञान की शोध विधियाँ. आगराः विनोद पुस्तक मंदिर. पृष्ठ संख्या–169.

30. त्रिवेदी, आर.एन. एवं शुक्ला, डी.पी. (2008), रिसर्च मैथ्डोलॉजी, जयपुरः कॉलेज बुक डिपो. पृ.सं. 321.

Journals and Magazines :-

1. भारतीय शिक्षा शोध, पत्रिका रिव्यू, अंक–22.
2. नई शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक संवाद की पत्रिका, वर्ष – 62 अंक – 5.
3. जर्नल ऑफ वैल्यू एजूकेशन, अंक–5, जनवरी व जुलाई, 2005.

Survey :-

1. Buch, M.B. (Ed.). First survey in Education.
2. Buch, M.B. (Ed.). Second survey in Education.
3. Buch, M.B. (Ed.). Third survey in Education.
4. Buch, M.B. (Ed.). Fourth survey in Education.
5. Buch, M.B. (Ed.). Fifth survey in Education

Webliography :-

1. www.ase.org.uk
2. www.shodhganga.inflibnet.ac.in
3. www.usq.edu.au/users/albino/papers/site99/1345.html
4. www.skills_nict.com.in
5. www.google.com
6. www.education.nic.in

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 51-53

संस्कृत साहित्य में नारी का महत्व

डॉ. नवीन कुमारी
सहायक प्रवक्ता, टीका राम गर्ल्स कॉलेज, सोनीपत।

प्रस्तावना :-

वेद की नारी देवी हैं, विदुषी हैं, प्रकाश से परिपूर्ण हैं, वीरांगना हैं, वीरों की जननी हैं, आदर्श माता हैं, कर्तव्यनिष्ट धर्मपत्नी हैं. सद्गृहणी हैं, सम्राज्ञी हैं, संतान की प्रथम शिक्षिका हैं, अध्यापिका बनकर कन्याओं को सदाचार और ज्ञान विज्ञान की शिक्षा देने वाली हैं, उपदेशिका बनकर सबको सन्मार्ग बताने वाली हैं, मर्यादाओं का पालन करने वाली हैं, जग में सत्य और प्रेम का प्रकाश फैलाने वाली हैं। यदि गुण कर्मानुसार क्षत्रिया हैं, तो धनुर्विधा में निष्णात होकर राष्ट्र रक्षा में भाग लेती हैं। यदि वैश्य के गुण कर्म हैं उच्चकोटि कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि में योगदान देती हैं और शिल्पविधा की भी उन्नति करती हैं। वेदों की नारी पूज्य हैं, स्तुति योग्य हैं, रमणीय हैं, आह्वान–योग्य हैं, सुशील हैं, बहुश्रुत हैं, यशोमयी हैं। अनेक ऋषिकाएँ वेद मंत्रो की द्रष्टा है, अपाला, घोषा, सस्वती, सर्पराज्ञी, सूर्या, सावित्री, अदिति–दाक्षायनी, लोपामुद्रा, विश्ववारा, आत्रेयी आदि। वैदिक कालीन स्त्री की विदुषिता होने का उदाहरण हमें उनके विद्वता भरे शास्त्रार्थ में दिखाई देता हैं। इसी प्रकार का उदाहरण बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता हैं। विदेह के बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता हैं। विदेह के जनक राजा जनक के दरबार में याज्ञवल्क्य ऋषि से जहाँ अन्य ऋषिगण शास्त्रार्थ में पराजित हो रहे थे, वही सबसे तीक्ष्ण प्रशन वाचकवी गार्गी (ऋषि वचक्रु की पुत्री होने के कारण) के तरफ से हुए यद्यपि में गार्गी ने भी याज्ञवल्क्य को भी कहना पड़ा– यह तो अतिप्रश्न हैं। गार्गी! यह उत्तर की सीमा है, अब इसके आगे प्रश्न नही हो सकता। अब तू प्रश्न न कर, नहीं तो तेरा मस्तक गिर जायेगा।' प्रस्तुत कथानक गार्गी की विद्वता एवं समाज में स्त्री की स्थिती को दर्शाता हैं। इस प्रकार का शास्त्रार्थ या दार्शनिक वार्तालाप केवल अविवाहित स्त्रियाँ ही नहीं करती थी बल्कि विवाहित स्त्रियाँ भी करती थी।

कुट शब्द :- स्वरात्मिका, स्वधा, वष्टकारः तृधा, वैधिक, कुठाराघात, पितृसता।

सारांश :-

उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में से कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आध्यात्मिक उन्नति में लगी रहती थीं, इन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। अन्य स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन का संचालन करती थीं, किन्तु गृहस्थाश्रम में प्रवेश लेने

से पूर्व वे ब्रह्मचारिणी रहकर अध्ययन कर चुकी होती थीं। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती, काव्य रचना करती तथा, त्याग, तपस्या के द्वारा ऋषिभाव प्राप्त करके मंत्रों का साक्षात्कार भी कर लेती थीं। ऋग्वेद के अनेक सूक्त महिलाओं ने साक्षात्कृत किए हैं। अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा ने पति के साथ ही सूक्त का दर्शन किया था। सूर्या भी एक ऋषिका थीं। वेदों में नारी की स्थिति अत्यंत गौरवास्पद वर्णित हुई हैं। अर्थथवेद हे पत्नी। हमें ज्ञान का उपदेश कर। वधू अपनी विद्वता और शुभ गुणों से पति के घर में सब को प्रसन्न कर दे। ऋग्वेद माता–पिता अपनी कन्या को पति के घर जाते समय बुघद्धिमता और विद्याबल उपहार में देते।

माता–पिता को चाहिए कि वे अपनी कन्या को दहेज भी दें तो वह ज्ञान का दहेज हो। ऋग्वेद पुत्रों की ही भाँति पुत्री भी अपने पिता की संपति में समान रूप से उत्तराधिकारी है। वैदिक कालीन प्रगतीशीलता के लिए बहुत हद तक वहाँ की उन्नतिशील शिक्षा व्यवस्था उत्तरदायी थी। प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य–शिष्य का सर्वांगीण विकास, उसकी ज्ञान ज्योति को प्रबुद्ध करना, उसे प्रखर से प्रखर बनाना और उसके जीवन को सर्वथा सौभाग्यशाली बनाना था। वेदों में कहा भी गया है– सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् शिक्षा व्यक्ति को उदार बनाती है। संभवतः यहीं कारण था कि वैदिक काल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा एवं सती प्रथा जैसी बुराइयाँ प्रचलित नहीं थीं। वे उत्सवों तथा यज्ञों में भाग लेती थीं। उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। शिक्षा के महत्व को देखते हुए ही वेदों में स्त्री शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। वेदों में शिक्षा को आश्रम–व्यवस्था एवं सोलह संस्कारों के साथ जोड़ा गया है। औपचारिक शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ प्रारंभ होती है और इसी के साथ ब्रह्मचर्य आश्रम भी प्रारंभ होता था। शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ आरंभ होकर समावर्तन संस्कार के साथ समाप्त होती थी। उपनयन संस्कार (जनेऊ धारण) शिक्षारम्भ का प्रतीक था। इस संस्कार के बाद शिष्य और शिष्याएँ वेद और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। वैदिक और वैदिकोतर काल में स्त्रियों की जो ऊँची स्थिति थी, वह अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। धर्मसूत्रों में बाल विवाह का निर्देश दिया गया, जिससे कि स्त्रियों की शिक्षा में बाधा पहुँची और उनकी शिक्षा मामूली स्तर पर आ गई। चूँकि उन्हें लिखने–पढ़ने के अवसर प्राप्त न थे, इस कारण वेदों का ज्ञान असम्भव हो गया। उनके लिए धार्मिक संस्कार में भाग लेने की मनाही हो गई। उनका प्रमुख कर्तव्य पति की आज्ञा पालन हो गया। विवाह स्त्रियाँ के लिए अनिवार्य कर दिया गया। विधवा विवाह पर निषेध जारी किया गया। बहुपत्नी–प्रथा का प्रचलन और बढ़ा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक युग की तुलना में उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आनी प्रारम्भ हुई। स्मृति युग में स्त्रियों की स्थिति में और अन्तर आया। स्मृति युग में महिलाओं का सम्मान केवल माता के रूप में होता था, न कि पत्नी के रूप में। इस युग में विवाह की आयु घटाकर 12 या 13 वर्ष कर दी गई। विवाह की आयु घटने से शिक्षा न के बराबर हो गई। इस युग में स्त्रियों के समस्त अधिकारों में कमी आई। संस्कृति विकास के श्रेष्ठ काल वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति सुखद रही। वैचारिक, पारिवारिक, धार्मिक स्वतंत्रता के इस दौर में महिलाओं का सम्मान और प्रतिष्ठा पुरुष से कम महिलाओं का सम्मान और प्रतिष्ठा पुरुष से कम समाज में नहीं था। शिक्षा और आत्मविकाश मार्ग महिलाओं के लिए खुले थे। सामाजिक प्रतिबद्धता और वर्जनाएँ कठोर नहीं होने से आत्मतुष्टि और समग्र विकास के मार्ग

पुरुषों के समान ही महिलाओं के लिए खुले थे। शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में बराबर की सहभागिता से महिलाओं का पूर्ण विकास इस युग में हुआ। वे मातृत्व और पत्नित्व के लिए अपना सम्यक चिंतन रखती थी। मान्यताएँ और परम्पराएँ जटिल और कठोर न होने के कारण नारी विकास के मार्ग सुलभ और सहज थे। वैदिकोतर काल में सामाजिक व्यवस्था क्रमशः रुढिवादी होकर परम्परा निबद्ध होती गयी। समाज में पुरुषवादी व्यवस्था का जोर बढ़ता गया। फलतः महिलाओं के ऊपर बंधन धीरे–धीरे कठोरतम होते गये। जिसमें उनकी स्वतंत्र अस्तित्व तिरोहित होता गया।

उदाहरण सूची :-

1. ऋग्वेद 10.85.7, 3.31.1
2. यजुर्वेद 17.45, 10.26
3. अथर्ववेद 14.1. 20, 14.1.6, 14.1. 20

डॉ. नवीन कुमारी W/o सुरजीत सिंह,
R/o C- 104, Police Line, Sonipat, 131001
Mob. No. 9996222581
gmail : naveennain263@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 54-57

समकालीन चयनित हिंदी उपन्यासों में तृतीय लिंग की सामाजिक संघर्ष

प्रो. डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, शोध निर्देशिका,
डी श्रीदेवी, शोधार्थी,
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज, पल्लवरम, चेन्नई।

भारतीय समाज में बहुत से वर्ग विकृत परंपराओं के कारण त्रासदी जीवन व्यापक करते हैं उनमें सर्वाधिक उपेक्षित वर्ग हैं – तृतीय लिंग। तृतीय लिंग को किन्नर, छक्का, हिजड़ा नपुंसक, मौसी, उभय लिंग, खसरा आदि नाम से संबोधित करते हैं। लोक जीवन में हिजड़ा, किन्नर आदि शब्द को गली का प्रतीक बन चुका है। समाज में शारीरिक रूप से कमजोर पुरुषों के व्यक्तित्व को हिजड़ा कहते हैं। समाज में हिजड़ा को तिरस्कृत एवं अपमान करना सामान्य सी बात है। तृतीय लिंग अपनी अलिंगन जिसम को लेकर जीवन के अंतिम तक तिरस्कृत, घृणा, नफरत, अपमान और संघर्ष से ही जीवन यापन करना पड़ता है। तृतीय लिंग की संघर्ष के बारे में नीलिमा शर्मा जी के कविता में इस प्रकार कहते हैं :–

"न नर हूँ, न नारी हूं न ही माँ किसी की और न बाप हूं।
हूँ ईश्वर की एक विकृत रचना या खुद के लिये ही श्राप हूं।।"[1]

उक्त पंक्तियां में तृतीय लिंग ने ईश्वर से प्रश्न कर रहे हैं कि इस समाज में हमारे क्या स्थान है, क्या ईश्वर भी गलती कर सकते हैं। ये सारी दुनिया भगवान की रचना है। इंसान में स्त्री पुरुष दोनों संपूर्ण है। लेकिन तृतीय लिंग का स्थान क्या है। यह शब्द मानो श्राप सा प्रतीक होता है।

परिवार का तिरस्कार :–

परिवार ही हर बच्चे के मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, नैतिक तथा चारित्रिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। हर बच्चे परिवार से ही अपने जीवन के मूल्यों का विकास करता है। वह विभिन्न आदर्शों तथा मानवीय गुणों को विकसित करते हैं। परोपकार, दया, सहानुभूति, परिश्रम, समानता, प्रेम, त्याग, बलिदान आदि गुणों के विकास में परिवार की अहम भूमिका है। हर बच्चे परिवार में ही अनुशासन का प्रथम पढ़ता है। भगवत अनमोल कृत 'जिंदगी 50–50' सकारात्मक दृष्टिकोण से लिखा हुआ एक उपन्यास है। उपन्यास का कथा नायक अनमोल का बेटा सूर्य पैदाइश तृतीय लिंग है। अपने बेटे के खबर सुनते ही अनमोल को अपने छोटे भाई हर्षा जो तृतीय लिंग है उसका याद आता है। समाज और परिवार के लोग हर्षा को परिहास करते हैं। वह बहुत कठिनाई से जीवन बिताता है। हर्ष के पिता राम लखन तिवारी अपने तृतीय लिंग बेटे के लिए मन में सिर्फ

नफरत, क्रोध की भावना रखते हैं। वह अपने परिवार की मान मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए अपने बेटे को सिर्फ लैंगिक विकलांग के कारण जहर देने के लिए तैयार होता है। समाज में सभी लोग उसे 'किन्नर की पापा' पुकारेंगे। इस संकीर्ण सोच की वजह हुए हर्षा को जहर देने के लिए तैयार होता है। "मैं बाहर निकल गया था, अम्मा के पास। वह बाहर तक गये, एक बार इधर–उधर देख रहा देखा पर कोई नहीं दिखाई दिया। तुरंत वह फिर से नल के पास आए और पास में रखे गिलास में थोड़ा पानी लेकर दवा को घोलने लगे और चल दिए। उन्हें सामने कुछ नहीं दिखाई दे रहा था, सही–गलत का अंदाजा ही नहीं। इस काम के बाद होने वाले परिणाम से भी उन्हें कोई लेना–देना न था। बस उन्हें सिर्फ अपनी इज्जत प्यारी थी। यह समाज उसे बेटे के कारण, उन्हें कुछ कहा न पाये, इस बात की फिक्र थी। जबकि उसे बेटे की कतई फिक्र न थी, जिसके वे बाप है।"[2]

महेंद्र भीष्म जी के उपन्यास "मैं पायल" में जुगनी के पिताजी उसे पुत्र का नाम न लेकर 'हिजड़ा साला' जैसे शब्दों से अपना आक्रोश अभिव्यक्त करते हैं। जुगनी को उसके पिताजी बहुत मारते–पीटते और खून करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। "पिताजी ने पास रखी बाल्टी में भरे पानी से मुझे नहला दिया, फिर वही रखी चामडे की चप्पल को टब में भर पानी में डुबाडुबाकर मेरे नग्न शरीर की उधेड़ने में लग रहे जब तक कि मैं बेहोश नहीं हो गई। पल भर के लिए होश आता देखती अम्मा मेरी ऊपर लेटी पिताजी की चप्पलों से पिट रही थी, फिर वह मुझे बचाते हुए स्वयं कितनी देर तक पिटती रही पता नहीं मैं तो कब की बेसुध हो चुकी थी।"[3] पिताजी के इस घोर यातन से जुगनी अपने जीवन को समाप्त करने का मन बनती है।

शिक्षा का अभाव :–

सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा का महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा का उद्देश्य है किसी भी विषय को आत्मानुभूति (Self Realization) के रूप में ही स्वीकार करना है। क्योंकि इससे संबंध मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार से विकास होता है। राष्ट्रपिता मोहनदास करमचंद गांधी जी का कथन है "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा के सर्वोत्तम अंश की अभिव्यक्त हैं।"[4] शिक्षा के माध्यम से ही समाज के सदस्यों के आचार विचार में परिवर्तन होता है। शिक्षा जैसी होती है वैसा ही समाज होता हैं, वैसी शिक्षा होती है जैसा ही समाज होता है। तृतीय लिंग के जीवन शैली को बदलने और अपने आप को महसूस करने के लिए शिक्षा ही मदद करता है। तृतीय लिंग समुदाय का बेहतरीन करने के लिए हर एक तृतीय लिंग को पढ़ाई करना आवश्य है। शिक्षा ही उन्हें जीवन संघर्ष और कठिनाइयों से मुक्त करने का एकमात्र रास्ता है। चित्रा मुद्गल जी अपने उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' में तृतीय लिंग बिन्नी के माध्यम से कहती "पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है, हमारे लिए।"[5]

यह समाज तृतीय लिंग को शिक्षा के अधिकार से भी वंचित करता है। स्कूल या कॉलेज के फॉर्म में तृतीय लिंग के लिए कोई अलग सा लिंग कॉलम में जगह भी नहीं देते हैं। शिक्षा हर एक व्यक्ति को मिलना आवश्यक है। डॉ. लता अग्रवाल की उपन्यास 'मंगलामुखी' में शिल्प गुरु मां और शकुन तृतीय लिंग महेंद्री के बारे में बात करते समय उसकी अधूरी पढ़ाई के बारे में कहती हैं "क्या स्कूल में इनको पढ़ने के लिए कोई सुविधा या अधिकार नहीं है नहीं हैं.....? नहीं तू देखी कभी सरकार ने स्कूल के फारम में लड़का/लड़की के अलावा कोई और खाना बनाया?"[6]

बलात्कार :-

बलात्कार एक अत्याचारी और नैतिक अपराध है एक व्यक्ति किसी के साथ असहमत संबंध करने का प्रयास करता है, उसे बलात्कार कहते हैं। जब 'मैं पायल' की नायिका जुगनी घर से बाहर निकलकर अपनी ठिकाना खोजने के लिए बाहरी दुनिया में आई। तब इस समाज उसे एकाकी स्त्री के रूप में देखकर भूखे भेड़िए बनी इंसानी शोषण करता है। इससे पीड़ित होकर जुगनी मन ही मन सोचती है "हे भगवान्! यह मैं ही जानती हूं और जानती होगी वे सब स्त्रियों जो मेरे जैसी स्थिति से अक्सर दो–चार होती होगी या कभी परिवार से अलग–थलग पड़ गयी होगी। देह के नरभक्षी भेड़ियो की चुभती नजरों को बड़ी शिद्दत से महसूस किया होगा, जो मादा गंध के उठते ही खूंखार हो उठते हैं और मौका मिलते ही दबोच लेने के लिए उतार वाले बने रहते हैं। सारी जोर आजमाईश के बाद क्रूरता, नग्नता पर उतर आते हैं और मसला देना चाहते हैं नारी देह को। नोच–खचोट के साथ अपनी बर्बरता की निशानियां उस पर छोड़ देना चाहते हैं, तब तक जब तक कि वह स्वयं पिघल नहीं जाते और पिघलने के बाद लतियाए कुत्ते की तरह कुं–कूं करते खो जाते हैं अंधे समाज के अंधेरे कोनों में।"[7]

चित्रा मुदगल जी के "पोस्ट बॉक्स नंबर नालासोपारा 203" के पूनम जोशी तृतीय लिंग पात्र है। पूनम, विधायक जी के कोठी पर नृत्य कार्यक्रम करती है। उसके बाद जब पूनम अपने कपड़ों को बदल रही है। तब विधायक जी के भतीजा और उसके मित्र कमरे में जबरदस्ती प्रवेश करते हैं। उसके साथ सामूहिक बलात्कार होता है। तृतीय लिंगी के किसी भी प्रकरण पर इस समाज गूंगा और बहरा बन जाता है। क्या तृतीय लिंग की शारीरिक पीड़ा का कोई मोल नहीं है? क्या मानवीय दृष्टि के इस अत्याचार के लिए कोई समाधान नहीं है? चित्रा जी पूनम जोशी के माध्यम से व्यक्त करती है "एकाध पैग मजे में और चढा लेंगे। कभी नहीं देखा जिस चीज को उसे देखे का सेलिब्रेशन होना ही चाहिए न? क्यों वह आम लड़कियों की तरह लजाने का नाटक कर हमारा और अपना समय जाया कर रही। दिल्ली में आम बात है। सड़क चलते हिजड़े भीख न देने पर बेशर्मी से साड़ी उठने लगते हैं। भई, हम भी देखें असली–नकली औरत का फर्क? जितना चाहे, रकम ले लेना। वह भी डॉलर में। छटपटाती लात घूसों से परे धकेलती पूनम जोशी ने स्वयं को उसने मुक्त करने की कोशिश की। वहशियों ने उठाकर झुलते हुए उसे बेरहमी से फर्श पर चित्त पटक दिया। मुंह में उसके ठूंस दी सतरंगी किराये की चुनरी।"[8]

लैंगिक भेदभाव :-

लैंगिक भेदभाव एक सामाजिक समस्या है। लैंगिक भेदभाव के कारण भारत में तृतीय लिंग लोगों को शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हैं। धार्मिक और सामाजिक विचारों में लिंग भेद का पालन किया जाता है, जिससे लोगों की मानसिकता में भी भेद पड़ता है। महेंद्र भीष्म जी के उपन्यास "मैं पायल" में जुगनी एक जन्मजात तृतीय लिंग है। जुगनी के पिताजी उसे लड़के के रूप में ही पाल–पोष करते हैं। अपने पिताजी के कहने के अनुसार वह अपनी लंबी बाल को काटा और लड़के जैसे स्कूल जाती है। तब उनकी सहपाठियों उसे देखकर हंसते और चिढ़ाते हैं। "मेरी सुंदर, लंबे काले बाल अब लड़कों की तरह काटकर संवार दिया गए थे। मेरे संगी साथी मुझे पहचान नहीं पाए वह हैरान थे। उनके मध्य मैं चर्चा का विषय बन गई..... 'अरे! यह जुगनी.... अरे जुगनी तो लड़की से लड़का बन गई अब वह 'जुगनी' नहीं 'जुगनू' हो गया है' हो होकर हंसते

और मुझे चिढ़ाने की कोशिश करते, पर तीनों बड़ी बहनों की तरह वजह से भयवश वे जल्दी से चुप कर जाते, पर उनमें मुझे लेकर परस्पर कानाफूसी चलती रहती, जो मुझे बखूबी समझ आती थी।"[9]

वेश्यावृत्ति :–

वेश्यावृत्ति के संबंध जियोफ्रे Encyclopedia of Social Science में कहते हैं "वेश्यावृत्ति संसार का सबसे पुराना व्यवसाय है और यह तभी से चल आ रहा है। जब से किसी समाज के लोगों की काम भावनाओं को विवाह और परिवार के सीमित किया गया है।"[10] विवाह की संस्थान की उत्पत्ति के साथ–साथ कुछ यौन निषेध विकसित हुए। अतिरिक्त यौन संबंधों को अवैध समझा जाने लगा। ऐसे कारण से ही वेश्यावृत्ति की उत्पत्ति हुई। डॉ. लता अग्रवाल के उपन्यास "मंगलामुखी" में तृतीय लिंग सिमरन कहती हैं कि तृतीय लिंग को बड़े–बड़े लोगों अपने पार्टी में नाचने के लिए बुलाते हैं और हमसे गलती काम करते हैं। बदनाम भी हमको ही दे देते हैं। हमारे इस वेश्यावृत्ति काम तो अच्छा नहीं है, लेकिन हमारे लिए इसकी सिवा कोई रास्ता भी नहीं है। "बच्चे भी घरों में एक दो इ होते हैं, उन पर भी रो–रो कर न्योछावर मिलती है, कोई काम हमारे पास है नई तो कुछ बड़े–बड़े लोगों के दलाल हमारे पास आते हैं कि फलाँ पार्टी में हमारा पैसा खाया है...उससे उगलवाना है, बस आजकल बधाई गाने के साथ–साथ यह काम शुरू किया है..... काम अच्छा नइ है इसलिए तुझे बताने से चुरा रये थे और कोई बात नइ। लोग कितने ही काला पीला कर ले मगर अपनी इज्जत को लेके बड़े डरते हैं।"[11]।

मालती मिश्रा के उपन्यास "मंजरी" में तृतीय लिंग मंजरी कोर्ट में न्यायाधीश फैसला सुनाने से पहले अपने समुदाय की दुखमय में जीवन के बारे में बताती हैं। तृतीय लिंग समुदाय कमाई और रोजगार चलाने के लिए हर दिन कितने संघर्ष सामना करना पड़ता है। इस समाज ने तृतीय लिंग को अपराधी मानते हैं। मंजरी अपनी तरफ से यह कहती हैं "इससे भी ऊपर, पैसा कमाने और अच्छा जीवनयापन के लिए वह बाकायदा सेक्स वर्क भी बन चुके हैं। इसमें वह बहुत एक्सप्लॉयट किए जाते हैं बाहुबलियों द्वारा। परंतु बिना बोले वो यह सब बर्दाश करने के लिए मजबूर है। कमाई के बहुत साधन भी तो नहीं उनके पास।"[12]

निष्कर्ष :– इस समाज में अभिशप्त जीवन जीने वाले तृतीय लिंग को समाज के मुख्य धारा से जोड़ने के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। तृतीय लिंग समूह को हेय दृष्टि से देखने वाले इस समाज की मानसिकता को तोड़ना चाहिए। अगर तृतीय लिंग अपने परिवार की सहयोग से शिक्षित हो जाए तो उनका जीवन उज्जवल रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ विजेंद्र प्रताप सिंह, थर्ड जेंडर अस्मिता और संघर्ष, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. सं. 119
2. भगवंत अनमोल, जिंदगी 50–50, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, प्र.सं. 2017, पृ. सं. 40
3. महेंद्र भीष्मा, मैं पायल अमन प्रकाशन कानपुर चतुर्थ संस्करण 2019, पृ. सं. 36
4. पी.डी. पाठक, शिक्षा मनोविज्ञान, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पांचवी संस्करण 2011, पृ. सं. 11
5. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, पेपर बैग्स नई दिल्ली, छठा सं. 2020, पृ. सं. 110
6. डॉ. लता अग्रवाल, मंगलामुखी, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं. 2020, पृ. सं. 56
7. महेंद्र भीष्मा, मैं पायल अमन प्रकाशन, कानपुर, चतुर्थ संस्करण 2019, पृ. सं. 57
8. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, पेपर बैग्स नई दिल्ली, छठा सं. 2020, पृ. सं. 203
9. महेंद्र भीष्मा में पायल अमन प्रकाशन, कानपुर, चतुर्थ संस्करण 2019, पृ. सं. 29
10. प्रो. आनंद प्रकाश सिंह, वैशाली प्रसा, सामाजिक समस्याएं और अपराध, पृ. सं. 213
11. डॉ. लता अग्रवाल, मंगलामुखी, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं 2020, पृ. सं. 110
12. मालती मिश्रा, मंजरी, रश्मि प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2022, पृ. सं. 126

sridevipalani21@gmail.com
फोन नं. 9952951435

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 58-60

कालिदास के नाटकों में सौन्दर्य

डॉ. नवीन कुमारी
सहायक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, टीका राम पी.जी गर्ल्स कॉलेज, सोनीपत (हरियाणा)

भूमिका :-

ब्रह्माण्ड का सत्य तत्त्व वैज्ञानिक के अध्ययन का विषय हैं, शिव तत्त्व धर्म है तथा सुन्दर तत्त्व काव्य तथा कला का विषय हैं। काव्य क्षेत्र में समस्त कलायें नाटक में ही एकत्रीभूत होती हैं।' कलाओं को हम जीवन से पृथक नहीं कर सकते। जीवन स्वयं एक कला है धनंजय के अनुसार जीवन की अवस्थाओं का अनुकरण ही नाटक हैं। अतः समस्त कलायें नाटक में समाहित हो जाती हैं। नाटक का एक नाम 'रूप' भी हैं। रूप सौन्दर्य का आधार तथा नेत्र का विषय हैं। सौन्दर्य भी नेत्र का विषय है अतः काव्यगत सौन्दर्य बोध का पूर्ण रूप हमें नाटक में ही प्राप्त हो सकता हैं। सौन्दर्य बोध पर विचार करने से पहले सौन्दर्य शब्द पर विचार कर लेना आवश्यकता है।

सौन्दर्य शब्द :-

सौन्दर्य शब्द 'सुन्दर' विशेषण शब्द में ष्यञ प्रत्यय जोड कर बना है। सौन्दर्य के लिये सुन्दर शब्द की आवश्यकता है। 'सुन्दर' शब्द की स्पष्ट व्युत्पत्ति प्राप्त नहीं होती। अतः अनुमान का सहारा लेना पड़ता है। 'संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी' में सुन्दर शब्द की सम्भावना सुनर से की गई है।

सुन्द धातु (प्रकाश अथवा चमक के अर्थ में) तथा 'रा' धातु (लाने के अर्थ में) से भी सुन्दर शब्द का सम्बन्ध हो सकता है। क्योंकि सौन्दर्य तथा प्रकाश का सहज सम्बन्ध है। सु (भली–भाँति) उन्द (गीला करना) में अरन् (अरच्) प्रत्यय जोड़ कर पूर्ण अर्थ हो गया, भली–भाँति आर्द्र या सरस करने वाला। इस प्रकार हम देखते हैं कि सौन्दर्य शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विविध मत है, किन्तु करने, सरस करने, श्रद्धा पूर्ण करने तथा हृदय की दूरितवृति को नष्ट करने की स्वाभाविक आन्तरिक तथा बाह्य शक्ति होती है।

ईश्वर सौन्दर्य :-

ईश्वर निराकार तथा अविभाज्य है परन्तु प्राप्त साहित्य की दृष्टि से ईश्वर के सौन्दर्य को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं– सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म। चक्षु का विषय रूप हैं, रूप में ही सौन्दर्य हैं।

कालिदास के नाटकों में सौन्दर्य :-

कालिदास सौन्दर्य के द्रष्टा और स्वष्टा दोनों ही है। उन्होंने जो कुछ देखा वह सुन्दर था और जो

दिखाया वह उससे भी अधिक सुन्दर हुआ, इसीलिये उनकी रचनाओं में सौन्दर्यपूर्ण रूपेण समाविष्ट है। उनका सौन्दर्य बोध पारस की क्षमता रखता है, जिस विषय को उन्होंने छू दिया वही कंचन बन गया। सौन्दर्य क्षेत्र में कहीं भी अपूर्णता नहीं दिखाई देती है। मानव, समाज एवं प्रकृति सभी उनकी सौन्दर्यमयी दृष्टि संजोये गये है।

कालिदास की सौन्दर्य संचेतना ऐतिहासिक व पौराणिक सत्य को भी बदल देने की क्षमता रखती है। कालिदास की कुछ मान्यतायें पाश्चात्य सिद्धान्तों से भी साम्य रखती है। सौन्दर्यनाभूति के लिये कालिदास ने विकलता का भी प्रश्न उठाया है। उनका विश्वास है कि सौन्दर्यानुभूति में सर्वदा आलम्बन के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रहने पर विकलता का अंश विद्यमान रहता है। कालिदास की एक और मान्यता पाश्चात्य वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य शास्त्रियों में भी साम्य रखती है। सौन्दर्य सदा मनोरम्य होता है उसे किसी प्रसाधन की आवश्यकता नहीं होती। कालिदास के सौन्दर्य बोध का मूलाधार उनका जीवन प्रेम है। यह जीवन मनुष्य, पशु और वनस्पति सर्वत्र है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे विश्व में किसी अगोचर चेतना के दर्शन करते हैं उनके लिये यह जीवन घोर गोचर है। वह इन्द्रिय बोध से अभिन्न है, उससे परे नहीं। विलास और वैभव का यह कवि धरती के इतना निकट है जितना कोई कवि नहीं हुआ।

कलागत सौन्दर्य :-

कालिदास की कला की सबसे बड़ी विशेषत्ता यह है कि वातावरण की सृष्टि करके वे थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ व्यक्त कर देते हैं। वह थोड़ा कह कर शेष की अनुमति के लिये अपने पाठकों को छोड़ देते है। कला के अन्तर्गत भाषा, शैली, छन्द, अलंकार, व्यजंना, रीति तथा ध्वनि सब कुछ सन्निहित है।

समाज सौन्दर्य :-

कालिदास ने अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों का पूर्ण यथार्थ चित्रण किया है। ब्राह्मण भाग, यज्ञ, अध्ययन–अध्यापन आदि कार्यों में रत रहते थे। सामाजिक जीवन की उन्नति के लिये कालिदास 'वर्णाश्रम' धर्म के समर्थक हैं। वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था हमारी संस्कृति में समाज को सुचारु रुप से चलाने के लिये की गई थी। 'शाकुन्तलम्' में वैश्यो को समुद्र व्यापारी कहा गया है, जो राष्ट्र की सम्पति बढ़ाने के लिये समुद्रों पर भ्रमण कर अन्य देशों से वाणिज्य व्यवसाय करते थे। शूद्रों को भी अपने ढंग से राष्ट्र सेवा करते दिखाया गया है। सामाजिक मान्यताओं को कालिदास ने बड़े भव्य ढंग से प्रस्तुत किया है यथा पुत्र प्राप्ति पर माता की प्रसन्नता का उल्लेख है। 'पुत्रोत्सवे माद्यपि का न हर्षति भरत तथा आयुष की प्राप्ति की प्रसन्नता नाटकों में दर्शनीय है।

प्रकृति सौन्दर्य :-

मानव और प्रकृति में जीवन विकास की रहस्यमय किया कालिदास को समान रूप से आकर्षित करती है। जीवन का जो उभार प्रकृति दिखाई पड़ता है वह मानव मात्र में यौवन बनकर झलकता है। जो पवन भरी बालों से झुके हुए धान के पौधों को हिलाता है वहीं नवयुवकों के हृदय चंचल करता है। पृथ्वी जैसे अपने गर्भ में बीज छिपायें रहती है वैसे ही अग्निवर्ण की रानी अपने गर्भ से नया जीवन छिपायें को रहती हैं। जिस प्रकार कण्व शकुन्तला को दुष्यन्त को सौंप रहें हैं उसी प्रकार वन ज्योत्सना को भी वृक्ष का सहारा पा लेने पर प्रसन्न

हैं।

संदर्भ सूची :-

1. शाकुन्तलम् षष्ठौःडक।।४।।
2. नास्ति सदेहः महा प्रभावो राजर्षिः। (कालिदास ग्रंथावली पृ– १०४)
3. कुमारसंभवम् एकादश सर्ग।।१७।।
4. 'मालविकाग्निमित्रम् १/१६

डॉ0 नवीन कुमारी पत्नी सुरजीत सिँह

R/o C-104 Police line Sonipat, 131001

Mob No. 9996222581

GMail : naveennain263@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 61-64

भीमरावाम्बेडकरचरिताश्रितकाव्येषु महापरिनिर्वाणम्

कृति यादव
शोधार्थिनी, डी.ई.आई., डीम्ड विश्वविद्यालय, दयालबाग, आगरा।

संस्कृतभाषा भारतीयसंस्कृतेः प्राणोऽस्ति। इमा अस्माकं परोपकारीणां देवानां व्यवहारभाषा; अस्माकं जन्मभूमिभारतस्य गौरवम् अस्ति; तथाच अत्तत्य साहित्यकाराणां विदुषां च विचाराणां अभिव्यक्तेः साधनम् अस्ति। अद्यत्वे अपि भारतस्य संस्कृतेः प्रेमिणः कवयः ऋषयः च दिव्यसंस्कृतभाषायाः माध्यमेन स्वकाव्यरचनानां शास्त्रीयग्रन्थानां च माध्यमेन सरस्वतीं देवीं पूजयन्ति इति अत्यधिकहर्षस्य विषयोऽस्ति। प्राचीनकालात् अधुना यावत् निरन्तरं उपलब्धानां समृद्धसंस्कृतसाहित्यग्रन्थानाम् इतिहासग्रन्थानां च अध्ययनेन स्पष्टं भवति, यत् अस्माकं देशः 'महान् राष्ट्रम्' इति स्थापितानां देशभक्तानां महापुरुषाणां दीर्घपरम्परा अस्ति। संस्कृतस्य आधुनिकसंस्कृतलेखकाः अपि वीराणां प्रेरणादायकजीवनं स्वकाव्यस्य स्रोतः इति परम्परां प्रवर्तयन्ति, इति दृष्ट्वा वयं अतीव गौरवम् अनुभवामः, महाराणाप्रताप–वीरशिवाजी–महारानीलक्ष्मीबाई आदीनां आरभ्य सर्वदेशभक्तानां जीवनेन सम्बद्धकाव्यरचनानां प्रकाशनं निरन्तरं भवति। अयं अस्माकं कृते आनन्दस्य विषयोऽस्ति, यत् भीमरावाम्बेडकरस्य जीवनचरिताश्रितकाव्यानामपि संस्कृतसाहित्ये सर्जनम् अभवत्। यद्यपि न केवलं भारतीयाः अपितु विश्वस्य अन्ये जनाः अपि राष्ट्रसेवकस्य भारतस्य संविधाननिमातुः अद्भुतव्यक्तित्वेन परिचिताः सन्ति, तथापि भारतस्य इतिहासे तस्य गौरवपूर्णजीवनं सुवर्णाक्षरैः लिखितम् अस्ति, तथाच अयं सः एव अम्बेडकरोऽस्ति, यस्य संस्कृतस्य ज्ञानार्जने केनचित् कारणेन काठिन्यं स्यात्, किन्तु आम्बेडकरस्य परिश्रमेण, तथाच संस्कृतमातुः स्नेहेन अद्य सः स्वमातुः अङ्के अलङ्कृतो भवति।

महापरिनिर्वाणप्राप्तिः –

महापरिनिर्वाणमिति संस्कृतशब्दः मोक्षः, मृत्युः च इत्यर्थोऽस्ति, तथाच निर्दोषजीवनस्य अपरं नाम निर्वाणम्। एवञ्च उदानस्य मते– "यदा शरीरं क्षीणं भवति, सर्वाणि इन्द्रियाणि च निवर्तन्ते तदा सर्ववेदनाः नश्यन्ति परिनिर्वाणं भवति, एवञ्च सर्वविधप्रक्रियाः निवर्तन्ते।

पुनर्रत्तूमभिलक्ष्य वाक्यमिदमुवाच ह।
अकिञ्चनः पुमानेष बिभेति निधनात्भृशम्। अम्बेडकरदर्शनम् १५/५७

महापरिनिर्वाणात् कतिपयदिनानि पूर्वं कुशीनगरे बुद्धस्य परिनिर्वाणस्थानं दृष्ट्वा बाबा साहेबः दिल्लीं प्रत्यागतवान्। १९५६ तमे वर्षे दिसम्बरमासस्य २ दिनाङ्के अशोकविहारे दलाईलामा इत्यस्य स्वागतार्थं समारोहः आयोजितः। भीमरावः अपि अस्मिन् उपस्थितः आसीत्, सायं यावत् सः अतीव श्रान्तः अभवत्। द्वितीयदिने सः स्वस्य समीपस्थैः प्रियजनैः सह छायाचित्रं स्वीकृतवान्। रात्रौ सः स्वनिवासस्थाने स्वगृहस्य मालीम् अवलोकयितुं

गत्वा तस्य स्वास्थ्यस्य विषये पृष्टवान्। डॉ. अम्बेडकरः स्वस्य दुःखदं स्थितिं दृष्ट्वा मृत्युभयात् क्रन्दन् स्वस्य व्यक्तिगतसचिवं रत्तू इत्यस्मै अवदत्– "पश्यतु कथं सः मृत्युविचारमात्रेण अपि भयभीतः भवति? अहं मृत्युतः न बिभेमि। मृत्युः यदा आगन्तुं इच्छति तदा आगच्छति। अहं तस्य स्वागताय सज्जः अस्मि" इति दिसम्बर–मासस्य ४ दिनाङ्के सः संक्षेपेण राज्यसभायाः दर्शनं कृतवान् यत्र सामान्यविषयेषु विमर्शः प्रचलति स्म, अतः सः तत्र स्थातुम् अनावश्यकं मत्वा प्रत्यागतवान्, केनापि सह विशेषवार्तालापम् अपि कर्तुं न शक्तवान्। भारतीयसंसदे तस्य अयम् अन्तिमः दिवसः आसीत्।

निराशश्च तथोदासरासीदद्य भृशं कविः।
बुद्धं हि शरणं यामि रात्रौ वाक्यमुवाच स।। अम्बेडकरदर्शनम् १५/७०

सायंकाले सः पत्रद्वयं स्वस्य स्टेनो इत्यनेन लेखितवान्। महाराष्ट्रे विपक्षस्य प्रमुखनेतृद्वयं एस.एम.जोशीमहोदयः, श्री प्र.के आत्रे इत्यस्मै लिखन् एतेषु पत्रेषु सः तम् आग्रहं कृतवान् यत् "स्वस्य नवनिर्मितगणतन्त्रकार्यक्रमे आगच्छतु" इति, स्टेनो प्रातः १:३० वादनपर्यन्तं पत्रं सज्जीकृत्य तत्रैव स्थितवान् अपरदिने प्रातः दिसम्बरस्य ५ दिनाङ्के सः ततः स्वकार्यालयं गतः। सायं ५:३० वादने रत्तू आगतः, तदैव डॉ. अम्बेडकरः तस्मै टङ्कनार्थं किञ्चित् कार्यं दत्तवान्। केचन् जैनमुनयः रात्रौ भीमरवं मेलितुम् आगतवन्तः। सः डॉ. साहेबेन सह जैनधर्मस्य बौद्धधर्मस्य च विषये वार्तालापं कृत्वा जैन–बुद्धऋषयः प्रस्थिताः। नामकं पुस्तकं उपहास्वरूपेण दत्तवान्। अरपरदिने कार्यक्रमे आमन्त्रयित्वा जैनमुनितः अवकाशं प्राप्य सः विश्रामं कर्तुं अगच्छत्। पूर्ववत् रत्तू पादौ निपीडयितुं आरब्धवान्। अपि च रङ्गः शिरसि तैलं प्रयोजितवान्। अनेन तस्य किञ्चित् उपशमः प्राप्तः। सः शान्त मुद्रायां "बुद्धशरणम् गच्छमी" इति गानम् आरब्धवान्। तदनन्तरं रेडियोग्रामे रत्तू स्वप्रियगीतानि श्रुतवान्। पाचकः सुदामा अपि भोजनं सज्जीकर्तुं, तं भोजनस्य आग्राय आगतः आसीत्। सः किञ्चित् ओदनं भोजनार्थं गृहीत्वा सङ्गीतस्य तरङ्गेषु लुप्तः अभवत्। तदनन्तरं सः रत्तूसहाय्येन स्वपुस्तकालयं गत्वा ततः कानिचन् पुस्तकानि बहिः निष्कास्य ततः तेषु एकं पुस्तकं स्वशय्यासमीपे मञ्चस्य उपरि स्थापयितुं पृष्टवान्। तस्मिन् एव काले तस्य अत्यन्तं प्रियं कबीरस्य भजनं "चाल कबीर तेरा भावसागर डेरा" इति रेडियोग्रामे वाद्यते स्म, यत् श्रुत्वा सः मधुराणाम् आध्यात्मिककल्पनासु लीनः अभवत्।

डॉ. साहेबः विलम्बितरात्रौ यावत् परिचयः, परिचयपत्राणि च पठन् आसीत्। एतादृशं किमपि नवीनं नासीत्, अम्बेडकरस्य अध्ययनशीलस्य विचारकस्य च दैनन्दिनकार्यक्रमः एतादृशः आसीत्, तस्य स्वास्थ्ये किमपि असामान्यं नासीत्, यत् यस्मात् केनापि प्रकारस्य अशुभस्य सम्भावनां वर्धयितुं शक्नोति स्म, न च तस्य दिनचर्या एतादृशम् आश्चर्यं न जनयति स्म, अतः तस्मिन् दिने ते किमर्थं एतत् कुर्वन्ति इति शङ्का स्यात्। यथा गतदिवसेषु प्रचलति स्म, तस्मिन् दिने अपि सर्वं प्रायः तथैव अभवत्। अतैव तस्मिन् दिने तस्य समीपे स्थातुं वा तस्य विषये विशेषं ध्यानं दातुं कोऽपि आवश्यकं न मन्यते स्म, अतः नित्यकार्यं निर्वह्य सर्वपक्षीवत् स्वनीडं गतवन्तः। ते सर्वे अवश्यमेव धन्याः आसन्, यत् ते २० शताब्द्याः महत्तमस्य युद्धरतस्य, सिद्धान्तगतस्य व्यक्तित्वस्य सेवायाः अन्तिमावसरं प्राप्तवान्।

श्रीमती शारदा प्रातः निर्जीवमपश्यत्पतिम्। अम्बेडकरदर्शनम् १५/७१

डॉ. शारदा–अम्बेडकरः १९५६ तमे वर्षे दिसम्बरमासस्य ६ दिनाङ्के प्रातःकाले जागृता अभवत्। सः दर्पणेन निरीक्षमाणः दृष्टवती, यत् बाबा साहेबस्य पादौ शय्यायां प्रसारितौ आस्ताम्, तस्य निद्रां न बाधित्वा सा उद्याने भ्रमणार्थं बहिः आगता। किञ्चित्कालं यावत् उद्याने परिभ्रमित्वा सा बाबासाहेबं जागरणार्थं कक्षं प्रति अगच्छत्। सा प्रथमवारं आहूतवती, परन्तु उत्तरं न आगतं, अतः सा पुनः आहूतवती। अस्मिन् समये अपि उत्तरं न आगतं अतः

सा स्तब्धा अभवत, अतः समीपं गत्वा उच्चौः उद्घोषितवती। तत् तस्य शरीरं निष्क्रियत्वेन पतितम्। वैद्या सबिता अम्बेडकरः यदा चिकित्सादृष्ट्या तत् दृष्टवती तदा सा स्तब्धा अभवत्।

ज्योतिर्हि केवलं ज्योतिः ततान यो नृणां हृदि।
स एव साम्प्रतं ज्योतिः दिवं गतमलौकिकम्।। अम्बेडकरदर्शनम् १५/७६

"वर्षाणि यावत् स्वकर्मणा, उपलब्धिभिः, शान्तैः अशांतैः आन्दोलनैः, धार्मिकसामाजिकराजनैतिकसिंहगर्जनेन च अस्य देशस्य आन्दोलनं कृत्वा विभूतिः सदा निद्रां गतः। ज्वालामुखी अपि एतावत् शान्तः भवितुम् अर्हति वा? डॉ. भीमराव–अम्बेडकरस्य इमा आकस्मिकस्थायिशान्तिः, यः जनानां मनसि हृदयेषु च क्रान्तितरङ्गं जनयित्वा भूकम्पं निर्मितवान्, तस्य भार्यायै तत् न रोचते स्म। परन्तु तत् सत्यम् आसीत्, यत् सत्यं न निराकर्तुं शक्यते स्म, परन्तु यस्य स्वीकारार्थं विशालं पाषाणहृदयम् आवश्यकम् आसीत्। भारतस्य पीडितानां जीवने यः सूर्यवत् किरणं प्रसारयति स्म, सः वास्तविकसूर्यस्य उदयसमये अविश्वसनीयरूपेण अस्तम् अभवत्, एवञ्च आधुनिकभारतस्य ऋषिः १९५६ तमे वर्षे दिसम्बरमासस्य ६ दिनाङ्के महापरिनिर्वाणं प्राप्तवान्।

परेत– भीमं स्व–गृहं च नेतुमाकाश–यानं विनियोजितं च।। भीमायनम् २१/७०

रत्तू आत्य तत्क्षणमेव सर्वेभ्यः परिचितेभ्यः, कार्यकर्तृभ्यः, केन्द्रीयमन्त्रिभ्यः च इमां दुःखदवार्ताम् अयच्छत्। पं नेहरू स्वयं बंगलम् आगत्य शोकप्रकटं कृतवान्, तथाच अनेकमन्त्रिणः अपि बंगलं आगत्य शोकं प्रकटितवन्तः। डॉ. साहेबस्य मृतशरीरं विशेषविमानेन बम्बईनगरं नेतुम् इति निर्णयः अभवत्। तस्य मृत्युवार्ता सम्पूर्णे भारते तरङ्गवत् प्रसृता। बहुसंख्याकाः जनाः देहलीतः बम्बई–नगरं प्रति प्रस्थिताः। डॉ. अम्बेडकरस्य राज्यसभायाः सदस्यत्वात् राज्यसभायाः सभां स्थगितवन्तः।

शंकरानन्दशास्त्री, रत्तू, सोहनलालशास्त्री, आनंदकौसल्याणः, यशवंत रावः, डॉ. सविता अम्बेडकरः च डॉ. साहेबस्य मृतशरीरेण सह एकादश जनाः विमानेन बम्बईनगरं प्रति प्रस्थिताः आसन्। अर्धरात्रेः अनन्तरं २:३० तः ३:०० पर्यन्तं विमानं बम्बई–विमानस्थानकं प्राप्तवान्। राजगृहतः शान्तक्रूजविमानस्थानकं यावत् अपराह्णे १.३० वादनात् जनाः प्रतीक्षन्ते स्म। शोककर्तारः उच्चौः शोचन्ति स्म। रात्रौ विलम्बेन शान्तक्रूज्–नगरात् निर्गत्य अन्त्येष्टि–यात्रा शान्तिपूर्वकं गता। यावत् राजगृहं प्राप्तवन्तः तावत् सूर्योदयः अभवत्। भीमरावस्य शरीरं जनानां अन्तिमदर्शनार्थं तत्रैव स्थापितं आसीत्। अन्तिमश्रद्धांजलिम् अर्पयितुं लक्षशः जनाः दशहोराः यावत् पङ्क्तौ स्थातुं प्रवृत्ताः आसन्। दिसम्बरमासस्य ७ दिनाङ्के सम्पूर्णबम्बई–नगरं पीहितम् आसीत्। दुःखदवार्तां श्रुत्वा जनाः मूर्च्छिताः इत्यपि अनेकानसूचनाः प्राप्ताः अभवन्। बम्बई–नगरस्य इतिहासे कदापि एतादृशः शोक–दुःख–सागरः न प्रफुल्लितः आसीत्।

भीमान्त्य–संस्कार–विधान हेर्तोउपस्थिता बौद्ध–पुरोहिताश्च।
पुत्रस्तदा श्रीयशवन्तनामा धृत्वाऽग्नि–पात्रं पुरतश्च तस्थौ।। भीमायनम् २१/८२

डॉ. अम्बेडकरस्य अन्तिमयात्रा अपराह्णे ३ तः ४ वादनपर्यन्तम् आसीत्। तस्य शरीरं अलङ्कृते ट्रकयाने पुष्पैः आच्छादितम् आसीत्। शिरसि बुद्धस्य मूर्तिः स्थापिता आसीत्। सिक्थवर्तिकाः धूपवर्तिकाः च समन्ततः प्रज्वलिताः आसन्। जनाः शान्तिपूर्वकं अग्रे गच्छन्ति स्म। उत्तरबम्बईनगरस्य जीवनं सर्वथा स्थगितम् आसीत्। ग्रामेभ्यः लक्षशः जनाः अपि विविधैः उपायैः बम्बईनगरं प्राप्तवन्तः आसन्। मार्गस्य उभयतः गृहेभ्यः जनाः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्ति स्म। समग्रवातावरणं शोकपूर्णम् आसीत्। इमा अन्तिमयात्रा चतुरहोराऽनन्तरं दादर–नगरस्य दाह–स्थलं

प्राप्तवती। अत्र प्रायः १० लक्षं जनाः अन्तिमं श्रद्धांजलिम् अयच्छन्। रात्रौ सार्धसप्तवादने यशवन्तराव अम्बेडकरः चितां प्रज्वलितवान् तदा सहस्राणि जनाः रोदितवन्तः। बौद्धभिक्षवः बौद्धसंस्कारानुसारं अन्तिमसंस्कारं कुर्वन्ति स्म। प्रथमवारं बम्बईनगरस्य आरक्षकैः सत्ताहीनस्य गैरसरकारीव्यक्तिं प्रति सम्मानः दत्तः। "त्रिरत्न" "पञ्चशील" इत्येतयोः स्वराः मोक्षधामे होराभिः यावत् प्रतिध्वनिताः आसन्।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

1. अम्बेडकरदर्शनम्, प्रो. बलदेवसिंहमेहरा, देवेश पब्लिकेशंस्, रोहतक 688/1 प्रथम संस्करण, 2009
2. भीमायनम्, प्रो.प्रभाकरशंकरजोशी, शारदा गौरव ग्रन्थमाला, नव–विक्रम 2066
3. अम्बेडकरशतकम्, डॉ. प्रियसेनसिहः, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम् नई दिल्ली– 110058 संस्करण 2012
4. और बाबासाहेब अम्बेडकर ने कहा खण्ड (01) एवं.जी. मेश्राम 'विमलकीर्ती' हिन्दी अनुवादः राधा प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली – 110002 प्रथमसंस्करण– 2008
5. डॉ. भीमराव अम्बेडकर, सत्यनारायण, इनडिपेंडेंपब्लिशिंगकम्पनी–4774 दिल्ली –1 10006, 1992
6. डॉ. अम्बेडकर और पं. दीनदयाल प्रीति पांडे एबीडी पब्लिशर्स जयपुर 203015 (राजस्थान), प्रथमसंस्करण –2006
7. भीमराव अम्बेडकर– विश्व प्रकाशगुप्ता महिनी गुप्ता, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली–110002 प्रथमसंस्करण 1996 द्वितीयसंस्करण 2001
8. डॉ. अम्बेडकर जीवन और दर्शन, डॉ. राजेंद्र मोहन भटनागर।
9. डॉ अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जाटव डॉ. डी. आर.।
10. युगपुरुष बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, राय हिमांशु।
11. डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर, मून, वसंत।

पता– 180– बरौली अहीर शमशाबाद रोड आगरा उत्तर प्रदेश– 283125

मेल आईडी– kratiyadav987@gmail.com

फोन.नं.– 7017220427

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 65-69

जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में अम्बेडकरवादी दर्शन

अजय कुमार चौधरी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, पी. एन. दास कॉलेज, पलता।

शोध सारांश :-

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित उपन्यास छप्पर अंबेडकरवादी उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने आंबेडकरवाद की त्रिसूत्रीय सिद्धांत–"शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" को केंद्र में रखकर लिखा है। इस त्रिसूत्रीय सिद्धांत को स्थापित करने के लिये उपन्यासकार ने चंदन जैसे नायक का चयन किया। चंदन इस उपन्यास का केंद्र नायक हैं। चंदन के पिता सुक्खा और माँ रमिया जीवन के जद्दोजहद से दो–दो हाथ करते हुए चंदन को शिक्षित बनाने के लिए संघर्ष करता है। कई प्रतिरोधों का सामना करते हुए वह चंदन को शिक्षित बनने के लिए शहर भेजता है। चंदन शहर में शिक्षा प्राप्त करते हुए बाबासाहब अंबेडकर की विचारधाराओं को समाज में प्रचार–प्रसार करता है। वह जिस समाज में रहता है वहाँ के वयस्क, युवाओं और बच्चों को शिक्षित करता है। समाज में समानता लाने के लिये, अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, सामाजिक समानता, उत्पीड़न के प्रति विरोध के विरुद्ध में लोगों का संगठन तैयार करता है और इन लोगों के माध्यम से परंपरावादी रूढ़ियों, अंधविश्वासों को खत्म कर समाज में समानता, अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है। चंदन अंबेडकरवादी सिद्धांतों के आधार पर एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जहाँ ना कोई छोटा हो और ना ही कोई बड़ा हो। समाज में हर मनुष्य का सम्मान हो और वह सम्मान जाति विशेष ना हो कर गुण और कर्म के आधार पर प्राप्त हो।

बीज शब्द :- शिक्षा, संगठन, संघर्ष, समानता, अधिकार।

शोध आलेख :-

छप्पर अंबेडकरवादी दर्शन को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। अम्बेडकरवाद भारतीय सामाजिक नायक डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नाम पर जोड़ी गई एक विचारधारा है। इस विचारधारा का मूल ध्येय विशेष रूप से भारतीय सामाजिक जाति और वर्ग समानता के मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करना है। अम्बेडकरवाद के मूल आदार्श डॉ. अम्बेडकर की संविधानिक योजनाओं और उनके सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हैं। डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान के मुख्य लेखक थे और उन्होंने सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, सामान्य समुदायों की समानता और जाति प्रथा के उद्धार के लिए समर्पित थे। वे भारतीय संविधान को एक समावेशी, संघीय, लोकतांत्रिक और सामाजिक न्यायपूर्ण देश के निर्माण का माध्यम मानते थे। अम्बेडकरवाद की मुख्य उद्देश्यों में शामिल हैं– भारतीय समाज में जाति और वर्ग समानता की प्राथमिकता: अम्बेडकरवाद सामाजिक न्याय और समानता के प्रति

जागरूकता फैलाने का प्रयास करता है। यह विचारधारा जातिवाद, जातिगत भेदभाव, उत्पीड़न और अन्य जाति से संबंधित समस्याओं का उद्घाटित करती है। अम्बेडकरवादी विचारधारा शिक्षा को मानवाधिकार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानती है। उनके मुताबिक, शिक्षा के माध्यम से जाति, वर्ग और लिंग के भिन्नताओं को दूर करके समाज में समानता स्थापित की जा सकती है। अम्बेडकरवाद सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मानवाधिकारों की सुरक्षा का भी प्रतिष्ठान रखती है। वे मानवाधिकारों के लिए व्यापक संविधानिक सुरक्षा का प्रशंसक थे और सामाजिक न्याय के माध्यम से सभी व्यक्तियों के लिए उनका सम्मान सुनिश्चित करने की मांग करते थे। अम्बेडकरवाद भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली विचारधारा है, जो सामाजिक न्याय, समानता, मानवाधिकार और विकास के मामलों पर ध्यान केंद्रित करती है। आंबेडकरवादी दर्शन की जो मूल सिद्धांत–"शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" है।

जयप्रकाश कर्दम ने इस उपन्यास की रचना इन्हीं मूल सिद्धांतों को केंद्र में रखकर किया है। वैसे तो छप्पर को हम उपन्यास कला की दृष्टि से दलित सिद्धांत को केंद्र में रखकर लिखा गया मानते हैं। लेकिन दलित सिद्धांत का जो मूल आधार आंबेडकरवाद है इसी सिद्धांत के चारों तरफ़ उपन्यास का कथानक चक्कर लगाता हुआ प्रतीत होता है। उपन्यास की शुरुआत वर्णन शैली से होती है जिसमें मातापुर गांव के उत्तर से लेकर दक्षिण और पश्चिम से लेकर पूर्व की ओर की यथास्थिति का विस्तार करते हुए समाज के दो वर्ग सवर्ण और दलित की स्थिति को व्यक्त करते हैं– "संपन्न सवर्ण लोगों के घर काफी बड़े पक्के और प्लास्टर युक्त है। रहने–सहने के लिए दुमंजिले–तिमंजिले और उठ–बैठ के लिए लंबे–चौड़े आहाते में बैठक या चौपाल और ढोर–डांगरों के लिए अलग जगह।"[1] तो वहीं दूसरी ओर दलित की बस्ती का वर्णन करते है– "किंतु जो लोग दलित हैं उनके पास रहने–सहने तथा एक आध पशु, जो पालते हैं, उन सब के लिए कुल जमा गारा मिट्टी की दीवारों पर घास–फूस के छप्पर या झोपड़ियां है है इकछत्ती– दुछत्ती। अधिक हुआ तो किसी के कच्चे कोठे पर बांस की खपच्ची या खपरैल की छत होती है यह पशुओं के लिए छान झोपड़ी अलग।"[2] इस तरह उपन्यासकार ने उपन्यास के शुरुआत में ही समाज के दो वर्गों की स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। एक के पास अथाह संपत्ति तो दूसरे के पास ढंग से रहने के लिए छप्पर भी नसीब नहीं। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपनी मुक्ति का मार्ग तलाशता है। सुखिया और रमिया ऐसे ही दो दलित परिवार है जो अंबेडकर बाद के सिद्धांतों को अपने जेहन में लिए हुए शिक्षा के महत्त्व को, उसकी आवश्यकता को समझते हुए अपने बेटे चंदन को शिक्षित करने के लिए आजीवन संघर्ष करता है। संघर्ष भी कोई मामूली नहीं, दिन–रात खुद को दुख देकर या कहे तो सवर्ण समाज द्वारा तैयार की गई स्थितियों का मारा स्वयं को दुख भोगता है लेकिन यथास्थिति को न स्वीकार करते हुए वह भविष्य की सपने बुनते हुए, अपने बेटे को शिक्षा के लिए शहर भेजता है।

सुख्खा अपनी स्त्री रमिया को शिक्षा के महत्त्व को समझाते हुए कहता है "चुप रह पगली, कोई पेट से बड़ा बनकर आता है। पढ़ लिखकर बड़े बनते है सब। क्या पता हमारा चंदन भी कल को कलेक्टर या दरोगा बन जाए। अपनी चिंता छोड़, हमें थोड़े दिन दुख उठाने पड़ रहे हैं तो क्या, दुख के बाद ही सुख आता है।"[3] सुखा जीवन का कष्ट सह सकता है लेकिन अपने बेटे चंदन को अधूरी शिक्षा से वापस बुलाना उसे पसंद नहीं। चंदन भी शिक्षा को महत्त्व देता है उसका मानना है कि समाज में समानता और परिवर्तन तभी संभव है जब हमारा समाज शिक्षित हो। शिक्षा के बिना समाज का विकास संभव नहीं है। इसलिए वह शहर के जिस कस्बा में रहता

है वहाँ के दलित, पीड़ित शोषित और आर्थिक रूप से विपन्न लोगों को इकट्ठा कर उसे शिक्षित करने का प्रयास करता है इसके लिए वह अपनी पढ़ाई के साथ–साथ वहाँ के बच्चों के साथ बड़ों को भी पढ़ाने के लिए स्कूल की व्यवस्था करता है। वह जिस कस्बे में रहता है वहाँ की वास्तविक जीवन दुख और पीड़ा की है। वहाँ के सारे लोग कामगार हैं। कड़ी मेहनत के बाद अपने जीवन को चलाने के लिए नशे का सहारा लेते हैं, जिससे उन लोगों का जीवन बर्बाद हो। चंदन स्पष्ट रूप से इन चीजों को देखता है और इसका विरोध करता। शिक्षा के अभाव में ही मनुष्य अंधविश्वास, कुपरंपरा की चक्कर में फंसकर अपने जीवन के जमा पूंजी को बर्बाद कर देता है। कई दिनों तक वर्षा ना होने के कारण कस्बे के लोगों ने यज्ञ करने का फैसला किया। यज्ञ के लिए आर्थिक सहायता के लिए वहाँ के दलित पीड़ित लोग चंदन के पास जाता है। चंदन अपनी बातों से इसका पुरज़ोर विरोध करते हुए कहता है "नहीं साफ सीधी बात कह रहा हूँ मैं दुनिया में ऐसा कोई भगवान, ईश्वर या परमात्मा नहीं है जो सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। जो सबको पैदा करने वाला, पालन करने वाला और संहार करने वाला है। जो शाश्वत और चौतन्य है। जो जगत का नियामक तथा अनादि और अनंत है। यह मान्यता असत्या, भ्रामक तथा वैज्ञानिकता से परे है। सच्चाई यह है कि दुनिया में आत्मा परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्मा, भगवान या इस तरह की किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य सबसे बड़ी सत्ता है, दुनिया में मनुष्य से बड़ी कोई चीज़ नहीं है।"[4]

चंदन शिक्षा के माध्यम से इन दकियानूसी बातों का विरोध करते है तथा लोगों में वैज्ञानिक चेतना का विकास करता है। दलित युवाओं के लिए शिक्षा प्राप्त करना आसान बात नहीं है। पग–पग पर उसे संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। दलित समाज में जब कोई युवा शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाहर जाता है तो वह केवल उसका संघर्ष नहीं होता बल्कि पूरे परिवार उस संघर्ष का भागी बनता है, चंदन इस बात से वाकिफ हैं "पिताओं को कितने विरोधियों और संघर्षों का सामना करना पड़ता है। उनको कितने दुःख और कष्ट उठाने पड़े हैं इससे अनभिज्ञ नहीं हैं हम। हमारी शिक्षा के मार्ग में कितने रोड़े अटकाए गए हैं। स्कूल कॉलेजों में भी हमको घृणा और अपमान का जहर पीना पड़ा है। कितनी प्रतिकूल परिस्थितियों में हम पढ़ लिख सकें है वह भी हम अच्छी तरह जानते हैं। इतनी विशाल दलित समाज में से हम लोग यहाँ हमारे जैसे जो थोड़े बहुत लोग पढ़ लिख गए हैं वे अपवाद हैं। वरना हम लोग कहाँ पढ़ पाते हैं। कौन पढ़ने देता है हमें।"[5] सुक्खा जब चंदन को पढ़ने के लिए शहर भेजता है तो गांव के ठाकुर और ब्राह्मणों का घोर विरोध सहना पड़ता है। ठाकुर ब्राह्मण नहीं चाहते की कोई से नीच जाति का लोग शहर जाकर शिक्षा प्राप्त करें। चंदन जब शहर पढ़ने गया तो जैसे भूचाल आ गया था सारे गांव में। ठाकुर ब्राह्मण सब के कान खड़े हो गए थे। अनहोनी बात हो गई, अनहोनी ही नहीं, जैसे बड़ा भयंकर अनर्थ हो गया। ब्राह्मण और ठाकुरों से लेकर लाला साहूकार तक सब है इस गांव में और बड़े–बड़े पैसे और हैसियत वाले, पर आज तक किसी का बेटा शहर पढ़ने नहीं गया। लेकिन सुक्खा चमार का बेटा पढ़ने शहर चला गया। नाक कट गई सब की। सबके सिर पर मूत दिया एक चमार ने।"[6] इस तरह हम देख पाते हैं की सवर्ण मानसिकता वाले लोग दलित समाज के बच्चे के पढ़ने के प्रति कितने उदासीन और तीव्र हैं। दलित समाज को शिक्षित होने के लिए कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है इसका स्पष्ट रूप इस उपन्यास में देख सकते हैं।

चंदन अपने सामाजिक दायित्व को समझते हुए दलित समाज को भी शिक्षित करने का प्रयास करते हुए कहता है कि "अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए उन सब को वही सब कुछ सहना पड़ेगा जो हमारे माता पिताओं

को सहना पड़ा है। संघर्ष करने की भावना और शक्ति हर किसी में नहीं। इसलिए वे लोग संघर्षों से टूट न जाए, उनकी आगे समर्पण ना कर दे, इस स्थिति से बचने के लिए उनको हमारी मदद की जरूरत होगी। आर्थिक, प्रशासनिक और कानूनी, उनको हर तरह की मदद चाहिए। इसलिए हमारा कर्तव्य बनता है कि हम चाहे जिस क्षेत्र में जाए लेकिन अपने लोगों का ध्यान रखें और उनकी मदद करें।"[7] चंदन केवल शिक्षित होने के लिए बल नहीं देता बल्कि शिक्षित होकर सामाजिक दायित्व का वहन करने का भी संदेश देता है। शिक्षित होने का अर्थ केवल अपने लिए धन उपार्जन नहीं बल्कि अपने समाज की प्रति भी समर्पित होना ज़रूरी है। इसके लिए संगठन की आवश्यकता होती है संगठन के अभाव में हम दूरगामी कार्यक्रम का अनुसरण नहीं कर सकते और ना ही सामाजिक बदलाव में अहम भूमिका निभा सकते हैं। संगठन का होना अनिवार्य है, संगठित सदस्यों का शिक्षित होना भी अनिवार्य है, उसमें सदाशयता होना भी अनिवार्य है। लोगों के दुखों और परेशानियों को अपना समझने की जरूरत है तभी हम उनकी समस्याओं को काफी हद तक समाधान कर सकते हैं। इसके लिए चंदन संगठन पर ज़ोर देता है "हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना है। एक दो आदमी के बस का नहीं है यह काम। आप अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इन सब के लिए फौज चाहिए, वह फौज तैयार करूँगा मैं।"[8]

और संगठित रूप में कार्य करने की प्रेरणा भी देता है। "मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दिन ही समाज के उत्थान के लिए करूँगा। मैं उन पीड़ित, शोषित और उपेक्षित लोगों को ऊपर उठाने के लिए काम करूँगा जो कीड़े मकोड़ों की तरह जीते हैं। शेष समाज जिनके साथ पशुवत व्यवहार करता है, उनको पास नहीं बिठाता ओर उन्हें से घृणा करता है।"[8] ऐसे लोगों को चंदन शिक्षा के माध्यम से सामाजिक उत्थान समानता की भावना का प्रचार कर उसे सामाजिक सम्मान दिलाने का प्रयास करता है। मैं पढ़ाऊंगा, मैं शिक्षित करूँगा उन्हें। मैं वाणी दूंगा, उनकी मुख्य जुबान को। पढ़ लिखकर हमारे समाज के लोग ऊपर नहीं उठेंगे तो हमें ही कौन पूछेगा।"[9] यह कार्य तभी संभव है जब संगठन के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न किया जाए। इसलिए चंदन संगठन पर पुरज़ोर समर्थन देता है और संगठन की तैयारी कर समाज के उत्थान और विकास के यज्ञ में अपनी पसीने को आहूत करता है। संगठन का मूल उद्देश्य ही होता है– संघर्ष करना। संघर्ष के बिना जीवन का विकास संभव नहीं। समाज के विकास के लिए संघर्ष पहला पायदान है जिससे होकर मुक्त वातावरण में विचरण कर सकते हैं। चंदन संगठित होकर समाज में शिक्षा का प्रचार प्रसार करता है। समाज में फैले रूढ़िवादी, परंपरावादी विचारों का खंडन मंडन करता है। सामाजिक लोगों में वैज्ञानिक चेतना का विकास करता है। जिसके माध्यम से समाज में समानता और भाई–चारे की भावना का विकास होता है।

शिक्षा पर बल देते हुए चंदन अपने समाज के लोगों को समझाते हुए कहता है कि "आप लोगों को चाहे रूखी रोटी खाना पड़े, एक रोटी कम खाने को मिले या एक टाइम भूखा भी रहना पड़े, लेकिन यदि आप अपने इस निश्चय पर दृढ़ रहें कि आपको अपने बच्चे को पढ़ाना है तो कोई वजह नहीं की आप लोग अपने बच्चों को पढ़ा लिखाकर उनको इस नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाना न पाएं।"[10] कठिन परिश्रम से अपने समाज के दायित्व का वहन कर रहा था जिसका सुफल यह निकला कि "चंदन का स्कूल भी खूब चल निकला था अब। लोगों को शिक्षित करना, उनको संगठित करना और उन में जागृति पैदा करना ही उद्देश्य था उसका। और इस उद्देश्य को पूरी निष्ठा से कार्य रूप में परिणति करने लगा था वह।"[11] चंदन की अगवाई में सामाजिक बदलाव

के लिए शुरू हुए आंदोलन की व्यापक प्रतिक्रिया समाज पर हुई। लोक मानस को जोड़ दिया। भ्रम और भांति से मुक्त होकर दलित लोगों में यथार्थ को जानना जरूरी किया। जन्म के आधार पर व्यक्ति को अछूत या हीन मानने आपकी भावना का लोप होने लगा था और उसके स्थान पर यह भावना विकसित हो चली थी कि जन्म के आधार पर ही अपितु गुण कर्म तथा योग्यता के आधार पर ही मनुष्य श्रेष्ठ अथवा हीन होता है। चंदन के अथक प्रयास का सुखद परिणाम यह देखने को मिलता है कि समाज में परिवर्तन का बयार चलने लगती है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' उपन्यास के माध्यम से अंबेडकरवादी सिद्धांतों को पूरी सफलता के साथ उकेरने का प्रयास किया है। और वह इस प्रयास में पूर्णतः सफल भी है। वास्तव में चंदन इस उपन्यास का नायक नहीं बल्कि वह केंद्र बिन्दु है जिसके आसपास कथानक का प्लॉट उद्देश्य को लेकर घूमता रहता है। उपन्यासकार ने अपने सिद्धांतों को चंदन के माध्यम से प्रचार–प्रसार कर दलित समाज में शिक्षा का प्रचार प्रसार करना, समाज के शिक्षा के प्रति जागृति लाना, अधिकारों के प्रति सचेत होना, अधिकार प्राप्ति के लिए संगठन का निर्माण करना और उस संगठन के माध्यम से अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना ही इनका मूल उद्देश्य रहा है। उपन्यास का नायक चंदन इन विचारों की प्रचार प्रसार में अपनी पूरी ऊर्जा लगा देता है जिसका परिणाम समाज परिवर्तन की बयार चलने लगती है।

संदर्भ सूची :-

1. कर्दम, जयप्रकाश, छप्पर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण– पहला, 1994, पृ. 7
2. वही, पृ. 7
3. वही, पृ. 11
4. वही, पृ. 19
5. वही, पृ. 42
6. वही, पृ. 34
7. वही, पृ. 43
8. वही, पृ. 44
9. वही, पृ. 44
10. वही, पृ. 46
11. वही, पृ. 58

Ajay Kumar Choudhary, Assistant Professor
1050, City Plaza, Goalafatak More, Naihati, North 24 Parganas, West Bengal, PIN 743165
Mobile No : 8981031969
Email ID: ajaychoudharyac@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 70-74

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के समायोजन पर भावात्मक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. नितिन, सहायक प्रवक्ता
सुनीता यादव, शोधकर्ता
शिक्षा विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।

प्रस्तावना :-

मानव ने दर्शन, कला, विज्ञान एवं तकनीकी आदि क्षेत्रों में आदिकाल से जो कुछ भी अर्जित किया है। उसका उद्‌गम श्रोत मानवीय संवेगात्मक बुद्धि एवं समायोजन ही रहा है। इन्हें विश्व की प्रगति के लिए एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी माना गया है। संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य उसकी संवेगात्मक बुद्धि स्तर की उस सापेक्ष माप से होता है जिसका मापन परिस्थिति विशेष में सम्पन्न किसी समय विशेष पर किया गया हो।

जॉन डी. मेयर तथा पीटर सेलोव (1997) के अनुसार –संवेगात्मक बुद्धि को एक ऐसी क्षमता के रूप में देखा जाता है जिससे चार विभिन्न रूपों में संवेगों को उचित दिशा देने में मदद मिले जैसे संवेग विशेष का प्रत्यक्षीकरण करना, उसका अपनी विचार प्रकिया में समन्वय करना, उसे समझना तथा उसका प्रबंधन करना। संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति विशेष की उस समग्र क्षमता (सामान्य बुद्धि से सम्बंधित होते हुए भी अपने आप से स्वंतंत्र) से है जो उसे उसकी विचार प्रकिया का उपयोग करते हुए अपने तथा दूसरों के संवेगों को जानने, समझने तथा उनकी ऐसी उचित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति करने में इस प्रकार मदद करें कि वह ऐसी वांछित व्यवहार अनुक्रियायें कर सकें जिनसे उसे दूसरों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए अपना समुचित हित करने हेतु अधिक अच्छे अवसर प्राप्त हो सकें। मानव जीवन की परिस्थितियां बराबर बदलती रहती है। शैशवास्था से लेकर वृद्धावस्था तक मनुष्य के सम्मुख नई–नई समस्याएँ और नई–नई परिस्थितियां आती रहती हैं, और वह अपनी बुद्धि और अपनी सामर्थ्य से काम लेते हुए बराबर इन समस्याओं को सुलझाने और परिस्थितियों से निपटने की चेष्टा करता है। इस सतत प्रकिया को ही जीवन कहते हैं, यह समायोजन की प्रकिया है।

लैणडिस तथा बोल्स के अनुसार – समायोजन का अर्थ है नित्य प्रति के जीवन के मतभेदों अंतर्द्‌वंद्वों और निर्णयों को व्यवस्थित, क्रमबद्ध और एक रस बना लेना अथवा अपने अस्तित्व को बनाय रखने के लिए व्यवहारिक तत्वों से नियमन या व्यवस्थापन बना लेना। संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव व्यक्ति के समायोजन पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। शिक्षा का क्षेत्र भी तनाव व संघर्ष से अछूता नहीं रहा है। विशेष रूप से माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थी तीव्र असमायोजन की समस्या से जूझते हैं। जिसके मुख्य कारण किशोरावस्था में होने

वाले वातावरण में परिवर्तन, शैक्षिक प्रतिस्पर्धा, भविष्य में व्यवसाय चयन की समस्या आदि समस्याएँ हैं। व्यक्ति अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वयं को जिस सीमा तक समायोजित कर लेना है, वह उसकी समायोजन क्षमता पर निर्भर करता है। समायोजन की प्रक्रिया में व्यक्ति का स्वंय के संवेगों पर नियंत्रण करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। एक व्यक्ति साम्वेगिक रूप में जितना अधिक परिपक्व होगा उसकी उसी अनुपात में समायोजन भी होगा।

भावात्मक बुद्धि :–

जीवन में बौद्धिक विकास से ज्यादा जरूरी है भावनात्मक विकास। सुख–शांति हासिल करने और सफल व सार्थक जीवन जीने के लिए भावनात्मक विकास के लक्ष्य पर ध्यान देना जरूरी है ताकि हर व्यक्ति अपनी भावनाओं पर नियंत्रण कर सके। जैसे मजबूत नींव पर बहुमंजिले भवन की स्थिरता बनी रहती है वैसे ही भावना हमारे जीवन की नींव है।

सीधे शब्दों में कहें तो, भावनात्मक बुद्धिमत्ता आपकी अपनी भावनाओं के साथ–साथ अन्य लोगों की भावनाओं से निपटने और बातचीत करने की क्षमता है। ईआई को आमतौर पर चार प्रमुख क्षमताओं में विभाजित किया गया है :–

– भावनाओं को समझना और पहचानना।
– भावनाओं का उपयोग करके सोचना और तर्क करना।
– भावनाओं को समझना और वे कैसे बदलती हैं।
– भावनाओं को विनियमित करना और प्रबंधित करना (आपकी और अन्य लोगों दोनों की)।

लेकिन भावनात्मक बुद्धिमत्ता इन क्षमताओं तक ही सीमित नहीं है। यह एक जटिल और तरल अवधारणा है जिसे परिभाषित करना कभी–कभी कठिन होता है।

– पीटर सलोवी और जॉन मेयर द्वारा भावनात्मक बुद्धिमत्ता को 'अपनी और अन्य लोगों की भावनाओं पर नजर रखने, विभिन्न भावनाओं के बीच भेदभाव करने और उन्हें उचित रूप से लेबल करने, और सोच और व्यवहार को निर्देशित करने के लिए भावनात्मक जानकारी का उपयोग करने की क्षमता' के रूप में परिभाषित किया गया है। बाद में इस परिभाषा को तोड़ दिया गया और चार प्रस्तावित क्षमताओं में परिष्कृत किया गया। भावनाओं को समझना, उपयोग करना, समझना और प्रबंधित करना। ये क्षमताएं अलग–अलग हैं फिर भी संबंधित हैं।

भावात्मक बुद्धि का निर्माण करने पर आजीवन प्रभाव पड़ता है। कई माता–पिता और शिक्षक, युवा स्कूली बच्चों में संघर्ष के बढ़ते स्तर से चिंतित–कम आत्मसम्मान से लेकर शुरुआती दवा और शराब के उपयोग से लेकर अवसाद तक, छात्रों को भावनात्मक ज्ञान के लिए आवश्यक कौशल सिखाने में जल्दबाजी कर रहे हैं। और निगमों में, प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भावनात्मक इंटेलिजेंस को शामिल करने से बेहतर सहयोग करने और अधिक प्रेरित करने में मदद मिली है, जिससे उत्पादकता और मुनाफे में वृद्धि हुई है, शोधकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला है कि जो लोग अपनी भावनाओं को अच्छी तरह से प्रबंधित करते हैं और दूसरों के साथ प्रभावी ढंग से व्यवहार करते हैं, वे सामग्री जीवन जीने की अधिक संभावना रखते हैं। साथ ही, खुश लोग जानकारी को बनाए रखने और असंतुष्ट लोगों की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से करने के लिए उपयुक्त हैं।

समायोजन की अवधारणा :-

हमारे दिन–प्रतिदिन के जीवन में हमें तनाव मुक्त जीवन जीने के लिए समायोजन की आवश्यकता है, यह समायोजन कहीं भी हो सकता है उदाहरण के लिए : परिवार में, स्कूल में, सहकर्मी समूहों में, समाज में, नौकरी में, आदि। एक व्यक्ति के अस्तित्व के लिए आवश्यक समायोजित करने के लिए है। डार्विन कहते हैं, 'जीवन अस्तित्व और अस्तित्व के लिए संघर्ष की एक सतत् श्रृंखला प्रस्तुत करता है।' अवलोकन बहुत सही है जैसा कि हम अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में पाते हैं। हम में से हर कोई अपनी आवश्यकताओं के संतोषजनक के लिए कड़ी मेहनत करता है। किसी चीज को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हुए अगर कोई पाता है कि परिणाम संतोषजनक नहीं हैं, तो कोई एक के लक्ष्य या प्रक्रिया को बदल देता है।

बच्चों के भावनात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण तरीके :-

1. भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करना :

जब बच्चा पहली बार स्कूल में प्रवेश करता है, तो वह काफी नई दुनिया पाता है। वह अपने घर के क्षेत्र में एक राजकुमार की तरह था। उनकी पसंद और नापसंद का बहुत महत्व था। उन्होंने खुद को शारीरिक और भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस किया। उनमें अपनेपन की भावना थी और आत्म–विश्वास की उनकी भावना भी संतोषजनक रूप से थी। लेकिन स्कूल में सब कुछ बदल जाता है। शुरुआत से लेकर अब तक के मामलों में उनकी अहमियत और आवाज कम है। अन्य सभी बच्चे उसे अच्छी तरह से बुनना और अच्छी तरह से अपने स्वयं के समूहों में समायोजित करते हुए दिखाई देते हैं, जबकि वह अलग–थलग है। कभी–कभी वह साथी छात्रों द्वारा उपहास किया जाता है। ये सभी बातें उसे भावनात्मक रूप से बहुत असहज करती हैं। यदि शिक्षक भी उसके प्रति उदासीन है या वह उसके लिए थोड़ा कठोर साबित होता है, तो वह अपना भावनात्मक संतुलन खो देता है। शिक्षक को इस स्थिति से बहुत सावधान रहना चाहिए। उसे नए लोगों के लिए घर से स्कूल में शिफ्ट करने की कोशिश करनी चाहिए। अवांछनीय समाज में नए लोगों की मदद करने के लिए एक शिक्षक के मार्गदर्शन में कुछ छात्रों को शामिल करने के लिए एक स्वागत समिति हो सकती है।

2. आय के बावजूद समान उपचार :

कभी–कभी गरीबी कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ विद्यार्थियों के लिए भावनात्मक अशांति का कारण बनती है। घर में गरीब बच्चा काफी सीमित था और अपनी सीमित दुनिया में खुश था। लेकिन जब गरीब बच्चे स्कूल में अमीर लोगों के बीच आते हैं, तो उन्हें अपने और अपने अमीर सहपाठियों के बीच अपने कपड़ों, उनके जीवन के तरीकों, उनके भोजन और जेब भत्ते आदि के बारे में भिन्न भिन्नताएँ मिल सकती हैं। जटिल अगर वे कठिन वास्तविकताओं के साथ उचित समायोजन नहीं कर सकते। कभी–कभी शिक्षक उस स्थिति को बढ़ा देते हैं जब वे काफी आंशिक होते हैं और गरीब बच्चों के साथ अमीर लोगों के साथ बराबरी का व्यवहार नहीं करते हैं। भारी वित्तीय माँगें भी गरीब बच्चों को भावनात्मक रूप से परेशान कर सकती हैं। स्कूल गरीब छात्रों के लिए उतना ही जिम्मेदार है जितना कि अमीर लोग। गरीब छात्रों के संसाधनों का व्यक्तिगत रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए और उनकी शिक्षा के संबंध में उनकी मौद्रिक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास किया जाना चाहिए। सभी शैक्षणिक संस्थानों में सरल जीवन एक मार्गदर्शक सिद्धांत होना चाहिए।

3. शिक्षण के गतिशील तरीके :

शिक्षण के दोषपूर्ण तरीके बच्चों में प्रेरणा का विकास नहीं करते हैं। वे सबक को शराबी बनाते हैं। बच्चों को शिक्षा की बहुत प्रक्रिया से नफरत होने लगती है। उनके मन में हमेशा तनाव बना रहता है। सीखना उनके लिए कोई खुशी की गतिविधि नहीं है।

4. स्कूलों में बच्चों के प्रति प्रेम की भूमिका :

अधिकांश पारंपरिक स्कूलों में शिक्षण डर पर आधारित है। बच्चे जानते हैं कि अगर वे पढ़ाई में सफल नहीं होते हैं तो उन्हें कैन्ड किया जाएगा। उन्हें भारी घर का काम मिलता है जो अक्सर मदद और मार्गदर्शन के बिना पूरा करना असंभव है जो हमेशा घर पर उपलब्ध नहीं होता है। वे रात में of कैन के सपने' के साथ सोते हैं। वे डर और निरंतर चिंता के साथ सुबह उठते हैं। ऐसी परिस्थितियों में भावनात्मक शांति शायद ही संभव हो।

स्कूलों में स्वस्थ शारीरिक स्थिति :-

स्कूल में खराब शारीरिक स्थिति बच्चों में थकान और ऊब लाती है। वे बहुत जल्द स्कूल और इसकी गतिविधियों से तंग आ चुके हैं। भावनात्मक गड़बड़ी के लिए रचनात्मक गतिविधियों का अभाव भी जिम्मेदार है। स्कूल अधिकारियों को इस संबंध में भी सावधान रहना चाहिए। जब भी, बच्चों में सामान्य भावनात्मक व्यवहार प्रतिरूप में थोड़ा विचलन देखा जाता है, तो इसके कारणों और सुधारात्मक उपायों को खोजने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस संबंध में शिक्षकों की ओर से बहुत धैर्य की आवश्यकता है।

बच्चे के भावनात्मक विकास में स्कूल और शिक्षक की भूमिका :-

स्कूल से बच्चों को एक शुद्ध, रचनात्मक और रचनात्मक वातावरण प्रदान करने की उम्मीद की जाती है और शिक्षक इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। एक शिक्षक को केवल भावनात्मक नियंत्रण के महत्व का प्रचार नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा भावना अल नियंत्रण भी सिखाना चाहिए। शिक्षक को बच्चों की भावनाओं की अभिव्यक्ति के प्रति धैर्य और सहानुभूति रखनी चाहिए। उसे कठोर नहीं होना चाहिए, अन्यथा दमन और अवरोध उत्पन्न होगा और परिणामस्वरूप संघर्ष पैदा होगा जिससे बच्चों में विक्षिप्त और मानसिक विकार हो सकते हैं। उन्हें अपनी स्वस्थ अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त अवसरों और स्थितियों को प्रस्तुत करके बच्चों की भावनाओं को समझना चाहिए। पाठ्यक्रम गतिविधियों के शिक्षण और संगठन के वैज्ञानिक तरीके बच्चे के भावनात्मक विकास को सही दिशा में बढ़ावा देंगे। नैतिकता, मानकों और समाज के आदर्शों आदि के बारे में अनुचित निर्भरता बच्चों में लंबे समय तक भावनात्मक गड़बड़ी की ओर ले जाती है, खासकर जब वे अपने से बेहतर खुद को स्थानांतरित करते हुए पाते हैं। 'उदाहरण उत्तम से उत्तम है' एक प्रसिद्ध कहावत है।

निष्कर्ष :-

इस अध्ययन से पता चलता है कि भावनात्मक बुद्धिमत्ता का वरिष्ठ माध्यमिक छात्रों पर तनाव, समायोजन और शैक्षणिक उपलब्धि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। किशोरावस्था तनाव की अवस्था है। अतः यह अध्ययन इन विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी होगा। जैसा कि इस अध्ययन में पाया गया कि जिन छात्रों में उच्च भावनात्मक बुद्धि होती है, उनके जीवन में तनाव कम होता है, वे तनाव मुक्त जीवन जीते हैं, उनका

समायोजन बेहतर होता है और उनकी शैक्षणिक उपलब्धि अच्छी होती है। शोधकर्ताओं ने पाया कि जीवन में सफलता प्राप्त करने में आई क्यू की केवल 20 प्रतिशत भूमिका होती है और अन्य 80 प्रतिशत भूमिका भावनात्मक बुद्धिमत्ता द्वारा निभाई जाती है। इसका अर्थ है कि भावनात्मक बुद्धिमत्ता सफलता का एक अच्छा भविष्यवक्ता भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. Rehman, R.R; Khalid, A. and Khan, M. (2012) Impact of employee decision making on organizational.
2. Performance : The moderating role of emotional intelligence, World Applied Sciences Journal, 17 (10): 1308-1315.
3. Hafiz, -Saima. (2015). Adjustment of the college students among urban and rural area in Jammu district : Indian Journal of Health & Wellbeing. 2015, Vol. 6 Issue 3, p 331-333. 3 p.
4. Bhagat. Pooja. (2016). Comparative Study of Emotional Adjustment of secondary school students in relation to their gender, Academic Achievement and parent child Relationship. International Journal of Recent Scientific Research, 7(7), 12459-12463.
5. Sandhu, R. (2017). A study of impact of emotional intelligence (EQ) on adjustment of senior secondary students. International Journal of Education and Management, 7(1), 46-50. Retrieved from https://search.proquest.com/openview/043da641af9764cea1ee3f3095ad333a/1\pq&origsite/gscholar&cbl/2032132 on 2 April 2018.
6. अन्नराजा, पी0 एवं जोस, एस0 (2005) इमोशनल इंटेलिजेन्स ऑफ बी0 एड0–ट्रेनीज. रिसर्च एण्ड रिफ्लेक्शन्स इन एजूकेशन, 2, पृ. (8–16)
7. एस. के. मंगल (2011), शिक्षा मनोविज्ञान, पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड न्यू दिल्ली, पृ. (109–134 और 574–578)
8. भार्गव विवेक एवं बाबू अनिल, (2017), अधिगम एवं शिक्षण, राखी प्रकाशन प्रा. लि. आगरा, पृ. (206–222).
9. सिंह, दिनेश, (2019), स्नातक स्तर के छात्र छात्राओं की चिंता, समायोजन क्षमता एवं मानसिक स्वास्थ्य का शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), नेहरू ग्राम भारती प्रयागराज।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 75-77

रमणिका गुप्ता के कथा-साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन संघर्ष

श्वेता कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राधा गोविंद विश्वविद्यालय।

आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी' इन दो शब्दों से बना है जिसका अर्थ है प्रारंभ से निवास करने वाले। अतः आदिवासी शब्द के अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी देश के मूल निवासी हैं।

आदिवासी शब्द की परिभाषा अनेक विद्वानों ने दी है। विभिन्न मत-मतांतर होते हुए भी कहा जाता है कि, आर्य आक्रमण के कारण आदिवासी पराभूत हुए। वे अपनी रक्षा हेतु जंगल में रहने लगे। स्वाभाविक है कि इनमें पिछड़ापन आ गया। इस पिछड़ेपन से उन्हें : आदिवासी' कहना अनुचित है। अतः देश के मूल निवासी के रूप में आदिवासी कहना अत्यंत सार्थक एवं उचित है।[1]

'आदिवासी' शब्द की व्याख्या करने का प्रयास अनेकविद्वानों द्वारा हुआ है। मानक हिंदी कोश में आदिवासी शब्द का आर्य, 'किसी स्थान पर रहने वाले वहां के मूल निवासी को दिया गया है। भारतीय संस्कृति कोश में लिखा है कि ''नागर संस्कृति से दूर रहने वाले मूल निवासी एवं आर्थ और द्रविड़ इन दो मानव समाज को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत या अन्य विदेश से भारत के पर्वत पहाड़ियों, जंगल में रहने वाली वन्य जाति को आदिवासी कहा जाता है।''मराठी विश्वकोश में लिखा है कि ''नगर संस्कृति से दूर तथा अलिप्त हुए लोग संबंधित प्रान्त के मूल निवासी ही आदिवासी हैं।''[2] वस्तुतः आदिवासी भारतीय समाज की नींव और उसका निर्माता है। आदिवासी समाज की संस्कृति प्राचीन रही है। जंगल, जल और जमीन इनकी अपनी संपत्ति होती है। यह समाज स्वाभिमानी, निर्मोही, अज्ञानी, अंधश्रद्धालु और प्रगति से आज भी दूर है। आदिवासी जनजाति का जंगल, पर्वत, पहाड़ों, घारियों कापरस्पर संबंध रहा है। आदिवासी समाज की सामूहिकता प्रधान प्रवृत्ति होती है। उनके उत्सव, देवी-देवता, उनके पूजा, मृतात्मा, भूत- पिशाच को संतुष्ट कराने हेतु उत्सव-पर्व का आयोजन यह समाज करता रहा है। संकट से मुक्ति पाने के लिए, देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि की प्रथा इनमें रही है। लोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य, आदिवासी मन का दस्तावेज रहा है। गुदना प्रथा सौन्दर्य वृद्धि और धार्मिकता का प्रमाण रहा है। रूढि प्रथा, परंपरा का निर्वहन करने वाला एक मात्र समाज आदिवासी है। यह समाज झोपड़ी में, कम-से-कम कपड़े पहनने वाला, शोषित, जंगल की संपदा पर निर्भर, अप्रगत व्यवसाय करने वाला रहा है। सही अर्थ में जंगल का राजा आदिवासीहै।

आदिवासी कहानी में आदिवासियों के उस भाव-संसार को बुना गया है जिसे बौद्धिक व साहित्यिक

जगत में 'ट्राइबल ड्योज' के रूप में जाना जाता है। इसी क्रम में रमणिका गुप्ता का नाम भी लिया जाता रहा है। उनके द्वारा रचित कहानियों का विषय मूलतः बिहार, झारखंड तथा उसके आस–पास के क्षेत्र जिसमें हजारीबाग, धनबाद, राँची, चायबासा एवं बिलासपुर आदि क्षेत्रों की मजदूरनियों का यातनामय सर्वहारा वर्ग (सर्व से हारकर जीवन जीने वाला आदिवासी जीवन की कहानी है। इन कहानियों में लेखिका पारस्परिक, सामाजिक,सांस्कृतिक, समीकरणों से लैस यातनामय जीवन को चरितार्थ करती है। इन कहानियों में परंपरा से स्थापित वर्णाश्रम धर्म की कठोरता एवं वर्ग–व्यवस्था के तहत सामंती सोच एवं जमींदारी जुल्म के कारण पशु–स्वरूप बनाए गए सर्वहारा वर्ग का सजीव चित्र उपस्थित दिया गया है। रमणिका गुप्ता द्वारा लिखित कहानी –संग्रह 'बहू जुठाई' इसका जीवंत उदाहरण है। इसमें– कहानियाँ – 'चिड़िया', 'चमेली', 'बहू जुठाई', 'चन्दा मर नहीं सकती', 'परबतिया', 'जिरवा और जिरवा माय', 'प्यारी', 'खुश रही', 'जिन्दा रहने के लिए, ललिता, 'वह जिएगी अभी 'आदि संग्रहित हैं। इन कहानियों में एक और पुरुष की मानसिकता या चित्र उपस्थित किया गया है। किंतु ये कहानियों पुरुष के विरोध में नहीं, व्यवस्था के विरोध में खड़ी दिखाई देती हैं।[3]

'चन्दा मर नहीं सकती' में चन्दा के माध्यम से लेखिका शिष्ट समुदाय के द्वारा छीने गए अपने अधिकारों से विच्छिन्न स्त्री का चरित्र उठाती है। चन्दा अपने अधिकारों के छीन जाने तथा उस पर हो रहे जुल्म से पश्चाताप करती दिखाई देती है, चन्दा की चुप्पी पूछ रही थी अपने–आप से, ''इतने बरस मैने क्यों सहा वह जुलम? क्यों गंवाए जिंदगी के वे सुनहले बरस, वे बाँदी से क्षण, वे अनमोल घड़ियों, जो मैं माणिक के साथ बिता सकती थी, क्यों इतनी देर लगी मुझे मुक्त होने का निर्णय लेने में, क्यों?"[4] इसी प्रकार, उनकी अन्य कहानियों में भी आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष का चित्रण कई रूपों में व्याख्यायित हुआ है। आम आदमी सिर्फ आम आदमी बनकर न रह जाए इसका पूरा ख्याल रमणिका जी रखती हैं। उनके पात्रों की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे शोषित अवश्य हैं किंतु नियतिवाद नहीं हैं। वे अपने शोषण का विरोध स्पश्ट रूप से करते हैं और शोषित समाज के लिए प्रेरणास्रोत बनते हैं ताकि वे भी अपने शोषण का विरोध करें, अपने अधिकारों को जाने–समझे और मुख्य धारा के लोगों की तरह सर उठाकर समाज में जिए।

रमणिका गुप्ता द्वारा रचित 'सीता' और 'मौसी' ऐसे उपन्यास हैं जिसमें दो अविवाहित आदिवासी स्त्रियों केशोषण और उनके संघर्ष की दास्तान कही गयी है। यह उपन्यास उस समय लिखे गए जब विकास के नाम पर आदिवासी संस्कृति, सभ्यता, उनकी पहचान तार–तार हो रही थी और अपनी संस्कृति और पहचान, भाषा को बचाने के लिए आदिवासी संघर्ष कर रहे थे।

'सीता–मौसी उपन्यास की मुख्य पात्र दो आदिवासी महिलाएं हैं जिनके माध्यम से समाज में बदलती स्त्री की दशा को समझा जा सकता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों के विस्थापन की भी समस्या को दर्शाया गया है। 'सीता' ऐसी महिला है जिसका पूरे जीवन शोषण होता रहा। 'सुमित्रा' अपनी चार बेटियों– 'सीता', 'प्यारी, 'रनिया, 'सरस्वतिया' के साथ रांची के 'खूंटी' गाँव से राजा की सदान 'बेदला (कोयला खदान) में काम करने आई है जिसका मुख्य कारण गरीबी है। दूसरे इनकी धारणा भी कि खेती के समय खेती करेंगे किंतु खाली समय में क्या करेंगे? जीवन–यापन कैसे होगा – ''खेती का क्या भरोसा? वर्षा नहीं हुई, तो भूसे मरने की नौबत आ जाएगी। सदान में तो नगद टटका 'पैसा मिलेगा, 'औरों' जमीन कीन सकते हो गाँव में। अभी वक्त है चलो, नहीं तो दिकू लोग काम हथिया लेगा... खट के भाड़ा भी उतर जैईते।''[5] महिलाओं के लिए कई समस्याएँ होती हैं जो

यहाँ भी थीं। ठेकेदारों, मैनेजरों और कारिन्दों द्वारा उनका यौन शोषण भी होता है। सीता भी इसका शिकार होती है। शराबी पति छोड़कर चला जाता है वह मुंशी यासीन मियाँ पर विश्वास कर शादी कर लेती है। जबकि यासीन सिर्फ सीता के शरीर से प्रेम करता था, वह अपनी ही बेटी को अपना नाम तक देने को तैयार नहीं – ''अपनी बेटी के बाप के नाम में तुम अपने ही बाप का नाम लिखवा देना, मेरे नाम के बदले।''[6]

सीता अपनी जंग शुरू करती है कोयला खदानों से।

धर्म व जाति को वह अपने आदिवासी समाज के नजरिए से देखती है। आर्थिक स्तर पर मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। 'मौसी' उपन्यास में आदिवासी समाज पर पड़ते बाहरी प्रभावों और उसके चलते स्त्रियों की हीन होती दशा का चित्रण है। आज आदिवासी स्त्रियाँ खरीदी–बेची जा रही है जिस पर न तो अभिजात्य आदिवासी चिंतित हैं और न ही सरकार। दोनों उपन्यास, आदिवासी समाज के दो पहलू हैं। मूलतः रमणिका गुप्ता ने अपने साहित्य में आदिवासी जीवन संघर्ष के कई रूपों यथा–स्त्री–पुरुष का संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, धार्मिक संघर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष आदी, को उजागर किया है।

संदर्भ :-

1. रघुवंशी, डॉ. महेन्द्र, हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – 2021, पृ० 14
2. वहीं, पृ० 14–15
3. अमीन, डॉ० सन्नाप्रसाद (सं०), आदिवासी कहानी साहित्य और विमर्श, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, संस्करण – 2020, पृ० 183
4. गुप्ता, रमणिका, बहू जुठाई, शिल्पयान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण–2010, पृ० 44
5. नेगी, स्नेह लता, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, संस्करण – 2021, पृ० 162
6. गुप्ता, रमणिका, सीता–मौसी, ज्योतिलोक प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण – 2010, पृ० 37

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 78-88

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा और समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन की आदतों के प्रभाव का अध्ययन

रचना, शोधार्थी
डॉ. रेनु कंसल, शोध निर्देशिका
शिक्षा विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश :-

भारतीय संस्कृति की प्राचीन विशेषता यह थी कि मनुष्य प्रकृति को ही अपना पुजारी मानता था मनुष्य पूर्ण रूप से प्रकृति पर ही निर्भर था। परंतु आज विज्ञान और कंप्यूटर की क्रांति के कारण मनुष्य की सोचने और समझने, कार्य करने की शैली बिल्कुल बदल चुकी है। जिसके फलस्वरुप मनुष्य की शैक्षणिक आकांक्षाओं में काफी बदलाव आया है, विद्यार्थियों के सामने प्राचीन समय की तुलना में आज के समय अधिक जटिल समस्याएं शिक्षा क्षेत्र और व्यवसाय क्षेत्र में आ रही है। व्यवसाय और कैरियर के चुनाव के लिए विद्यार्थी आज के समय अधिाक प्रयास कर रहे है। विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों ने किस प्रकार से इन सभी प्रवृत्तियों में बदलाव लाया है इसकी समझ के लिए यह शोध कार्य संपन्न किया गया है जिसमें अध्ययन आदतों के साथ विभिन्न शैक्षिक घटकों की तुलना एक क्रमबद्ध और वर्णनात्मक विधि के माध्यम से की गई है। सांख्यिकी आंकड़ों के विश्लेषण के उपरांत यह परिणाम सामने आए कि विद्यार्थियों की शैक्षणिक आकांक्षा, शैक्षणिक समाधान की योग्यता और कैरियर चुनाव पर अध्ययन आंतों का कोई भी प्रभाव स्पष्ट रूप से सामने नहीं आया है।

कुंजी शब्द :- शैक्षणिक आंकाक्षा, समस्या हल करने की क्षमता, अध्ययन की आदत और माध्यमिक विद्यालय।

प्रस्तावना :-

शिक्षा सांस्कृतिक, धार्मिक तथा अध्यात्मिक उन्नयन के लिए भी अनिवार्य हैं। शिक्षा समाज की संस्कृति को जीवित रखती है, संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण करती है, संस्कृति का परिमार्जन करती है, धर्म में व्यापत अन्धविश्वास, आडम्बर तथा ढकोसलों को प्रकाश में लाकर धर्म को कल्याणकारी बनाती है। आध्यात्मिक उन्नति तथा मानसिक शान्ति के लिए भी शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा मानव जीवन को सुखमय बनाती है, इससे भौतिक सुख–सुविधाएं भी प्राप्त होती है। आज मानव ने प्रकृति पर जो विजय प्राप्त की है, वह भी शिक्षा का ही परिणाम है। वैज्ञानिक उन्नति तथा सुख–सुविधा के लिए विज्ञान द्वारा प्रदत्त उपकरण शिक्षा की ही देन है। माध्यमिक विद्यालय या माध्यमिक शिक्षा से हमारा अभिप्राय प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच

की कड़ी से है जिसमें बालक की शैक्षणिक और व्यावसायिक शिक्षा की नींव रखी जाती है। इसलिए इस स्तर पर शिक्षा के सभी पहलुओं का अध्ययन जरूरी हो जाता है इसके साथ–साथ बालक की व्यक्तिगत विशेषताओं में उसकी रुचि, अभिरुचि, व्यक्तित्व, स्वास्थ्य, शैक्षणिक आकांक्षा अध्ययन आदत, समस्या समाधान करने की क्षमता का संपूर्ण ज्ञान शिक्षा क्षेत्र में एक अध्यापक को होना आवश्यक है ताकि बालक को अध्यापक से सफल भविष्य के लिए शिक्षा और व्यवसाय को चुनने में मदद मिल सके। आज के युग में शिक्षा की व्यवस्था बालक की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इसलिए इस शोध के अंतर्गत कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों का अध्ययन किया जाएगा जो बालक से सीधे शैक्षणिक और व्यावसायिक आयामों सें जुड़े हों।

शैक्षणिक आकांक्षा :–

एक मनुष्य अपने जीवन में कुछ ना कुछ उद्देश्य या अभिलाषा लिए हुए होता है। मनुष्यों के द्वारा अपने जीवन में जो उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं वह पूरे होंगे या नहीं यह उस मनुष्य के द्वारा किए गए प्रयासों पर निर्भर करते हैं। आकांक्षा में उपलब्धि प्राप्त करने की इच्छा होती है। इससे यह पता चलता है कि मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में कहां तक सफल हो पाया है। उसने अपने लक्ष्यों को कहां तक प्राप्त कर लिया है। इससे केवल यह स्पष्ट होता है कि उसका क्या लक्ष्य है वह क्या चाहता है और क्या प्राप्त करना है। शैक्षणिक आकांक्षा में उपलब्धि की इच्छा निहित होती है। शैक्षणिक आकांक्षा केवल इस बात का बखान करती है कि विद्यार्थी क्या प्राप्त करना चाहता है उसका लक्ष्य क्या है। यह नहीं बताती कि विद्यार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में कितना सफल हुआ या सफल नहीं हुआ या कितना सफल होगा। शैक्षणिक आकांक्षा तो केवल लक्ष्य को बताती है कि विद्यार्थी का लक्ष्य क्या है और वह क्या प्राप्त करना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा होती है और प्रत्येक देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था के अनुरूप ही शिक्षा व्यवस्था होती है। हमारे देश में धर्म जाति वर्ग एवं स्थान के भेदभाव के बिना ही शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा शिक्षा में समान अवसरों की समानता है। हर व्यक्ति के अंदर कोई ना कोई अभिलाषा, इच्छा या लालसा अवश्य होती है। जिसे वह प्राप्त करना चाहता है। यह आकांक्षा या अभिलाषा उच्च या निम्न स्तर किसी भी स्तर की हो सकती है। इसी के आधार पर व्यक्ति का वर्गीकरण दो श्रेणियों में किया जा सकता है निराशावादी व यथार्थवादी किसी व्यक्ति में कुछ बन दिखाने की या कुछ कर गुजरने की चाह विद्यमान अभिलाषा ही आकांक्षा कहलाती है।

समस्या समाधान :–

वैयक्तिगत विभिन्नता बालकों में पाई जाने वाली विशेषताओं कि एक सार्वभौमिक सत्यता है। प्रत्येक बालक किसी न किसी दृष्टि से दूसरे बालक से भिन्न होता है। इसकी जांच विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के द्वारा समय–समय पर अनुसंधान के माध्यम से की गई है। वंशानुक्रम और वातावरण पर हुए अनुसंधान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि संसार में कोई भी बालक ऐसे नहीं जो दूसरे बालकों से बिल्कुल समानता रखता हो। इसी प्रकार समस्याओं का समाधान करने की भी सभी बालकों की अलग–अलग क्षमता होती हैं और यह क्षमता हर बालक की अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं के अनुसार अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग हो सकती हैं। कोई बालक सामाजिक समस्याओं को तुरंत सुलझा देता है तो कोई देर से उन्हें सुलझा पाता है। उसी अनुरूप कोई बालक

यांत्रिक समस्याओं को सुलझाने में निपुण होता है। इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में बालक की समस्या समाधान की योग्यता को मापना बालक के विकास के लिए महत्वपूर्ण हो गया है।

अध्ययन आदत :-

व्यक्ति या बालक जब दूसरों के अनुभवों को निरीक्षण चिंतन व मनन के द्वारा ग्रहण करता है तथा उसका भरपूर लाभ उठाता है तो यह प्रक्रिया अध्ययन कहलाती है।

किसी भी समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए नवीन विषय सामग्री संबंधित ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न विषयों क्रियाओं और परिस्थितियों के संबंध में जानने के लिए उद्देश्य पूर्ण क्रिया का ज्ञान प्राप्त करने के लिए छात्रों के द्वारा जो प्रयास किए जाते हैं वे अध्ययन कहलाते हैं। अध्ययन को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने अनुसार परिभाषित किया है।

ली के अनुसार, किसी बात को सीखने के लिए व्यक्ति द्वारा विशेष रूप से किया जाने वाला उपयोग अध्ययन है।'

मार्गन वडीज के अनुसार, 'अध्ययन सीखने का एक संपूर्ण प्रयास है। आदत एक सीखा हुआ कार्य या अर्जित व्यवहार है जो स्वत होता है।'

आदत :-

जो कार्य हमें पहले जटिल ज्ञात होता है और बाद में उस कार्य को जब हम सीख लेते हैं तो यह सीखा हुआ कार्य बाद में सरल हो जाता है। इस प्रकार जब हम उस कार्य को जितनी बार दोहराते हैं वह उतना ही सरल हो जाता है कुछ समय के बाद हम उस पर कार्य को बिना दोहराए बिना ध्यान दिए, बिना प्रयास किए, ज्यों का त्यो करने लगते हैं। इस प्रकार किए गए कार्य को हम आदत कहते हैं।

मरसेल के अनुसार, 'आदत व्यवहार करने की और परिस्थितियों व समस्याओं का सामना करने की निश्चित विधियां हैं।'

समस्या कथन :-

''माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा और समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन की आदतों के प्रभाव का अध्ययन।''

उदेश्य :-

1 माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक आकांक्षाओं पर अध्ययन आदतों के प्रभाव का अध्ययन

2 माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों का प्रभाव का अध्ययन।

परिकल्पना :-

1 माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक आकांक्षाओं पर अध्ययन आदतों के प्रभाव में कोई अन्तर नही है।

2 माध्यमिक विद्यालयों के छात्र व छात्राओं की समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों के प्रभाव में कोई अन्तर नहीं है।

अध्ययन की परिसीमा :–

1. शोध में सिर्फ माध्यमिक विद्यालय को ही लिया गया है।
2. शोध में सिर्फ 600 विद्यार्थियों का चुनाव किया गया है जो जनसंख्या से छोटा है।
3. शोध सिर्फ भिवानी जिले तक ही सीमित है।
4. शोध के लिए सरकारी और निजी विद्यालयों का ही चुनाव किया गया है जबकि सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों को नहीं लिया गया।

संबंधित साहित्य का अध्ययन :–

साहित्य की समीक्षा :

साहित्य समीक्षा में दो शब्द हैं साहित्य और समीक्षा। साहित्य शब्द परंपरागत अर्थ प्रदान करता है। यह भाषा के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। जैसे हिंदी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य, संस्कृत साहित्य आदि। साहित्य की विषय वस्तु के अंतर्गत गद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानियां आती है। अनुसंधान के क्षेत्र में साहित्य शब्द किसी विषय के अनुसंधान के विषय क्षेत्र के ज्ञान की ओर संकेत करता है। जिसके अंतर्गत सैद्धांतिक, व्यवहारिक और तथाआत्मक शोध आते हैं। समीक्षा शब्द का अर्थ शोध के विषय क्षेत्र के ज्ञान की व्यवस्था करना एवं ज्ञान को विस्तृत करके दिखाना है कि उसके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र में एक योगदान होगा। साहित्य की समीक्षा का कार्य अत्यंत सर्जनात्मक एवं थकाने वाला है क्योंकि शोधकर्ता को अपने अध्ययन को युक्ति पूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को अपने ढंग से एकत्र करना होता है।

शैक्षणिक आकांक्षा :–

1 कौर 2012 में अमृतसर जिले के सरकारी व निजी विद्यालयों के संदर्भ में बुद्धि के स्तर, लिंग और स्कूल के प्रकार के संबंध में छात्रों के जीवन में शैक्षणिक आकांक्षाओं के उद्देश्यों पर शोध किया शोधकर्ता ने अमृतसर जिले के 200 छात्रों पर शोध किया जिसमें से 100 छात्र सरकारी विद्यालयों से व 100 छात्र निजी विद्यालयों से लिए गए शोधकत्री ने अपने शोधार्थी वर्णनात्मक सर्वेक्षण डिजाइन का अनुसरण किया एवं परिणाम या निष्कर्ष हेतु मीन, एस डी, टी वैल्यू जैसी विधियों का उपयोग किया। निष्कर्ष में पाया गया कि स्कूल के प्रकार और लिंग के संबंध में शैक्षणिक आकांक्षा में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है जबकि शैक्षणिक आकांक्षाओं और छात्रों की बुद्धि के स्तर के बीच महत्वपूर्ण अंतर है इससे यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न स्तरों का छात्रों की शैक्षणिक आकांक्षा पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है।

2. सिंह और शर्मा 2017 द्वारा जम्मू और कश्मीर के माध्यमिक विद्यालय के 9वीं कक्षा में पढ़ने वाले छात्रों को नमूने के तौर पर लिया गया। इनके अध्ययन का उद्देश्य शैक्षिक उपलब्धि के साथ शैक्षिक आकांक्षा के संबंध को ज्ञात करना था। अन्वेषक में वर्तमान अध्ययन के लिए सबसे उपयुक्त माने जाने वाली शोध की वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया। उन्होंने नमूनों को यादृच्छिक रूप से लिया और अध्ययन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शर्मा एवं गुप्ता 2011 द्वारा तैयार और मानकीकृत शैक्षिक आकांक्षा स्केल का प्रयोग किया छात्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर किया गया था। पियर्सन सहसंबंध गुणांक का उपयोग छात्रों के बीच शैक्षणिक उपलब्धि और शैक्षिक आकांक्षा के बीच संबंध को खोजने के लिए किया गया था।

निष्कर्षो से पता चला कि शैक्षिक आकांक्षा और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है

अन्य कारक भी है जैसे वातावरण जिसमें छात्र रहता है और प्रेरणा जो वह दूसरों से प्राप्त करता है जो छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को भी प्रभावित करती है।

अध्ययन की आदत :-

1 **नंदिता और तनीमा (2004)** ने शैक्षणिक उपलब्धि और अध्ययन की आदतों के विभिन्न आयामों के बीच संबंध का पता लगाने के उद्देश्यों के साथ शैक्षणिक उपलब्धि के संबंध में अध्ययन की आदतों व अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण पर शोध किया उन्होंने अध्ययन की आदतों एवं अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण के बीच संबंध जाने का भी प्रयास किया उन्होंने अपने शोध में पाया कि अध्ययन आदतों के 9 आयामों में से 5 आयामों में शैक्षणिक उपलब्धि के साथ सकारात्मक और अत्यंत महत्वपूर्ण संबंध है तथा बाकी 4 आयामों में यह संकेत दिया कि शैक्षिक उपलब्धि के साथ कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं था। आगे यह पाया गया कि अध्ययन की आदतों एवं पढ़ाई के प्रति दृष्टिकोण के मध्य संबंध का गुणांक 0.208 था। इसने इंगित किया कि अध्ययन की आदतों और अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण के बीच एक सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध था। यह पाया गया कि उनकी अध्ययन की आदतें एक निश्चित सीमा तक उनकी शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करती हैं।

2. **पौडे और महाजन 2017** ने नेपाल के काकी सियांग क्षेत्र और पर्वतीय जिलों के बाद सार्वजनिक और निजी दोनों विद्यालयों से 511 छात्रों के एक समूह को अपने अध्ययन हेतु चुना। उनके अध्ययन के उद्देश्य माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के आकांक्षा स्तर और उनकी उपलब्धि के बीच संबंध का पता लगाना था उन्होंने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दसवीं कक्षा के छात्रों के लिए संरचित सर्वेक्षण प्रश्नावली का संचालन किया। छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर अध्ययन की आदतों के प्रभाव की जांच करने के लिए एक प्रतिगमन विश्लेषण किया गया। निष्कर्षो से यह पता चलता है कि कम आकांक्षा वाले छात्रों की तुलना में उपलब्धि का उच्च स्तर है जो आगे यह दर्शाता है कि छात्रों की आकांक्षा और उपलब्धि के पीछे एक महत्वपूर्ण संबंध है।

समस्या हल की योग्यता :-

1. **भट्ट (2014)** ने समस्या हल की योग्यता पर सीखने की शैलियों के प्रभाव का क्रमबद्ध रूप में अध्ययन किया परिणाम की शुद्धता के लिए बड़ा प्रतिदर्श के रूप में निम्न व उच्च विद्यालयों के 598 विद्यार्थियों का चयन किया। अध्ययन की विधि के लिए वर्णनात्मक विधि का चुनाव किया गया परिणाम से स्पष्ट हुआ कि छात्रों की समस्या हल की क्षमता सीखने की शैली से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ जिन विद्यार्थियों के पास सीखने की शैलियों की ग्रहण दक्षता थी वे अन्य विद्यार्थी से श्रेष्ठ थे।

2. **हुड्डा और देवी (2018)** माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के बीच गणित की उपलब्धि पर समस्या हल क्षमता के परिणाम की जांच एक प्रतिदृश के आधार पर की जिसमें 400 छात्राओं को शामिल किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण के लिए मीन एसडी और थ्री वे इनोवा संख्या की तकनीक का उपयोग किया गया। निष्कर्ष से पता चला कि गणित की उपलब्धि समस्या समाधान क्षमता एवं लिंग के प्रभाव से प्रभावित थी। इसके अतिरिक्त माध यमिक विद्यालयों में पढ़ रहे छात्रों की गणित की उपलब्धि में लिंग एवं समस्या क्षमता के अंतः क्रियात्मक प्रभाव को प्रभावित किया गया है।

प्रारूप और शोध विधि :-

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों शैक्षणिक आकांक्षा, समस्या हल की क्षमता पर अध्ययन आदत का प्रभाव

के लिए वैज्ञानिक विधि और शोध के लिए आंकड़े इकट्ठे करने हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जाएगा। इस वर्तमान शोध में अध्ययन आदत के प्रभाव की जांच के लिए सर्वे विधि का प्रयोग किया जाएगा।

जनसख्या :–

इस वर्तमान शोध में शैक्षणिक आकांक्षा, समस्या हल की क्षमता और अध्ययन आदत की समझ को जांचने के लिए सर्वे विधि का प्रयोग किया जाए हरियाणा के सभी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की समझ के लिए सभी विद्यालय के विद्यार्थियों का सर्वे कार्य बहुत अधिक जटिल हो जाएगा। इसलिए न्यादर्श के लिए जनसंख्या में से सिर्फ 600 छात्रों को चुना जाएगा।

न्यादर्श :–

न्यादर्श के चुनाव के लिए भिवानी जिले के सिर्फ 6 माध्यमिक विद्यालयों से 600 विद्यार्थियों का चुनाव यादृच्छिक विधि के माध्यम से किया जाएगा।

उपकरण :–

शैक्षणिक आकांक्षा स्तर स्केल (पी.वी. शर्मा और ए. गुप्ता)

हिंदी और अंग्रेजी दोनों माध्यम में उपलब्ध इस मापनी में कुल 45 मद है। इस मापने का सर्वप्रथम प्रयोग 1050 बच्चों पर किया गया। कक्षा 10 के विद्यार्थियों पर किए गए प्रयोग से इस स्केल को मानकीकृत किया गया।

अध्ययन आदत :–

अध्ययन आदत और अभिवृति उपकरण सी.पी.जी. माथुर के द्वारा बनाया गया है।

कक्षा 10 वीं से 12 वीं / आयु 13 से 16 वर्ष

समस्या समाधान क्षमता टेस्ट (एल एन दुबे)

हिंदी अंग्रेजी दोनों माध्यम में उपलब्ध है। इस परीक्षण में 20 मद है जो आयु वर्ग 11 से 25 तक के विद्यार्थियों पर उपलब्ध है। इस परीक्षण को 1640 विद्यार्थियों पर मानकीकृत किया गया सांख्यिकी विधियों का प्रयोग।

शोध कार्य का स्वरूप :–

किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पहले एक सुव्यवस्थित योजना बनाना बहुत जरूरी है। योजना बनाना किसी भी कार्य का प्रथम अध्याय है योजना को किसी भी कार्य का प्रथम अध्याय इसलिए कहा जाता है क्योंकि किसी भी कार्य की सफलता योजना निर्माण और योजना के क्रियान्वयन पर आधारित है। शोध कार्यों के गुणात्मक विकास के लिए यह सोपान सबसे महत्वपूर्ण है। समस्या के चयन के पश्चात का कार्य, योजना पर ही आधारित होता हैं। एक शोधकर्ता अपने अनुसंधान को प्रारंभ करने से पूर्व उसके सभी अपक्षों से सम्बन्ध में पहले ही निर्णय लेकर नियोजन करता है। शोध प्रारूप के अंतर्गत क्रमबद्ध रूप से प्रत्येक सोपान के संबंध में विवरण दिया जाता है जिसे शोध प्रक्रिया कहते हैं। शोध प्रारूप में अनुसंधान के प्रमुख पक्षों के आधार पर ढांचा विकसित किया जाता है जिसके तार्किक क्रम को महत्व दिया जाता है। शोध के उद्देश्यों तथा परिकल्पनाओं के आधार पर शोध का प्रारूप तैयार किया जाता है। शोध प्रारूप के अधोलिखित अवयव को शामिल किया जाता है। अनुसंधान विधि इस अध्ययन में शोध के लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है।

वर्तमान शोध कार्य के लिए शोधकर्ता ने बहुस्तरीय प्रतिदर्श विधि का प्रयोग किया है। जिसमें चयनात्मक

इकाइयों के वर्ग निम्नलिखित है।

सारणी–1

क्रम संख्या	विद्यालय का नाम	छात्र	छात्रा	कुल छात्र
1	राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय भिवानी	100	0	100
2	राजकीय कन्या माध्यमिक विद्यालय भिवानी	0	100	100
3	राजकीय उच्च विद्यालय उमरावत भिवानी	50	50	100
4	राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय कोट भिवानी	100	50	150
5	राजकीय उच्च विद्यालय वडाला भिवानी	0	50	50
6	वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय कायला भिवानी	50	50	100
कुल		300	300	600

सांख्यिकी :–

शोध सांख्यिकी परिच्छेद के इस भाग में सांख्यिकी संबंधी शोध कार्य की जानकारी दी गई है। प्रस्तुत शोध एक वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य है जिसमें व्याख्या तथा विवेचन के लिए सांख्यिकी संबंधी प्रविधियों का उपयोग करना महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। सांख्यिकी एक वैज्ञानिक विधि है जिसका संबंध सर्वेक्षण एवं प्रयोगों के आधार पर प्राप्त आंकड़ों के संकलन, वर्गीकरण, विवेचन तथा विवरण से है। शैक्षिक अनुसंधान में सांख्यिकी का मुख्य उद्देश्य एक न्यादर्श से बड़ी जनसंख्या के विषय में सामान्यीकरण का ज्ञान करना है। प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त की गई सांख्यिकी निम्न प्रकार से है। शोध के लिए आकड़ो का माध्य, मानक विचलन और टी–मान परीक्षण आदि सांख्यिकी संबंधी प्रविधियों का उपयोग किया गया। आकड़ो को सरल बनाने के लिए सारणी और आरेखों का प्रयोग इस शोध में हुआ हैं।

परिकल्पनाओं की जांच :–

HO1

माध्यमिक विद्यालय के छात्रों व छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षाओं पर अध्ययन आदतों के प्रभाव में कोई अंतर नहीं है।

माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्र व छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षाओं की तुलना करने के लिए, डॉ वी0 पी0 शर्मा और डॉक्टर अनुराधा गुप्ता दोबारा रचित शैक्षणिक आकांक्षा मापनी का प्रयोग करके आंकड़े प्राप्त किए गए जिनका सांख्यिकी विश्लेषण सांख्यिकी आकड़ों का प्रयोग करने के उपरांत टी टेस्ट के माध्यम से दोनों समूह के मध्य संबंध को जांचने के लिए सार्थकता स्तर 0.05 और 0.01 पर तुलना की गयी।

सारणी–2

क्र संख्या	शैक्षणिक आंकाक्षा	लिंग	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–टेस्ट	सार्थकता स्तर 0.05	सार्थकता स्तर 0.01	डी एफ
	उच्च				5.8				
1	शैक्षणिक	पुरूष	40	25.7	4				
	आंकाक्षा				5.9				
2		महिला	48	25.4	4	0.25	1.99	2.37	86
3	मध्य शैक्षणिक	पुरूष	96	24.5	7.1				
	आंकाक्षा		11		7.5				
4		महिला	1	24.8	6	0.66	1.97	2.66	205
	निम्न				6.0				
5	शैक्षणिक	पुरूष	64	22.2	8				
6	आंकाक्षा	महिला	41	20.2	5.9	1.45	1.98	2.63	103

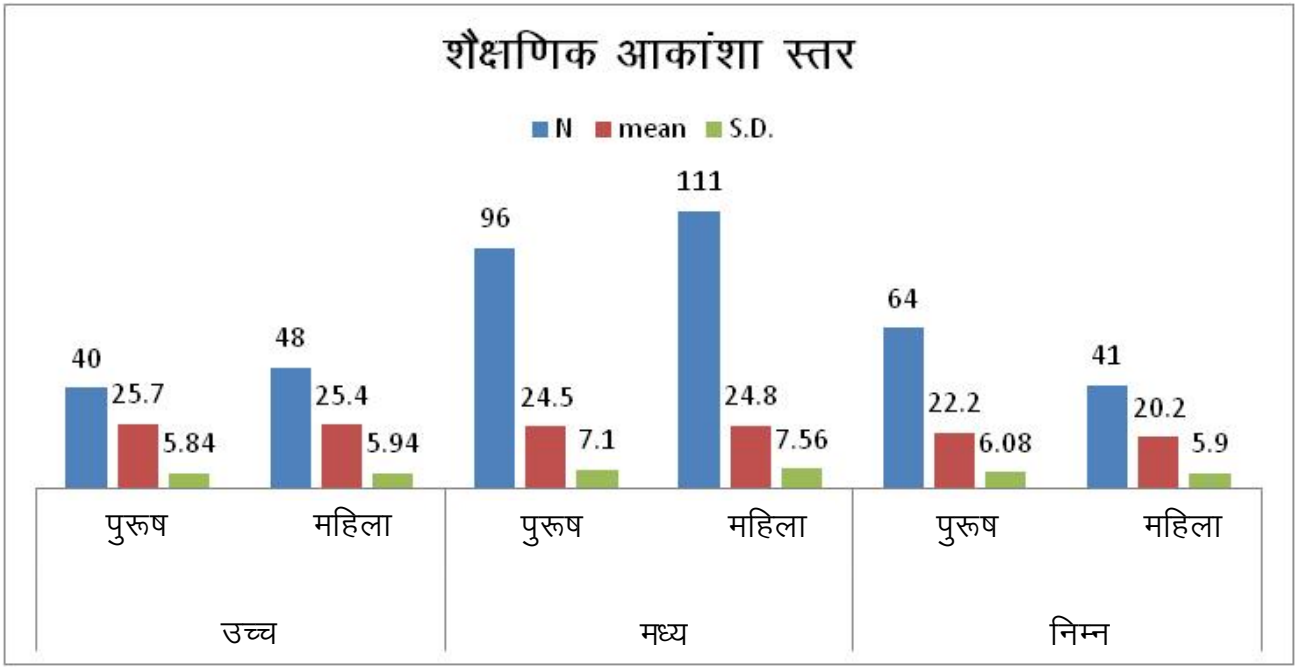

परिकल्पना 1, सारणी 2 एवं रेखाचित्र संख्या से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्यनरत छात्र (छात्र– 300) छात्राए (छात्राएं–300) की शैक्षणिक आकांक्षाओं से प्राप्त माध्य और मानक विचलन क्रमशः तीन स्तरों पर अलग–अलग है। माध्य के मान में आए अंतर की सार्थकता की जांच टी.मान के सार्थकता स्तर 0.05 और 0.01 पर ज्ञात की गई है जो टी मान कमशः 0.25, 0.66 और 1.45 है तो टी मांन की तालिका में दर्शाऐ गए मान से कम है। अतः शैक्षिक आकांक्षा के तीन स्तरों पर छात्र और छात्राओं के मध्य आऐ अंतर में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः इस परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है।

HO2

माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों व छात्राओं की समस्या हल करने की क्षमता पर अध्ययन आदतों के प्रभाव में कोई अंतर नहीं है।

सारणी–3 माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों व छात्राओं की समस्या हल करने की क्षमता के आकड़े

क्रम संख्या	लिंग	छात्रों की संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी–टेस्ट	सार्थकता स्तर 0.05	सार्थकता स्तर 0.01	स्वतन्त्रता अंश
1	पुरूष	300	14.27	5.45				
2	महिला	300	12.84	3.16	0.20448507	1.96	2.59	598

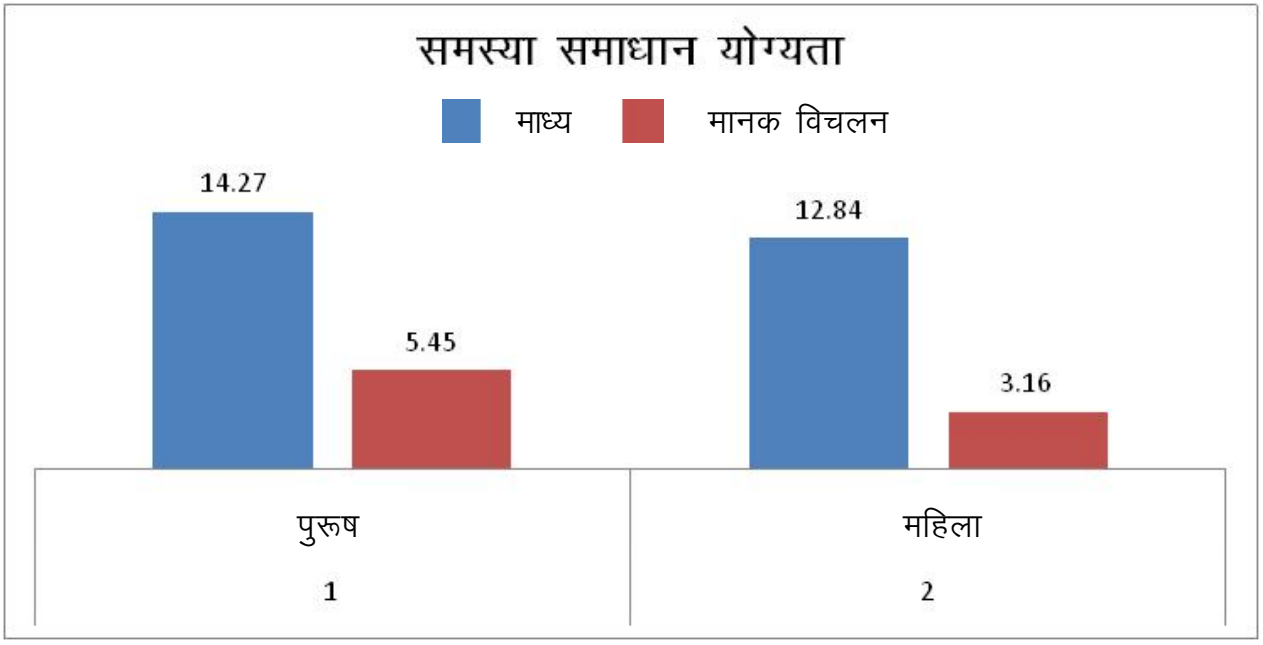

परिकल्पना 2 की सारणी 3 और रेखा चित्र के अवलोकन से ज्ञात हुआ है कि माध्यमिक विद्यालयों के छात्र और छात्राओं की समस्या समाधान योग्यता की आंकड़ों के माध्य मानक विचलन के मान क्रमशः 14.27 व 5.45 और 12.84 व 3.16 में स्पष्ट अंतर है। यह अंतर वास्तविक है या नहीं इसकी जांच हेतु टी–मान की तुलना सार्थकता स्तर 0.05 और 0.01 पर की गई है। समस्या हल करने की योग्यता के आधार पर दोनों समूह के वर्गों में समीक्षा के साथ तुलना की गई है। टी टेस्ट मान 0.204 सार्थकता स्तर 0.01 और 0.05 पर स्थित मांन से कम है। अतः परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है और कहा जा सकता है कि दोनों समूह में कोई अंतर नही है।

परिणाम :-

हरियाणा राज्य के भिवानी जिले में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत सभी छात्र और छात्राओं की शैक्षणिक आकांक्षा, समस्या समाधान करने की क्षमता, पर अध्ययन आदतों के प्रभाव का अध्ययन से पता चला है कि इस स्तर पर अध्ययन आदतों का प्रभाव लगभग सभी शैक्षणिक कार्यों पर छात्राओं का छात्रों की तुलना में अच्छा है

और समस्या समाधान करने की क्षमता पर भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। फिर भी औसत आकड़े छात्रों की समस्या समाधान योग्यता, छात्राओं से अच्छी दीखा रहे है। जबकि शैक्षिक आकांक्षा में छात्र और छात्राओं में थोड़ा सा प्रभाव यहां पर दिखाई दिया है। शहरी छात्राऐं, शहरी छात्रों से और ग्रामीण छात्र–छात्राओं से शैक्षिक आकांक्षा में अधिक रूचि लेते है।

शैक्षिक निहितार्थ और भावी शोध के लिए सुझाव :-

प्रत्येक शोध अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान प्रदान करता है इसके साथ–साथ में नए शोध के लिए भी अनेक प्रकार की समस्याएं प्रदान करता है। इस शोध के माध्यम से मनोविज्ञान के अनेक संप्रत्ययों के बारे में ज्ञान हुआ है। जिसके बारे में शोध कार्य अच्छे से किया जा सकता है। यह शोध केवल माध्यमिक स्तर तक सीमित था जबकि उच्च माध्यमिक और प्राइमरी और मध्यम कक्षाओं के लिए भी शोध कार्य इस क्षेत्र में किया जा सकता है।

शोध के लिए सुझाव :-

1. इस शोध कार्य से केवल माध्यमिक विद्यालय के ही छात्र और छात्राओं का अध्ययन हो पाया है इसके अलावा प्राइमरी स्कूल और उच्च माध्यमिक स्कूल भी है यहां पर यह शोध कार्य किया जा सकता है।
2. इस तरह का शोध सभी स्तरों पर आसानी से किया जा सकता है।
3. किस तरह के शोध से सरकारी स्कूलों के साथ–साथ निजी और अर्द्धसरकारी विद्यालयों में भी अध्ययन किया जा सकता है।
4. इस शोध से पाठ्यक्रम निर्माण और सुधार में मदद ले सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कुमार, अशोक, 2017, स्वामी विवेकानन्द व स्वामी दयानन्द जी के शैक्षिक विचारों का वर्तमान परिदृश्य में सार्थकता का अध्ययन। एम.एड., शोध प्रबन्ध।
2. अग्रवालु, सुबोध, 1989, भारतीय शिक्षा की समस्याऐं एवम् प्रवृतिया, हिन्द पाकेट बुक्स, शाहदरा।
3. महता, डी.डी.पर्यावरण अध्ययन, लक्ष्मी बुक डिपो, भिवानी।
4. ओबराय डॉ. एस. सी.,1999, शिक्षण अधिगम के मूल तत्व, नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो।
5. कपूर, डॉ0 उर्मिला, भारतीय शिक्षा की सामयिक समस्याएं।
6. गौड, अनिता, 2005, बच्चों की प्रतिभा कैसे निखारे, नई दिल्ली राज पाकेट बुक्स।
7. उपाध्याय, डॉ0 राधावल्लभ पर्यावरण शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
8. शर्मा आर.ए., शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।
9. सिंह सुरेन्द्र, माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर मानसिक दबाब, मानसिक स्वास्थ्य एवम् आकांक्षा के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन। शोध प्रबन्ध पी.एच.डी. 2018
10. गैरेट, हेनरी. ई. शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
11. राव, पापा 2013, उच्च्तर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियो के जनकर्म का उनके संवेगात्मक बुद्धि एवम् समस्या समाधान योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन। शोध प्रबन्ध पीएच. डी. पण्डित रविशंकर शुक्ला युनिवर्सिटी।

12. पाठक पी. डी., 2011, शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
13. कपिल, एच.के. अनुसंधान विधियाँ, एच.पी. मार्गव बुक हाऊस, आगरा।
14. वोहरा, वंदना, रिसर्च मैथ्डोलॉजी, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
15. कपिल, डॉ. एच.के., सांख्यिकी के मूल तत्व, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–7
16. सिंह, डॉ0 रामपाल, शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–7
17. सरीन एवं सरीन, शैक्षिक अनसुंधान विधियाँ, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–7
18. लाल एवं जोशी, शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।
19. बिर्क जसवन्त, शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान, ट्वेन्टी फस्ट सेन्चुरी पब्लिकेशन्स, पटियाला।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 89-9

कुसुम खेमानी की कहानियों में नारी संवेदना

उमा यादव, शोधार्थी,
करसन रावत, शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग, भाषा साहित्य भवन, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद।

शोध-संक्षेप :-

प्रस्तुत शोध पत्र 'कुसुम खेमानी की कहानियों में नारी संवेदना'के अंतर्गत विभिन्न बिंदुओं परंपराओं में जकड़ी नारी, नारी आदर्श और यथार्थ के कशमकश में उलझी नारी, परंपरावादी और आधुनिक मूल्यों में संघर्षरत नारी, नवीन युग की नारी के विविध रूप, आधुनिक युग की समस्याओं से जूझती नारी पर प्रकाश डाला गया है। कुसुम खेमानी की कहानियों में सामाजिक, नैतिक मूल्य के अंतर्गत पारिवारिक विघटन, स्त्री पुरुष संबंध, रूढिघ्यों एवं परम्पराएं मध्यमवर्गीय सामाजिक जीवन और दाम्पत्य जीवन के चित्रण का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

कहानी में मुख्य रूप से संवेदना की अभिव्यक्ति मूल परिवेश, वस्तु तथा मुख्य पात्र के माध्यम से होती है। लेकिन उपन्यास अथवा लंबी कहानी मे संवेदना की अभिव्यक्ति मूल वस्तु, मूल परिवेश एवं मुख्य पात्र के अलावा सहायक वस्तु एवं सहयोगी पात्रो आदि के माध्यम से भी की जाती है।

कुसुम खेमानी की कहानियों के नारी पात्र अपने अधिकारों के प्रति सजग है।

कुसुम खेमानी की प्रिय कहानियाँ – 'कुसुम खेमानी की प्रिय कहानियाँ' नारी–संवेदना की वे कहानियाँ हैं जो बड़े सामाजिक परिदृश्य में एक गम्भीर विचार को जन्म देती हैं। भारतीय स्त्री के कई पक्ष इनकी कथाओं में उभर कर सामने आते हैं और इनकी कहानियों में नारी–संवेदना की प्रकृति भी एकदम भिन्न है। वे अपने स्त्री–चरित्रों का ऐसा उदात्तीकरण करती हैं कि वे इस धरती की होते हुए भी अपने अनोखे व्यक्तित्व के कारण किसी दूसरे ही संसार की लगती हैं। इनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें आधुनिक समाज, समय और स्त्री हर पल खुद को एक संयमित और मजबूत आधार देते हैं। इनकी कहानियों में बरती गयी शैली हर समय और काल के अनुसार हमेशा प्रगतिशील और उदारवादी रही है। कुसुम खेमानी की कृतियों की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनका अनुवाद बांग्ला, उर्दू, मराठी जैसी भारतीय भाषाओं के अलावा जापानी, अंग्रेजी और पोलिश जैसी विदेशी भाषाओं में भी हुआ है।

कुसुम खेमानी के नारी–संवेदना की प्रकृति एकदम भिन्न है। वे अपनी स्त्री–चरित्रों का ऐसा उदात्तीकरण करती हैं कि वे इस धरती की होते हुए भी अपने अनोखे व्यक्तित्व के कारण किसी और ही लोक की लगती हैं।

कुसुम खेमानी की कहानियों में मुख्य पात्र के रूप में नारी ही है, जो कभी समाज की विषमताओं से

टकराती है और कभी अपने अस्तित्व को ढूँढती हुई पुरुष प्रधान समाज से संघर्ष करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। कुसुम खेमानी की कहानियों के नारी पात्र आत्मविश्वास से भरपूर है।

'परिवार की सुख समृद्धि पति–पत्नी के समायोजन पर आश्रित है। जिस परिवार में दोनों मानसिक एवं भौतिक रूप से स्वस्थ रहते हुए तनाव, घुटन एवं संत्रास से मुक्त जीवन जीते हैं वह परिवार खिले फूलों के समान आकर्षक एवं प्रभावी होता है। क्योंकि परिवार का निर्माण मूलतः दम्पत्ति द्वारा होता है, जो विवाह व्यवस्था द्वारा परिवार एवं दाम्पत्य का श्रीगणेश करते हैं। यह ठीक भी है क्योंकि स्त्री–पुरुष से दम्पत्ति, दम्पत्ति से परिवार, परिवार में संतान वृद्धि और परिवार समूह से समाज के निर्माण की प्रक्रिया चलती है।'[1]

कहानी 'एक जर्रा आकाश छूता' में जब पता चलता है कि भरत की दोनों किडनियाँ खराब हो चुकी है और इसे बचाने का एकमात्र उपाय, इसकी तुरंत डायलिसिस शुरू करवाकर नई किडनी का प्रत्यारोपण करवाना है यह सब सुनकर भी उससे शादी करने वाली लड़की अपनी शादी का फैसला नहीं बदलती और यह तय किया जाता है कि शादी निश्चित समय से जल्दी होगी। यथा –

क्या लड़की और उसके परिवार को भरत की शारीरिक स्थिति का ज्ञान है? क्या वह लड़की जानबूझकर सत्यवान की सावित्री की तरह भरत का वरण करना चाहती है? आदि शंकालु प्रश्नों का एक ही उत्तर मिला।

'हाँ'! गहराई में जाने पर पता चला कि भरत ने जब पूरी ईमानदारी से उन लोगों को सारी बातें विस्तार से बताई, तब उस लड़की ने न केवल भरत से ही विवाह करने की कसम खा ली वरन यह भी कहा – 'देखिए! जो हमारे नसीब में है, वही न होगा। हम तो कहते है कि 'ये' एकदम भले चंगे है, आप लोग जरा भी फिकर न करें, 'ये' एकदम ठीक रहेंगे, और हमारा विश्वास है कि इनकी उम्र भी बहुत बड़ी होगी। उसके दृढ़ भरोसे और आस्था की बातें सुनकर मै भौचक थी। न मुझसे कुछ कहते बन रहा था, न सुनते, लेकिन प्रभु की माया देखिए अन्त में हम आस्थाहीन बुद्धिजीवी सिर पटकते रह गए और वे परम विश्वासी लोग जीवन–युद्ध में जीत गए।'[2]

कहानी 'रागातीत राग' की नायिका प्रियवन्दा एक सशक्त कृति है जो हमें मृत्यु से जूझते हुए जीवन को पूर्णता से जीने का हौसला देती है। ''इसकी नायिका मौत से आँखें नहीं चुराती, बल्कि उसकी आँखों में आँखें डालकर उसे चुनौती देती है। वह मृत्यु भय को पूर्णतः नकार कर अपनी निर्भीक जिजीविषा से उसका वरण करती है। वह अपनी मृत्य का उत्सव मनाती हुई उसे परे आहाद से एक अनोखे अंदाज में स्वीकार करती है। उसके सम्पूर्ण आचार–व्यवहार में वैरागियों जैसी उदासीनता का नामोनिशान तक नहीं है, किन्तु वह तो अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को दुनिया के रसों में डुबोकर, चटखारे लेती हुई, सब सुखों का आनंद लेती मृत्यु की यात्रा निश्चित करती है। वह अपने हर पल को एक सारी जिंदगी की तरह जीती है।''[3]

जिस समय लेखिका प्रियवंदा से उनके पति से मिलने का आग्रह करती है। उसी वक्त प्रियवंदा जी लेखिका को अपने पति से मिलवाने अपने कमरे में लेकर जाती है तो वह देखती है कि उसके पति शय्या में पड़े है लेकिन प्रियवंदा जी किस तन्मयता के साथ उनकी सेवा कर रही है ५ यह देखकर वह स्वयं परेशान रह जाती है।

'मेरी ऐन भेद बताओ' कहानी में कुसुम जिस वक्त मेरी ऐन से उसके शराबी पति की तबीयत के बारे में पूछती है और मेरी ऐन उसे बताती है कि अब वे बीमार रहने लग गए हैं और अब वे उसे अपने पास ही रखेगी

तो कुसुम उसे आगाह करते हुए कहती है जब तुम्हारा पति ठीक था तो वह अकेले ऐश करता था और अब बीमारी में इसे यहाँ उठा लाई हो। तब मेरीऐन कहती हैं कि अब उन्हें वहाँ कोई सम्भालने वाला नहीं है। यथा – बातों–बातों में पता चला कि चूँकि 'दासगुप्ता जी' बीमार रहने लगे हैं इसलिए वे भी उसके यहाँ ही आ गए हैं।

मैंने कहा– ''जब तुम्हारा पति ठीक था, तब तो तुमसे विमुख होकर अकेला ऐश करता था। अब इस निकम्मे को यहाँ क्यों ढो लाई?''[4]

'इसलिए कि आजकल वहां इसे कोई नहीं सम्हालता।'

''मेरे मुँह के सिवा एक बड़े से क्या ऽऽऽ! के कुछ नहीं निकला। सोच रही हूँ दुनिया में कौन–से शब्द कौन–सा ऐसा कोश? जो इसे परिभाषित कर सकते हैं? मन किया उससे पुहूँ– 'मेरीऐन' तुम अपने आपको समझती क्या हो?.... अबाबील चिड़िया?.... जो सोते वक्त अपने दोनों पैर इसलिए ऊपर उठाए रखती है कि पृथ्वी पर ढहते आकाश को थाम लेगी?''[5]

कहानी 'उड़ान पिंजरे के परिन्दे की' की पात्रा मिसेज बाजोरिया का जब एम०ए० का परिणाम आता है तो वह सब से विनती करती है कि यह बात उसके पति को न बताई जाए क्योंकि उसके पति को 'पद लोभ' से घृणा थी और अपने पति का प्यार और खुशी पाने के लिए वह अपनी खुशियों का गला घोंटती नजर आती है। यथा–

'सुधा का तीस वर्षों से ज्वाइंट सेक्रेटरी के पद पर मात्र इसलिए बने रहना कि उसके पति को 'पद–लोभ' से घृणा थी और एम० ए० के रिजल्ट वाले दिन औरों की खुशी पर सुधा की कल्पनातीत प्रतिक्रिया मेरी आँखों के आगे अड़कर खड़ी रहती थी, 'मुझे अच्छी तरह याद है कि महिला परिषद की प्रमुख मिसेज शीरीन चोकसी का उसे पुकारते हुए वहाँ आकर कहना 'शुड्डा बेन! यूनिवर्सिटी थी हमणा खबर आवी छे के, एम०ए० मा तमारा फर्स्ट क्लास आव्या है। अने आपणे स्कॉलरशिप पण मलेशे' पर सुधा का उदासीनता से सिर झुकाए बैठे रहना और फिर हाथ जोड़कर यह निवेदन करना कि : कृपा कर आप इस खबर को भी मेरे पति से उसी तरह गुप्त रखें जैसे आज तक मेरी सारी सफलताओं की सूचनाओं को रखती आई है। क्योंकि आप लोगों को तो पता ही है कि मेरे पति किसी भी डिग्री और पद को उपलब्धि नहीं, अभिशाप मानते हैं। आशा है आप सब मेरी स्थिति समझ कर हमेशा की तरह मेरा साथ देंगी।'[6]

पति–पत्नी के आपसी मधुर रिश्तों से ही दाम्पत्य रूपी गाड़ी जीवन की पटरी पर अच्छी तरह चल सकती है। कुसुम खेमानी के नारी पात्र इतने कर्मठ, विवेकशील, मर्यादित एवं संस्कारी है कि उनके दाम्पत्य संबंध अत्यन्त मधुर बन पड़े है।

हिन्दी साहित्य जगत् में भी महिला लेखन ने नारी के अस्तित्व की सार्थकता उसके मातृत्व में स्वीकार की है। मातृत्व वह भावना है जो स्त्री को पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति आस्थावान बनाती है।– 'माँ बनकर औरत एक साथ तीनों लोक जी लेती है, बच्चा हो गोद में तो समझो तीनों लोक एक मिश्री के कूजे में।'[7]

कुसुम खेमानी ने अपने कथा साहित्य में नारी के 'माँ' रूप का वर्णन भी बड़ी मार्मिकता से किया है। 'एक माँ धरती सी' कहानी में बताया गया है कि बेटे के अपमान पर भी वह निराश नहीं होती है। कुसुम खेमानी का कहानी साहित्य बहुत विस्तृत है। उनके नारी पात्र न सिर्फ अपने घर–आँगन को बच्चों की किलकारियों से

गुलजार करती है किन्तु यह नारी दूसरों की झोली में मातृत्व सुख डालने से पीछे नहीं हटती है। इस तरह यहाँ नारी संवेदना का अद्‌भुत उदाहरण प्राप्त होता है।

कहानी विविध पक्षों, जीवन्त विचारों की अभिव्यक्ति का सबसे सुलभ साधन है। हिन्दी कहानी में नारी की सामाजिक स्थिति, उसके बदलते हुए जीवन मूल्यों की तलाश न केवल यथार्थवादी दृष्टि से मिलती है बल्कि भोगी हुई अनुभूति भी संलग्न है। नारी जीवन की विसंगतियों, विद्रुपताओं, विषमताओं और टूटते बदलते मूल्यों का चित्रण नग्न रूप में किया जाता है। मूल्य समाज को सुव्यवस्थित एवं सुशासित करते हैं। आज आर्थिक दबाव के कारण नौकरी नारी की मजबूरी हो गई है। इसका उसे बड़ा मूल्य भी चुकाना पड़ रहा है। पति–पत्नी के सम्बन्धों में आ रही कटुता के मूल में भी अर्थ का जीवन मूल्य बना है।

आज की नारी ज्यादा महत्वाकांक्षी है और वह घर की, बच्चों की तथा पति की जिम्मेदारियाँ सम्भालने के साथ–साथ अपने कार्यक्षेत्र के कर्तव्यों को भी बखूबी निभा रही है।

नारी का सामान्यतः अर्थ दया, प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति से लिया जाता है। नारी त्याग का प्रतीक है। कहते है यदि नारी संतुष्ट है तो वह घर को स्वर्ग से भी सुन्दर बना देती है। कुसुम खेमानी ने भी अपने नारी पात्रों का ऐसा प्रेममय रूप चित्रीत किया है जिसके सामने बड़ी से बड़ी समस्या नष्ट हो जाए। वर्तमान समय की नारी घर की चार दीवारी तक ही सीमित नहीं है लेकिन अब वह अपनी पहचान राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बना रही है।

इस तरह कुसुम खेमानी की अन्य कहानियों में 'रागातीत राग', 'एक मां धरती सी', 'रश्मिरथी मां', 'बंद पिंजरे खोलती रतन बाईसा', 'उड़ान पिंजरे परिंदे', 'सच का आईना', 'घोंघा प्रसाद' इत्यादि कहानियों में नारी संवेदना का वर्णन अधिक मिलता है।

इस तरह इस शोधालेख में मैंने कुसुम खेमानी की कहानियों में नारी संवेदना को अंकित करने का प्रयास किया है। कुसुम खेमानी जी ने अपनी रचनाओं में नारी के कई पहलुओं को छुआ है। उन्होंने एक अलग दृष्टिकोण से एक स्त्री के व्यक्तित्व को उभारा है।

निष्कर्ष :– कुसुम खेमानी की कहानियों में नारी संवेदना के विविध पक्ष देखने को मिलते हैं। आधुनिक युग की नारी में बदलाव व परिवर्तन, जागरूकता, आत्मविश्वास आदि के गुण देखने को मिलते हैं। आज की नारी पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली नारी उच्चस्तर पर पहुँच चुकी है। लेकिन समाज में होने वाली परिस्थितियों को सहते हुए उसका सामना करते हुए संघर्षरत दिखाई पड़ती है।

संदर्भ सूची :–

1. हिन्दी उपन्यास में दाम्पत्य चित्रण –उर्मिला भटनागर, पृ. 13
2. एक जरा आकाश छूता, कुसुम खेमानी (अनुगूंज जिन्दगी की कहानी संग्रह) पृ. 80
3. रागातीत राग, कुसुम खेमानी, पृ. 100
4. मेरी ऐन मेद बताओ, कुसुम खेमानी, पृ. 94 (सच कहती कहानियाँ कहानी संग्रह)
5. वही, पृ. 95
6. उड़ान पिंजरे के परिंदे की, कुसुम खेमानी, पृ.123 (एक अचंभा प्रेम, कहानी संग्रह)
7. ए लड़की कृष्णा सोबती, सं. 1999, पृ. 12

पता : कृष्णधाम आवास वि. 2, वेजलपुर, अहमदाबाद–380051
ई–मेल : umay8790@gmail.com, मोबाईल नं. 7623960160

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 93-97

मानव जीवन में शब्दों की महत्ता

डॉ. सुशील चन्द्र बहुगुणा
सहायक प्रोफेसर, बी. एड. विभाग, रा. स्ना. महा. कोटद्वार, गढ़वाल, उत्तराखंड।

प्रस्तावना :-

एक या एक से अधिक वर्णों के मेल से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक इकाई 'शब्द' कहलाती है। भारतीय संस्कृति में शब्द को ब्रह्मा कहा गया है। हमें अपनी बात कहने के लिये शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। शब्दों के उपयोग के बिना हम अपने मन के भाव को प्रकट नहीं कर सकते हैं। शब्द बड़ी ताकतवर चीज हैं। ये हमारे बोले गये शब्द ही हैं जिनका प्रयोग कर हम सकारात्मक एवं नकारात्मक माहौल तैयार कर सकते है। हर शब्द हर बोल कीमती है, हर शब्द के मायने होते है उसकी कीमत होती है इसीलिए तोल– मोल के बोलने की बात कही गयी है।

भाषा की दृष्टि से शब्द का बड़ा महत्व है। शब्द संपदा है और संपदा को सहेजकर तथा समेटकर ही खर्च कराना चाहिए। (अर्थात बहुत संभलकर) प्राचीन युग से लेकर आज तक जो कुछ ग्रहण किया है। वह ज्ञान शब्दों के रूप में ही आज तक विश्व के सामने अंकित तथा सुरक्षित है। भावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन शब्द ही है। शब्दों का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व होता है। कुछ शब्दों को बोलने पर लोग ताली बजाते है तो दूसरी तरफ कुछ शब्दों को बोलने पर लोग आपति जताते है। शब्दों में बहुत शक्ति होती है शब्द किसी की मदद कर सकते है, शब्द किसी बात को ठीक कर सकते है, शब्द किसी को दुखी कर सकते हैं। अतः इस शक्ति का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। सही अभिव्यक्ति के लिए सही शब्द का चयन आवश्यक है। सही शब्दों के चयन के लिए शब्दों के संकलन आवश्यक है। व्याकरण का दूसरा नाम शब्दानुशासन भी है। वह अनुशासन करता है, बतलाता है, कि किसी शब्द का किस तरह प्रयोग करना चाहिए।

शब्द :-

शब्द तो सब कहते है परन्तु उसका विचार करो। शब्द–शब्द में बड़ा अंतर है। एक शब्द तो लोंगो के मन को शीतल कर देता है और एक शब्द जला कर भस्म कर देता है। शब्द बोलने के लिए हमारे पास शब्दकोष होता है। यह बहुत शक्तिशाली उपकरण है जो हमें उच्चारण एवं उसके उपयोग करने में मदद कर्ता है, यह हमारा कौशल भी बदता है। हमारी वाणी मधुर और विनय युक्त होनी चाहिये। वाणी, आचरण व व्यवहार से कष्ट न देना भी ईश्वर की स्तुति है। मनुष्य और पृथ्वी पर बसने वाले अन्य प्राणियों में एक स्पष्ट भेद है– मनुष्य बहुत प्रकार के स्वर मुख से निकलने में सक्षम है, और इस क्षमता के आधार पर वह बहुत क्लिष्ट भाषा बोलता है।

स्वरों की तरह शब्द भी हमें आपस में जोड़ते हैं और सुंदर स्वर योजना की तरह हमारे गहरे मनोभावों

और विचारों को आंदोलित कर सकने की शक्ति रखते हैं। जैसे–जैसे जीवन बदलता है। शब्दों और भाषा के साथ भी हमारे संबंध भी बदलते हैं। शब्दों के साथ संबंधों पर हमारी जीवनशैली से भी अंतर पड़ता है। शब्दों में शक्ति होती है। शब्द संभालकर बोलो। यद्यपि शब्द के हाथ पैर नहीं होते, परन्तु एक शब्द औषध करने वाला अमृतकर होता है और एक शब्द घाव बनाने वाला कष्टकर होता है। शब्द क्रोध भड़का भी सकते है और जोश जगा भी सकते है। वे लोगो को तोड़ भी सकते है और एक साथ ला भी सकते है। शब्दों में एक रचनात्मक उर्जा होती है। जब हम खुद को तुच्छ समझने वाले शब्दों का इस्तेमाल करते है, उस समय हम खुद अपने आनंद को सकुचित कर देते है।

लेख की आवश्यकता :-

हमारे शब्दों से संस्कार गायब हो रहे हैं। आरोप के शब्दों की भी एक गरिमा होती है, और प्रशंसा के शब्दों के भी एक संस्कार होते हैं। कुछ लोग, शब्दों की गरिमा को समझते है, और कुछ, गरिमा को केवल शब्द।

मंत्र, श्लोक, लोक, स्तुतियां, प्रार्थनाएं, शुभकामनाएं। हमें यह पता होना चाहिए कि इन्हें रोज कहने का नियम क्यों बनाया गया है। क्योंकि ये सकारात्मक शब्द हैं, जिनकी ऊर्जा जीवन को सुखकारी बनाती है। शब्दों की शुद्धता और स्पर्शता को आध्यात्मिक अनुशासन में पहला कदम माना जाता है। यह आपको अंदर से शुद्ध करने, अपने उच्च उद्देश्य को प्राप्त करने और पूर्णता का जीवन जीने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभ्यास माना जाता है। शब्दों की शक्ति के माध्यम से आप अपनी वाणी और अपनी ऊर्जा को शुद्ध कर सकते हैं। बड़े विद्वान कह गए कि कुछ बोलने से पहले सौ बार सोचें। एक बार जो शब्द आपने बोल दिया, वह आपके पास नहीं, सुनने वाले के पास चला गया। आप के शब्द आपके व्यक्तित्व की पहचान कराते हैं। जब हम किसी से कुछ वादा करते हैं, तो उसमें भी शब्दों की गरिमा होती है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिंदू शास्त्रों पर शब्दों चयन पर बहुत जोर दिया गया है। शब्द कहे, दिखे, बोले और उगले जातें हैं, अर्थात शब्दों के उच्चारण मात्र में ही इन विशेषणों का प्रयोग होता है। ये शब्द ही हैं जो संबंधों को जोड़ते और समाप्त भी कर देते हैं। शब्द कहीं प्रवचन कहे जाते हैं, तो कहीं भाषण, क्योंकि प्रवचन में कहे गए शब्द जीव कल्याण और जनहित का भाव रखते हैं तो भाषण में स्वार्थ पूर्ति होती है। शब्द कभी–कभी बिना उच्चारण के भी बहुत गंभीर संकेत दे जाते हैं। जैसे– हंसने में केवल हा–हा, लेकिन वहां भी अट्टाहास या व्यंग्यात्मक शैली में परिभाषित होते हैं यानी हंसी अपने आप में ही कहीं अहंकार, तो कहीं विनम्रता प्रदर्शित करती है। पहले गुरुकुल में गुरु शब्दों के अर्थ और उनका प्रयोग कहां, कैसे और कब करना है, बताते थे। और माता पिता संतान को व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कराते थे। संसार में व्यवहार स्थापित करना भी एक कला है, और यह कला भी शब्दों के उचित समय और स्थान पर उचित चयन पर निर्भर है। बात सही हो और लेकिन शब्दों का चयन अनुचित हो तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। संवाद या विवाद में शब्द ही तो प्रयोग होते हैं। लेकिन ये ही शब्द संवाद और विवाद में परिभाषित हो जाते है। इसलिए हमेशा याद रखना चाहिए कि अभिव्यक्ति प्रदर्शित करते समय व्यक्ति को शब्दों के चयन का ध्यान रखना चाहिए। अपने विचारों पर नजर रखें, वे आपके शब्द बन जाते हैं। अपने शब्दों पर नजर रखें, वे आपके कार्य बन जाते हैं। अपने कार्यों पर नजर रखें, आपकी आदतें बन जाती हैं। अपनी आदतों पर नजर रखें, वे आपके चरित्र बन जाते हैं। अपने चरित्र पर नजर रखें, वे आपकी नियति बन जातें हैं। (गुमनाम)

अपने लक्ष्यों और सपनों के लिए हमेशा सकारात्मक शब्दों का उपयोग करें। यह हमारी ऊर्जा और आस–पास के वातावरण के कंपन को बढ़ाता है। दिल की पवित्रता का मतलब है कि आप जैसा अपने लिए चाहते हैं वैसे ही विचार अन्य सभी के लिए अपने दिल में रखना, दयालु और सहिष्णु होना और दूसरे के लिए शुभकामनाएं करना। पढ़ने से शब्दों को बल या ताकत मिलती है। पवित्र ग्रंथो को पढ़ना जीवन में दिशा और अर्थ खोजने के महान तरीके हैं। यह ग्रंथ मनुष्य को आत्म का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने, उसके जीवन के गहरे अर्थ को महसूस करने और चेतना के छिपे रहस्यों को प्रकट करने के इरादे से लिखे गए थे। इन पवित्र ग्रंथों को पढ़ने और पाठ करने से ज्ञान, शांति और आनंद मिलता है। हम में से कई आज अपने जीवन परिवर्तन का श्रेय किसी पुस्तक, विचार, यहां तक की एक शब्द को भी देते हैं। जिसने हमारे जीवन को बदल दिया, इसलिए अनुशासित रहें और कुछ समय लिए रोजाना पढ़ें। अच्छी किताबें हमारी आत्मा को विकसित करती हैं, हमारे विचारों और हमारी इंद्रियों को शुद्ध करते हैं।

मधुर वाणी बोलना एक महंगा शौक है, जो हर किसी की बस की बात नहीं। अपने खराब मूड के समय बुरे शब्द न बोलें, क्योंकि खराब मूड को बदलने के बहुत मौके मिलेंगे पर शब्दों को बदलने के मौके नहीं मिलेंगे, माना दुनिया बुरी है, सब जगह हम तो अच्छे बने, हमें किसने रोका है। व्यक्ति को बोलने की कला आनी चाहिए। दर्शन, विज्ञान और धर्म में 'शब्द' और वाणी पर बोले गये कथन –

– तुलसी मीठे बचन से सुख उपजत चहूँ ओर, वशीकरण यह मंत्र है ताजिये वचन कठोर। –तुलसीदास।
– वाणी और विचार ये दोनों प्रोडक्ट हमारी खुद की कम्पनी के है जितनी गुणवता अच्छी रखेंगे उतनी कीमत ज्यादा मिलेगी।
– यदि कोई बोलने की युक्ति जाने तो शब्द के बराबर धन नहीं है। हीरा तो रूपये में बिकता है, परन्तु उत्तम शब्दों का मोल तोल नहीं है।
– शब्द मॉडल हैं, शब्द उपकरण हैं, शब्द बोर्ड हैं, शब्द कील हैं। –रिचर्ड रोड्स
– नरम शब्दों से ही सख्त दिलों को जीता जा सकता है।
– जो भी बोलें सोच समझ कर बोलें।
– पहले तोलिये फिर बोलिए।
– शब्दों से हम विचार सीखते है, और विचारों से हम जीवन सीखते है। –जीन बैपटिस्ट गिरार्ड
– सदैव शुभ बोलना चाहिए। – महात्मा गांधी जी।
– अकलमंद सोचकर बोलता है और बेवकूफ बोलकर सोचता है। – प्लेटो।
– सबसे मीठा बोलना व सबका भला चाहना ईश्वरीय गुण होता है। – संत प्रवर प० मीठी लाल जी।
– हमें छोटे छोटे कामों के लिए बड़े–बड़े शब्दों के इस्तेमाल की आदत नहीं डालनी चाहिए।
– सैमुअल जॉनसन।
– एक बार मुंह से निकले बोल वापस नहीं जा सकते, इसलिए सोचकर बोलो।
– कभी–कभी चुप्पी सबसे तीखी आलोचना होती है।
– शब्दों का भी तापमान होता है– ये जला भी देते हैं, और सूखा भी देते हैं।
– बोली बता देती है इंसान कैसा है।

- शब्द–शब्द में ब्रह्म हो, शब्द–शब्द में सार शब्द सदा ऐसे कहो जिनसे उपजे प्यार।
- ज्ञान से शब्द समझ में आते हैं, अनुभव से अर्थ।
- कपड़े से छाना हुआ पानी स्वास्थ्य को ठीक तो रखता है, विवेक से छानी हुई वाणी संबंध को ठीक रखती है।
- मित्र, पुस्तक, रास्ता और विचार गलत हो तो गुमराह कर देते हैं और सही को तो जीवन बना देते हैं।
- लफज़ के भी जायके होते हैं, परोसने से पहले चख भी लेने चाहिए।
- मेहनत करें तो धन बने, सब्र करें तो काम, मीठा बोलें तो पहचान बने और इज्जत करें तो नाम।
- शब्दों का और सोच का ही अहम किरदार होता है दूरियां बढ़ाने में, कभी हम समझ नहीं पाते तो कभी समझा नहीं पाते।
- अच्छे मित्र, अच्छे रिश्तेदार, और अच्छे विचार जिनके पास होते हैं उसे दुनिया की कोई भी ताकत हरा नहीं सकती।
- शब्दों को कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता पर शब्द सभी को स्पर्श कर जाते हैं।
- शब्द मिलते तो मुफ्त में हैं लेकिन उनके चयन पर निर्भर करता है कि उनकी कीमत मिलेगी या उनकी कीमत चुकानी पड़ेगी।
- इंसान एक दुकान है और जुबान उसका ताला, ताला खुलता है तभी मालूम होता है कि दुकान सोने की है या कोयले की।
- शब्द भी क्या चीज है, महके तो लगाव और बहके तो घाव।
- शब्द तो दिल से निकलते हैं दिमाग से तो मतलब निकलते हैं।
- एक बेहतरीन इंसान अपनी जुबान से ही पहचाना जाता है, वरना अच्छी बातें तो दीवारों पर भी लिखी होती हैं।
- आमदनी पर्याप्त न हो तो खर्चों पर नियंत्रण रखिए, जानकारी पर्याप्त न हो तो शब्दों पर नियंत्रण रखिए।
- लफ्जों को बरतने का सलीका जरूरी है, गुफ्तगू में।
- गुलाब अगर कायदे से न पेश हो तो कांटे चुभ जाते हैं।
- अनुभव कहता है खामोशियां ही बेहतर हैं शब्दों से लोग रूठते बहुत हैं।
- व्यक्तिव्य की भी अपनी वाणी होती है जो कलम या जीभ के इस्तेमाल के बिना भी लोगों के अंतर्मन को छू जाती है।
- लिखी हुई बातों को पढ़ने वाला व्यक्ति नहीं समझ सकता क्योंकि लिखने वाला भावनाएं लिखता है और लोग केवल शब्द पढ़ते हैं।
- जो आपके शब्दों का मूल्य नहीं समझता, उसके सामने मौन रहना बेहतर है।
- शब्द चाहे कैसे भी हों मन खुश करे तो अर्थ है, वरना सब व्यर्थ है।
- वाणी, आचरण व व्यवहार से कष्ट ना देना भी ईश्वर की स्तुति है।
- जब तुम शब्द नहीं समझ पाए तो खामोशी क्या समझोगे।
- वाणी से ही विष झरे, वाणी से ही रसधार,

– मीठी वाणी बोलिए ये ही जीवन का सार।
– शब्द–शब्द बहु अंतरा, शब्द के हाथ न पांव, एक शब्द करे औषधि, एक शब्द करे घाव।
– शब्द संभाले बोलिए, शब्द खींचते ध्यान, शब्द मन घायल करें, शब्द बढ़ाते मान।
– शब्द मुंह से छूट गया, शब्द न वापस आया, शब्द जो हो प्यार भरा, शब्द ही मन में समाया।
– शीतल जल, चन्दन का रस अथवा ठंडी छाया की मनुष्य के लिए उतनी आनंदजनक नहीं होती जितनी मीठी वाणी।
– दो बोल प्यार के क्या कमाल दिखाते हैं, लगते हैं दिल पर और चेहरे खिल जाते हैं।
– विचार एक जल की तरह है आप उसमें गंदगी मिला दो, तो वह नाला बन जायेगा और उसमें सुगन्ध मिला दो तो वह गंगाजल बन जायेगा।
– शरीर सुंदर हो या ना हो पर शब्द को सुन्दर जरूर होना चाहिए, क्योंकि लोग चेहरे भूल जाते हैं पर शब्द को नहीं भूलते।
– शब्द और सोच दूरियां बढ़ा देते हैं, कभी हम समझ नहीं पाते और कभी समझा नहीं पाते।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि विभिन्न विद्वानों एवं महापुरुषों द्वारा शब्दों और वाणी पर दिए गए कथन / वक्तव्य के आधार पर कह सकते है, कि व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन एवम बोलचाल में अपने शब्दों और वाणी का उपयोग सहज, सुंदर, विनम्र, सरल, मिठास आदि से युक्त शब्दों का प्रयोग करें। हालांकि हर समय मीठा बोलना और विनम्र रहना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन जरूर है, लेकिन अगर हम अपनी दैनिक बोलचाल के शब्दों का चयन करके उनका अभ्यास करें तो निश्चित तौर पर हमें बोलने में और सुनने वाले को भी जरूर आनंद आएगा। हमारी वाणी और शब्द हमारे अभिलेख हैं, हमारी संपदा है, इसलिए महापुरुषों एवं विद्वानों ने शब्दों एवं वाणी को सोच समझकर बोलने की सलाह दी है। और यह अभिलेख हर समय हमारे साथ रहते एवं चलते हैं। हमारी वाणी एवं शब्द हमारे शिष्टाचार के प्रतिनिधि हैं। सही समय पर सही बात बोलने से उसका वजन एवं गरिमा होती है। शब्द बड़ी नाजुक सी चीज है। शब्द जितने गरिमामय होंगे, बोलने वाले का व्यक्तित्व भी उतने ही सम्मान के साथ निश्चित तौर पर सम्माननीय और गरिमामयी होगा।

सन्दर्भ :-

1. अमर उजाला, देहरादून संस्करण, रविवार, 3 फरवरी 2019
2. हिंदुस्तान, देहरादून संस्करण, रविवार,10 नवंबर 2019
3. कबीर अमृतवाणी, इंडियन प्रेस प्रा. लि. पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद– संकलनकर्ता– अभिलाष दास।

Email – bahugunasushil541@gmail.com
मोबाइल : 9412970252, 7060654972

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 98-104

आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों पर मानसिक प्रशिक्षण के प्रभाव का अध्ययन

जुबेर खान, शोधकर्ता
डॉ. गजेन्द्र सिंह सरोहा, पर्यवेक्षक
टांटिया युनिवसिर्टी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

मुक्केबाजी एक प्राचीन और पौराणिक खेल है जिसमें खिलाड़ियों के बीच मुकाबला होता है तथा वह एक दूसरे को मारकर जीत हासिल करते हैं। इस खेलने सदियों से दुनियाभर के लोगों के दिल और दिमाग पर कब्जा कर रखा है। यह ताकत, कौशल और रणनीति की प्रतियोगिता है, जहां दो प्रतिद्वंद्वी एकरिंग में आमने–सामने होते हैं, प्रत्येक का लक्ष्य अपनी ताकत साबित करना और मुक्कों और रक्षात्मक युद्धाभ्यास के संयोजन के माध्यम से जीत हासिल करना होता है। मुक्केबाजी का एक समृद्ध इतिहास है और यह एक पेशेवर खेल और शौकिया प्रतियोगिता के एक लोकप्रिय रूप दोनों के रूप में विकसित हुआ है।

मुक्केबाजी की उत्पत्ति का पता मिस्र, यूनानी और रोमन जैसी प्राचीन सभ्यताओं में हजारों साल पहले लगाया जा सकता है, जो खेल और आत्मरक्षा के साधन के रूप में हाथ से हाथ की लड़ाई के विभिन्न रूपों का अभ्यास करते थे। समय के साथ, ये युद्ध तकनीकें मुक्केबाजी के संगठित और विनियमित खेल में विकसित हुईं जिसे आज हम जानते हैं।

आधुनिक मुक्केबाजी में, प्रतिभागी अपने हाथों की सुरक्षा के लिए गद्देदार दस्ताने पहनते हैं और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए सख्त नियमों का पालन करते हैं। इन नियमों में वजन वर्गों से लेकर लड़ाई के दौर, स्कोरिंग सिस्टम और रेफरी और जजों की भूमिका तक सब कुछ शामिल है। बॉक्सिंग मैच विभिन्न तरीकों से समाप्त हो सकते हैं, जिनमें नॉकआउट, तकनीकी नॉकआउट द्वारा निर्णय शामिल हैं।

शोध की कार्य प्रणाली :-

शोध कार्य के क्रियान्वयन हेतु आदिवासी बहुल क्षेत्र से विभिन्न भार वर्गो के 90–90 बॉक्सिंग खिलाड़ियों का यादृच्छिक रूप से चयन किया गया। प्रत्येक भार वर्ग के खिलाड़ियों को पुनः तीन समूहों में वर्गीकृत किया

गया।

– प्रथम समूह को सिर्फ मानसिक प्रशिक्षण दिया गया।

– दूसरे समूह को बॉक्सिंग कौशल प्रशिक्षण ही दिया गया।

– तीसरे समूह को मानसिक प्रशिक्षण तथा कौशल प्रशिक्षण दोनों ही दिए गये।

इस प्रकार इस प्रयोगात्मक शोध के द्वारा एक समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रम बॉक्सिंग खिलाड़ियों हेतु विकसित किया गया।

उपकरण :–

प्रत्येक खिलाड़ी के खेल स्तर का प्रशिक्षण से पूर्व तथा प्रशिक्षण के पश्चात तीन बॉक्सिंग प्रशिक्षकों द्वारा स्व निर्मित मापनी के आधार पर मापन किया गया एवं उन्हें शून्य से लेकर चार तक के बीच अंक दिए गए। उनके द्वारा यह मापन 10 आधारों पर किया गया जो की अग्रलिखित है–

आक्रामकता, रक्षात्मरकता, शक्ति, चतुराई, गतिशीलता, खेल भावना, स्थायित्व, रणनीति, अनुकूलन एवं उत्साह।

इस प्रकार प्रत्येक आधार पर शून्य से लेकर 4 के बीच कुल 12 अंक प्रत्येक बॉक्सिंग खिलाड़ी को हर आधार पर प्रशिक्षकों द्वारा दिए गए।

शोध न्यादर्श :–

कार्य के क्रियान्वयन हेतु आदिवासी बहुल क्षेत्र से विभिन्न भार वर्गो के 90–90 बॉक्सिंग खिलाड़ियों का यादृच्छिक रूप से चयन किया गया। इस शोध कार्य में जिला स्तरीय बॉक्सिंग खिलाड़ियों का ही चयन किया गया। बॉक्सिंग खिलाड़ियों को मानसिक प्रशिक्षण देने हेतु प्राणायाम, त्राटक क्रिया, ध्यान, वर्तमान का ज्ञान (अति विचार मुक्ति), स्व प्रेरणा मंत्र का अभ्यास कराया गया।

बॉक्सिंग खिलाड़ियों को कौशल प्रशिक्षण देने हेतु पोजिशन, फुटवर्क, पंचिंग, आघात, प्रति आघात का अभ्यास कराया गया।

सांख्यकीय :–

प्रशिक्षण के पूर्व तथा प्रशिक्षण के उपरांत अंतर की सार्थकता को ज्ञात करने के लिए युग्मक टी परीक्षण का प्रयोग किया गया। विभिन्न भार वर्गों के खिलाड़ियों के बीच प्रशिक्षण के प्रभावों का अंतर ज्ञात करने के लिए अनोवा परीक्षण किया गया। इसी प्रकार शारीरिक, मानसिक कौशल तथा कौशल एवं मानसिक प्रशिक्षण के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए भी अनोवा परीक्षण किया गया।

उद्देश्य :–

आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों पर मानसिक प्रशिक्षण के प्रभावों का अध्ययन करना।

विश्लेषण :-

तालिका **1.1**

फेदरवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों पर मानसिक प्रशिक्षण का प्रभाव		
मानक	मानसिक प्रशिक्षण पूर्व स्तर	मानसिक प्रशिक्षण उपरान्त स्तर
आक्रामकता	4.8	7.07
रक्षात्मकता	5.13	7.27
शक्ति	5.2	6.73
चतुराई	3.83	6.47
गतिशीलता	5.8	7.13
खेल भावना	6.4	7.67
स्थायित्व	6.33	7.33
रणनीति	4.33	6.23
अनुकूलन	6.4	9.3
उत्साह	6.93	9.4
माध्य	5.52	7.46

चार्ट 1.1

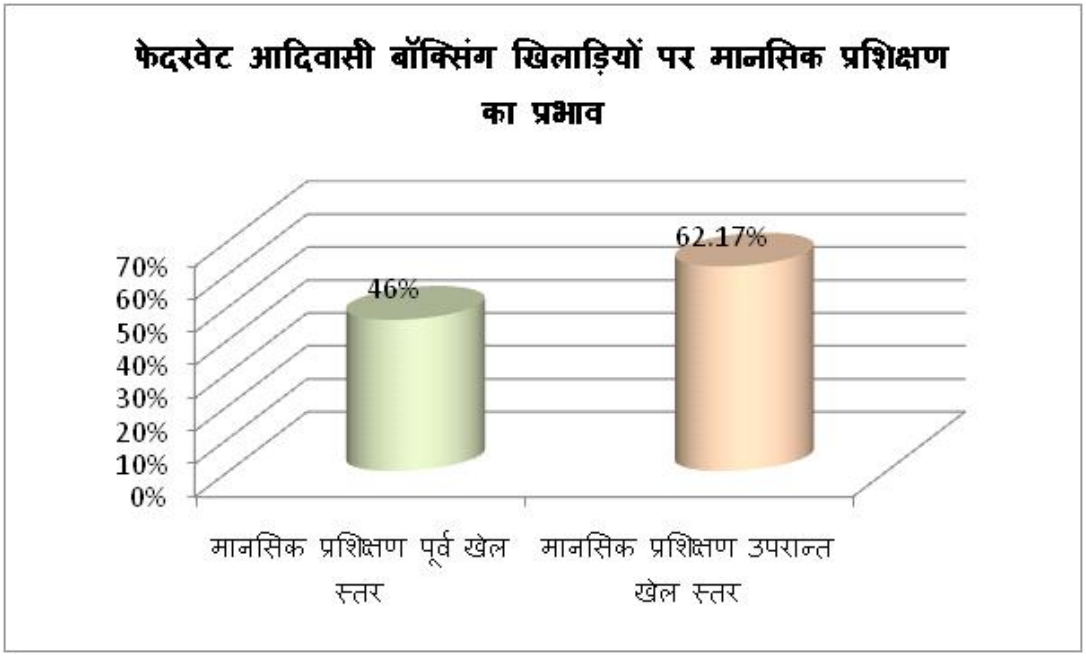

तालिका 1.1 के अनुसार मानसिक प्रशिक्षण देने से पहले फेदरवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का औसत खेल स्तर 5.52 (46%) था जो कि मानसिक प्रशिक्षण देने के बाद 7.46 (62.17%) हो गया। मानसिक प्रशिक्षण से फेदरवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तसर में 16.17% वृद्धि हुई है।

तालिका **1.2**

लाइटवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों पर मानसिक प्रशिक्षण का प्रभाव		
मानक	मानसिक प्रशिक्षण पूर्व स्तर	मानसिक प्रशिक्षण उपरान्त स्तर
आक्रामकता	5.3	7.4
रक्षात्मकता	5.63	7.9
शक्ति	6.13	6.77
चतुराई	4.93	6.83
गतिशीलता	5.57	6.83
खेलभावना	7.07	8.3
स्थायित्व	7.23	8.3
रणनीति	5.53	7.1
अनुकूलन	7.2	9.83
उत्साह	7.5	9.2
माध्य	6.21	7.85

तालिका 1.2 के अनुसार मानसिक प्रशिक्षण देने से पहले लाइटवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का औसत खेल स्तर 6.21 (51.75%) था जो कि मानसिक प्रशिक्षण देने के बाद 7.85 (65.42%) हो गया। मानसिक प्रशिक्षण से लाइटवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तर में 13.67% वृद्धि हुई है।

चार्ट 1.2

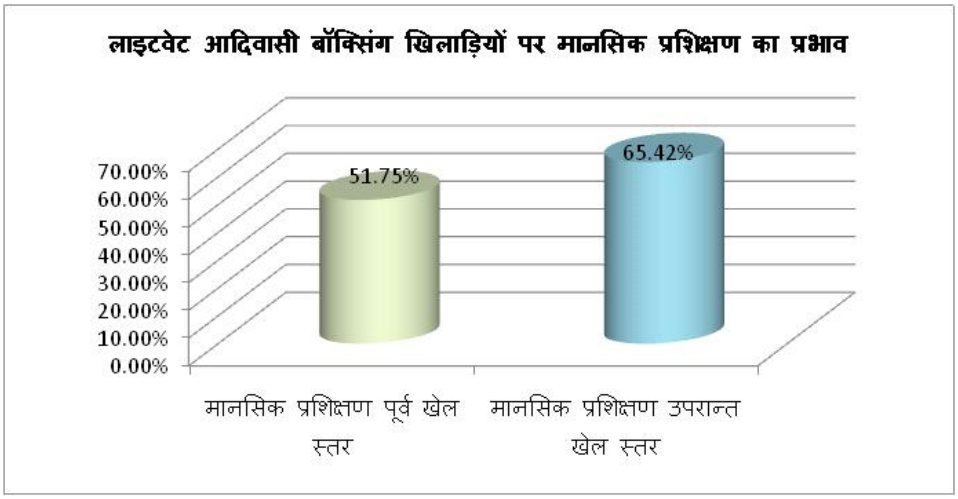

तालिका **1.3**

मिडिलवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों पर मानसिक प्रशिक्षण काप्रभाव		
मानक	मानसिक प्रशिक्षण पूर्व स्तर	मानसिक प्रशिक्षण उपरान्त स्तर
आक्रामकता	5.6	7.9
रक्षात्मकता	6.23	7.6
शक्ति	6.4	7.5
चतुराई	5.1	6.8
गतिशीलता	5.2	6.3
खेलभावना	5.9	7.23
स्थायित्व	7.63	8.27
रणनीति	4.8	6.7
अनुकूलन	6.83	9.33
उत्साह	7.2	8.9
माध्य	6.09	7.65

चार्ट 1.3

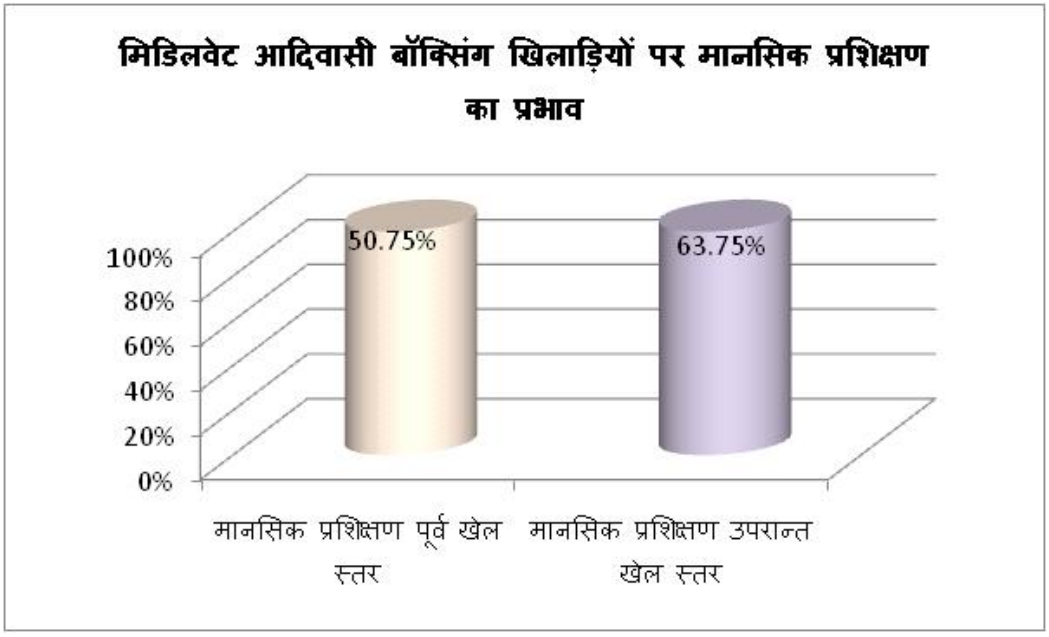

तालिका 1.3 के अनुसार मानसिक प्रशिक्षण देने से पहले मिडिलवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का औसत खेल स्तर 6.09 (50.75%) था जो कि मानसिक प्रशिक्षण देने के बाद 7.65 (63.75%) हो गया। मानसिक प्रशिक्षण से मिडिलवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तर में 13.00% वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष :-

मानसिक प्रशिक्षण पूर्व आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 49.50% है जो कि मानसिक प्रशिक्षण देने के बाद 63.75% हो गया। आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तर में 14.25% वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण पूर्व फेदरवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 46.08% है। प्रशिक्षण देने के बाद फेदरवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 67% हो गया। प्रशिक्षण से फेदरवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तर में 20.92% वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण पूर्व लाइटवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 49.92% है।

प्रशिक्षण देने के बाद लाइटवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 70.92% हो गया। प्रशिक्षण सेलाइटवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तर में 21% वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण पूर्व मिडिलवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 50.75% है। प्रशिक्षण देने के बाद मिडिलवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों का खेल स्तर 70.42% हो गया। प्रशिक्षण से मिडिलवेट आदिवासी बॉक्सिंग खिलाड़ियों के खेल स्तर में 19.67% वृद्धि हुई है।

संदर्भ :-

1. अकोपोव, ओ.डी. (2023) ऑनलाइन प्रशिक्षण की स्थितियों में 10–11 वर्षीय मुक्केबाजों के शारीरिक प्रशिक्षण की संरचना और सामग्री का उनकी शारीरिक स्थिति के संकेतकों पर प्रभाव। नेशनल पेडागोगिकल ड्रैगोमैनोव यूनिवर्सिटी का वैज्ञानिक जर्नल। श्रृंखला 15. भौतिक संस्कृति (भौतिक संस्कृति और खेल) की वैज्ञानिक और शैक्षणिक समस्याएं।
2. आदमआर. निचोल्स, आदि (2008). मानसिक मजबूती का संबंध कोपिंग, आशावाद, और कोपिंग और आशावाद के साथ।
3. कमिंग, आदि (2010). किशोर लड़कियों में जीवाणु वर्गीकरण स्थिति के संबंध में भौतिक स्व–संवाद की मध्यस्थ भूमिका का अध्ययन।
4. कास्टीलो, आदि (2010). स्पेनिश और पुर्तगाली जूनियर हाई स्कूल में TEOSQ के प्रमाण साक्षरता की खोज।
5. किम, एस.जी., किम, यू.एच., और पार्क, एस.एच. (2015). तीरंदाजी प्रदर्शन की स्नायु संबंधितता : एक कृत्रिम मैग्नेटिक रिजनेंस इमेजिंग अध्ययन में उच्चकोटीय, विशेषज्ञ, और नौसिख तीरंदाजों में भिन्नता की जांच। खेल में प्रदर्शन विश्लेषण का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल।
6. क्रस्ट और क्रिश्चियन, आदि (2011). मेल खिलाड़ियों पर मानसिक सख्ती के दो मापों की तुलना। खेल में प्रदर्शन विश्लेषण का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, वॉल्यूम नंबर 1(3), पेज नंबर 118–193.
7. गेवोर्की, जी., गेवोर्की, एम., और सामदी, आर. (2013). पेशेवर और अमेच्यूर एथलीट द्वारा प्रतिस्पर्धा किए जाने वाले खिलाड़ियों के मानसिक दृढ़ता और मानसिक स्वास्थ्य की तुलना। खेल में प्रदर्शन विश्लेषण का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल।
8. गैरीआदि (2007). सुझाव दिया कि मानसिक मजबूती प्रतिस्पर्धा में बनाए रखने और सफल प्रदर्शन पर बहुत

महत्वपूर्ण है।

9. घासेमी, यागूबियन और मोमेनी, आदि (2012). फेंसरों में मानसिक सख्ती और खेल की सफलता के बीच संबंध. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स फिजियोलॉजी एंड परफॉर्मेंस, वॉल्यूम नंबर 3(2), पेज नंबर –144–156.
10. जड्ज, इलिस और डिमोटाकिस, आदि (2010). सामान्य मानसिक क्षमता, शैक्षिक और पेशेवर सफलता, स्वास्थ्य और भलाई के बीच संबंध का अध्ययन।
11. जलीली, आदि (2011). महिला छात्राओं के व्यक्तित्व आयाम, मानसिक सख्ती, और सामाजिक कौशलों की तुलना (टीम–व्यक्तिगत) और गैर–खिलाड़ियों के साथ। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स फिजियोलॉजी एंड परफॉर्मेंस वॉल्यूम नंबर –8(14), पेज नंबर 1133–1156
12. जियागिल एम.ए. (2011). दिमाग के हेमिस्फेरिक डोमिनेंस द्वारा शारीरिक प्रदर्शन और चलन कौशलों में अंतर देखने का मौका। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स फिजियोलॉजी एंड परफॉर्मेंस वॉल्यूम नंबर 12(2), पेज नंबर 145–156.
13. जोनाथन, आदि (2010). काम संबंधित परिणामों के पूर्वानुमान के रूप में सामान्य मानसिक क्षमता (GMA) और व्यक्तित्व की भूमिका।
14. जोन्सजी. आदि (2008). आठ ओलंपिक या विश्व चौम्पियन्स, 3 कोच, और 4 खेल मनोवैज्ञानिकों में मानसिक मजबूती का अध्ययन।
15. देवेसा, वी.पी., औरपोंस, टी.सी. (2020)। श्रेणी के अनुसार मुक्केबाजी गतिविधि प्रोफाइल का पद्धतिगत विश्लेषण।
16. ली, एम. (2023)। चीनी मुक्केबाजी छात्र प्रशिक्षण में मोटर कौशल विश्लेषण। ब्राजीलियाई जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स मेडिसिन।
17. लियू, एक्स. (2023)। प्रारंभिक प्रशिक्षण के तहत चीनी मुक्केबाजी चिकित्सकों का सशक्तिकरण। ब्राजीलियाई जर्नल ऑफ स्पोर्ट्स मेडिसिन।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 105-109

जिला स्तरीय मध्यम तेज गेंदबाजों के प्रदर्शन पर शारीरिक प्रशिक्षण का प्रभाव का अध्ययन

तरूण शर्मा, शोधकर्ता
डॉ. गजेन्द्र सिंह सरोहा, पर्यवेक्षक
टांटिया युनिवसिर्टी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

क्रिकेट एक ऐसा प्रतिस्पर्धी खेल है जिसमें की बल्लेबाज, गेंदबाज और क्षेत्र रक्षक तीनों को ही सदैव प्रयासरत रहना होता है तभी वे अपना उत्कृष्ट प्रदर्शन देते हुए जिला या राज्य स्तरीय टीमों में अपना स्थान बना सकते हैं। राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले क्रिकेट टूर्नामेंट में तो बहुत ही कड़ी प्रतिस्पर्धा होती है वहां बल्लेबाजी का बोलबाला रहता है। क्रिकेट वैसे तो एक संतुलित खेल है जिसमें की गेंदबाज और बल्लेबाज दोनों को अपने प्रदर्शन से सभी को प्रभावित करने का पूरा–पूरा अवसर दिया जाता है किंतु फिर भी अधिकांक्ष खेल में बल्लेबाज ही हावी रहते हैं।

क्रिकेट में नियम ही कुछ इस प्रकार के हैं कि गेंदबाज के पास बहुत ज्यादा विकल्प नहीं रहते हैं यथा एक ओवर में दो से अधिक बाउंसर गेंद नहीं की जा सकती, लेग स्टम्प से बाहर टप्पा खाने वाली गेंद पर एल. बी. डब्ल्यू. नहीं दिया जाता, लेग स्टम्प से बाहर की गेंद को वाइड दिया जाता है, गेंद कमर की ऊंचाई से अधिक है तो उसे नोबॉल करार दिया जाता है, ऐसी बाउंसर जो सिर के ऊपर से निकल जाए तो उसे भी वाइड दिया जाता है और तेज रनअप से गेंदबाजी के दौरान भी क्रिज की रेखा का ध्यान रखना होता है अन्यथा नो बेल दी जा सकती है। इन सभी सख्त नियमों के तहत गेंदबाजों को प्रदर्शन करना होता है।

शोध की कार्य प्रणाली :-

जिला स्तरीय मध्यम तेज गेंदबाजों को तीन प्रकार का प्रशिक्षण दिया गया। चयनित मध्यम तेज गेंदबाजों के पहले समूह को शारीरिक प्रशिक्षण दिया गया। शारीरिक प्रशिक्षण के अंतर्गत स्ट्रेचिंग, स्प्रिंट एवं जोगिंग को समाहित किया गया।

प्रस्तुत शोधकार्य में निम्न आठ प्रकार की गेंदबाजी जोकि मध्यम तेज गेंदबाजों द्वारा की जाती है का अध्ययन किया गया :–

1. योर्कर
2. आउटस्विंग
3. इनस्विंग
4. रिवर्सस्विंग
5. ऑफकटर
6. लेगकटर

7. नकल बॉल तथा 8. स्लोअर बॉल (धीमी गेंद)

इसके साथ ही गेंदबाजी को निम्न तीन आयामों पर विशेषज्ञों द्वारा मापा गया :–

गेंद की दिशा (लाइन) गेंद की दूरी (लेंथ) गेंद की गति (पेसगति)

शोध के अंतर्गत् गेंदबाजों के गेंदबाजी एक्शन से संबंधित निम्न छः आयामों को विशेषज्ञों द्वारा मापा गया :–

1. रनअप 2. जम्प
3. बेकफुट लेंडिंग 4. फ्रंटफुट लेंडिंग
5. रिलिज 6. फोलोथ्रू

शोध न्यादर्श :–

इस प्रायोगिक शोध कार्य हेतु जयपुर, अलवर एवं सीकर जिले के कुल 180 जिला स्तरीय मध्यम तेज गेंदबाजों का यादृच्छिक रुप से चयन किया गया। चयन के उपरान्त इन्हें तीन भागों में विभक्त कर उन्हें क्रमशः शारीरिक प्रशिक्षण, तकनीकी प्रशिक्षण तथा मानसिक प्रशिक्षण दिया गया। शारीरिक प्रशिक्षण पूर्व व शारीरिक प्रशिक्षण उपरान्त, तकनीकी प्रशिक्षण पूर्व तकनीकी प्रशिक्षण उपरान्त, मानसिक शारीरिक प्रशिक्षण पूर्व व मानसिक प्रशिक्षण उपरान्त मध्यम तेज गेंदबाजों के प्रदर्शन अध्ययन किया गया।

उद्देश्य :–

जिला स्तरीय मध्यम तेज गेंदबाजों के प्रदर्शन पर शारीरिक प्रशिक्षण का प्रभाव ज्ञात करना।

विश्लेषण :–

तालिका **1.1**

शारीरिक प्रशिक्षण का जिला स्तरीय मध्याम तेज गेंदबाजों पर समग्र प्रभाव		
शारीरिक	शारीरिक प्रशिक्षण पूर्व	शारीरिक प्रशिक्षण उपरान्त
दिशा	4.40	6.17
गेंदकी दूरी	3.83	5.72
गति	3.63	6.60
रनअप	6.17	7.43
जम्प	6.22	7.32
बेकफुटलेंडिंग	6.28	7.10
फ्रंटफुटलेंडिंग	7.18	7.63
गेंदरिलिज	6.30	7.15
फोलोथ्रू	6.60	7.60
योर्कर	3.33	4.33
आउटस्विंग	3.75	4.30
इनस्विंग	4.50	5.33
रिवर्सस्विंग	2.00	2.32
ऑफकटर	3.80	4.53
लेगकटर	4.40	4.90
नकलबॉल	2.03	2.52
स्लो्अरबॉल	5.92	6.92
माध्य	4.73	5.76

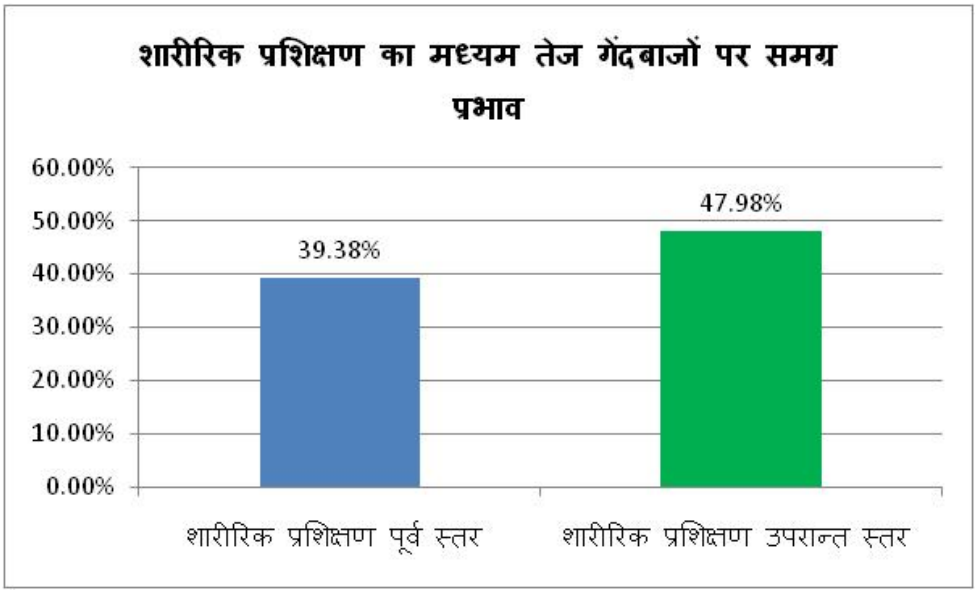

शोध हेतु चयनित प्रथम समूह के जिला स्तरीय मध्यम तेज गेंदबाजों को शारीरिक प्रशिक्षण देने से पूर्व उनकी गेंद की दिशा (लाइन, गेंद की दूरी (लेंथ, गेंद की गति (पेसगति, रनअप, जम्प, बेकफुट लेंडिंग, फ्रंटफुट लेंडिंग, रिलिज, फोलोथ्रू, योर्कर, आउट स्विंग, इन स्विंग, रिवर्स स्विंग, ऑफ कटर, लेग कटर, नकल बॉल तथा स्लोअर बाल का मापन 3 प्रशिक्षकों द्वारा किया गया। उनके द्वारा दिए गए कुल अंकों में से इन गेंदबाजों का औसत माप 4.40, 3.83, 3.63, 6.17, 6.22, 6.28, 7.18, 6.30, 6.60, 3.33, 3.75, 4.50, 2.00, 3.80, 4.40, 2.03, 5.92 रहा जबकि दो माह के शारीरिक प्रशिक्षण के उपरांत इन मध्यम तेज गेंदबाजों का औसत मान 6.17, 5. 72, 6.60, 7.43, 7.32, 7.10, 7.63, 7.15, 7.60, 4.33, 4.30, 5.33, 2.32, 4.53, 4.90, 2.52, 6.92 अंक रहा। शारीरिक प्रशिक्षण से लगभग सभी गेंदबाजों के सभी कलाओ में सुधार आया एवं उसमें नियंत्रण बेहतर हुआ। यह शारीरिक प्रशिक्षण की उपादेयता को दर्शाता है।

निष्कर्ष :-

शारीरिक प्रशिक्षण से मध्यम तेज गेंदबाजों के प्रदर्शन में सुधार दर्ज होता देखा गया जहां प्रशिक्षण के पूर्व चयनित खिलाड़ियों का औसत प्रदर्शन 39.38% था वह प्रशिक्षण शारीरिक प्रशिक्षण के उपरांत 47.98% हो गया इस प्रकार 8.59% की वृद्धि शारीरिक प्रशिक्षण के परिणाम स्वरुप दर्ज हुई। खिलाड़ियों की गति में 24.75% का सुधार शारीरिक प्रशिक्षण से मापा गया जबकि गेंद की दूरी में भी सुधार 15.75% सुधार शारीरिक प्रशिक्षण के उपरांत देखा गया। मध्यम तेज गेंदबाजों गेंदबाजी की दिशा में 14.75% का सुधार प्रशिक्षण के उपरांत हुआ। शारीरिक प्रशिक्षण का न्यूनतम प्रभाव रिवर्स स्विंग पर पड़ा जिसमें की मात्र 2.67% का सुधार देखा गया जो कि बेहद नगण्य है। खिलाड़ियों के रन अप में भी शारीरिक प्रशिक्षण से 10.50% निखार आता है।

Bibliography :-

1. Aaberg, E. (2006) Program planning. In: Muscle Mechanics (2nd ed.). Champaign, IL: Human Kinetics. pp. 189–212.
2. Abernethy B.(1981) Mechanisms of skill in cricket batting. Australian Journal Sports Medicine , vol.13,

pp-3–10.
3. Aginsky KD, Lategan L, Stretch RA.(2004) Shoulder injuries in provincial male fast bowlers-predisposing factors. Sports Medicine , vol,16, pp-25-28
4. Atwater AE. (1979). Biomechanics of overarm throwing movements and of throwing injuries. In exercise and sport sciences reviews, New York: Franklin Institute Press, pp-43-85.
5. Cratty, BJ and Hutton, RS.(1964) Figural after effects resulting from gross action patterns. Residence Quality Am Association Health Physiology Eduation, vol. 35, pp-116–125.
6. Crewe H, Campbell A, Elliott B, Alderson J.(2013) Lumbo-pelvic loading during fast bowling in adolescent cricketers: the influence of bowling speed and technique. Journal Sports Science; vol.31(10), pp-1082-90.
7. Davies G, Riemann B, Manske R.(2015) Current concepts of plyometric exercise. Internal Jounal Sports Physical Therapy,Vol.10(6), pp-760–80.
8. Dennis RJ, Finch CF, Farhart PJ.(2005) Is bowling workload a risk factor for injury to Australian junior cricket fast bowlers? Britain Journal Sports Medicine, vol.39(11), pp-843-846.
9. DeRenne C, Buxton BP, Hetzler RK, Ho KW.(1994) Effects of under- and overweighted implement training on pitching velocity. Journal Strength Conditon Residence, vol. 8(4), pp-47–250.
10. Ferdinands R, Kersting UG, Marshall RN, Stuelcken M.(2010) Distribution of modern cricket bowling actions in New Zealand. European Journal Sport Sciencevol.10(3), pp-179-190.
11. Ferdinands R, Marshall RN, Kersting U. (2010) Centre of mass kinematics of fast bowling in cricket. Sports Biomechanics , vol. 9, pp-139-152.
12. Grogan JP, Hemminghytt S, Williams AL, Carrera GF, Haughton VM. (1982) Spondylolysis studied with computed tomography. Radiology, vol.145(3), pp-737-742.
13. Hanley B, Lloyd R, Bissas A.(2000) Relationships between ball release velocity and kinematic variables in fast bowling in cricket. Journal Sports Science, vol. 23, pp-112–113.
14. Joris HJ, Van Muyen AE, van IngenSchenau GJ, et al.(1985) Force, velocity and energy flow during the overarm throw in female handball players. Journal Biomech , vol. 18, pp-409-414.
15. Kalichman L, Kim DH, Li L, Guermazi A, Berkin V, Hunter DJ. (2009) Spondylolysis and spondylolisthesis: prevalence and association with low back pain in the adult community-based population. Spine; vol. 34(2), pp-199-205.
16. Loram, LC, McKinon, W, Wormgoor, S, Rogers, GG, Nowak, I, and Harden, LM. (2005) Determinants of ball release speed in schoolboy fast medium bowlers in cricket. Journal Sports Medicine Physical Fitness, Vol. 45, pp. 483–490.
17. Magill, RA. (2007) Transfer of motor learning. In: Motor Learning and Control: Concepts and Applications (8th ed.). New York, NY: McGraw- Hill. pp. 290–306.
18. Murtaza ST, Zakir M. (2014). Construction and standardization of fielding test in cricket. Indian Streams Residence Journal, pp- 4.
19. Nevill, A.M, Atkinson, G., Hughes, M. and Cooper, S.-M.(2002). Statistical methods for analysing discrete

and categorical data recorded in sport performance and notation analyses. Journal of Sports Sciences, vol.20, pp- 829 – 844.

20. Orchard JW, James T, Portus M, Kountouris A, Dennis R.(2009) Fast bowlers in cricket demonstrate up to 3- to 4-week delay between high workloads and increased risk of injury. Am Journal Sports Medicine vol.37(6), pp-1186-1192.
21. Penrose T, Foster D, Blanksby B.(1976) Release velocities of fast bowlers during a crickettest match. Australian Journal Health Physical Education Recreation ; vol.71, pp-2-5.
22. Richard Aldworth Stretch (1984) Validity and reliability of an objective test of cricket skills. Unpublished Thesis submitted in fulfillment of the requirements for the master of arts degree department of human movement studies and physical education, Rhodes University, Grahamstown, South Africa 1984.
23. Robinson G, Robinson I.(2013) The motion of an arbitrarily rotating spherical projectile and its application to ball games. PhysicatryScripta. Vol.88(1), pp-18101–17.
24. Strobel K, Burger C, Seifert B, Husarik DB, Soyka JD, Hany TF.(2007) Characterization of focal bone lesions in the axial skeleton: performance of planar bone scintigraphy compared with SPECT and SPECT fused with CT. Am Journal Roentgenol,vol.188(5),-pp 467-474.
25. Van den Tillaar R, Ettema G.(2011) A comparison of kinematics between overarm throwing with 20% underweight, regular, and 20% overweight balls. Journal Applied Biomechanics, vol.27(3), pp-252–257.
26. Vasiliev, L.(1983) Use of different weights to develop specialized speed strength. Soviet Sports Revision, vol. 18, pp- 49–52.
27. Weber AE, Kontaxis A, O'Brien SJ, Bedi A.(2014) The biomechanics of throwing: simplified and cogent. Sports Medicine Arthrosclera Vol.22(2), pp-72–79.
28. Weir, JP. (2005) Quantifying test-retest reliability using the intra class correlation coefficient and the SEM. Journal Strength Condition Residence, vol.19, pp- 231– 240.
29. Werner SL, Suri M, Guido JA, Meister K, Jones DG.(2008) Relationships between ball velocity and throwing mechanics in collegiate baseball pitchers. Journal Shoulder Elbow Surgery, vol 17(6), pp-905–908.
30. Wickington KL, Linthorne NP.(2017) Effect of ball weight on speed, accuracy, and mechanics in cricket fast bowling. Sports (Basel)., vol. 5(1), pp-18.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 110-114

स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा की भूमिका : (1920-1942)

रूचि वत्स

सहायक प्रवक्ता, इतिहास विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।

सारांश :-

गुलामी की जंजीरों में जकड़े भारत देश की आजादी पाने की दास्ता बहुत ही रोमांचकारी है। इस आजादी को पाने के लिए भारतवासियों ने अथक प्रयास किए। लगभग 200 वर्षों की गुलामी के बाद जब भारत देश आजादी की गूंज से गूंजायमान हुआ तो वह भारतीयों के त्याग, तपस्या, बलिदान एवं देशभक्ति, आत्मसमर्पण की कहानी कह रहा था। इस आजादी की प्राप्ति में पूरा भारतवर्ष एकजुट होकर प्रयासरत था जिसमें हरियाणावासियों ने भी अदम्य साहस एवं वीरता का परिचय दिया। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ब्रिटिश भारत में हुए स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा की भूमिका पर प्रकाश डाला जाएगा। स्वतंत्रता आंदोलन में हरियाणा की भूमिका खोजते हुए शोध पत्र संबंधित अमुक विषय पर एक सुसंगठित एवं संगत विचार को मूर्तरूप देने का प्रयास किया जाएगा।

कुंजी शब्द :- स्वतंत्रता आंदोलन, हरियाणा, सुधार आंदोलन।

भारत के हरियाणा राज्य को भौगोलिक रूप से ऐसी पृष्ठभूमि विरासत में मिली है जिसमें छोटे से स्वरूप वाले इस राज्य में भारतीय संस्कृति उदभूत, पल्लवित, विकसित एवं समृद्ध हुई। हरियाणावासी अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व, अदमय साहस एवं अथक प्रयास के लिए जाने जाते है। 17वीं शताब्दी में व्यापारिक उद्देश्य से आई ईस्ट इंडिया कंपनी शीघ्र ही एक राजनीतिक शक्ति बन गई। 1803 में जब ब्रिटिश सरकार का दिल्ली पर अधिकार हुआ तब हरियाणा दिल्ली के अंतर्गत आने लगा।[1] हालांकि हरियाणा में स्वतंत्रता आंदोलन की पहल 1857 की क्रांति से ही हो गई थी। हरियाणा के विभिन्न प्रांतों जैसे अंबाला, हिसार, रेवाड़ी, झज्जर, रोहतक, सिरसा एवं विभिन्न गांव क्रांति के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे।[2] इसके अलावा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885, 1909 के मार्ले मिंटो सुधार एवं प्रथम विश्व युद्ध जैसे सभी घटनाक्रमों में हरियाणा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।[3] परंतु विषय की गंभीरता को समझते हुए यहां हरियाणा की 1920 से 1934 तक की समयावधि को लिया गया है क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन के विस्तृत क्षेत्र में हरियाणा की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है जिसे कुछ पृष्ठों पर समेट

पाना आसान कार्य नहीं होगा।

1919 के रोल्ट एक्ट के विरोध स्वरूप संपूर्ण भारत के साथ–साथ हरियाणा में भी अफरा–तफरी का माहौल था। सत्याग्रह आंदोलन को सुचारु रूप से चलाने के लिए गांधी जी हरियाणा के दौरे पर पहुँचे परंतु पलवल रेलवे स्टेशन से गांधी जी को गिरफ्तार करके वापस भेज दिया गया। इसके पश्चात् घटित जलियांवाला बाग हत्याकांड ने स्थिति को और अधिक भयावह बना दिया। इस दौरान गुड़गांव, करनाल, अंबाला, रोहतक जैसे सभी क्षेत्र प्रभावी रहे।[4]

मई 1920 में प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् तुर्की के खलीफा के साथ अमानवीय व्यवहार करते हुए उन्हें उनके सम्मानीय पद से वंचित कर दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप भारत के मुस्लिम वर्ग द्वारा खिलाफत आंदोलन चलाया गया जिसे गांधी जी ने पूर्ण सहयोग दिया।[5] इस आंदोलन के दौरान हरियाणा के 10 लाख से अधिक मुस्लिम प्रभावित हुए। हरियाणा के विभिन्न जिलों से अब्दुल रशीद, गुलाब बेग नौरंग, हनीफ खाँ, सूफी इकबाल, मुहम्मद याशीद खाँ एवं याकूब खाँ जैसे नेताओं ने अपने–अपने जिलों में खिलाफत कमेटी बनाते हुए आंदोलन को सफल बनाया। सरकार के सख्त रवैये के कारण हरियाणा में आंदोलन की गति कुछ धीमी पड़ गई। इन परिस्थितियों में गांधी जी ने अगस्त 1920 में असहयोग आंदोलन चलाने की घोषणा की। परिणामस्वरूप असहयोग और खिलाफत के मेल से स्थिति और अधिक बलशाली हुई।[6]

4 सितंबर 1920 को कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव पास होने के बाद संपूर्ण भारत में असहयोग आंदोलन चलाया गया। गांधी जी के आवाह्न पर हरियाणावासियों ने भी विभिन्न शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार किया और विदेशी कपड़ों की होली जलाई, शराब की दुकानों पर धरने दिए एवं उच्च पदों से त्यागपत्र दिए। 1921 के पंजाब विधानसभा चुनावों का बहिष्कार किया गया। हरियाणा के अनेक वकीलों ने आंदोलन के दौरान अपनी वकालत छोड़ी जिनमें रोहतक से श्यामलाल, अंबाला से अब्दुल रसीद, गलाम बेगम नौरंग, दुर्गाचरण एवं करनाल से रामचंद्र वैध प्रमुख थे।[7]

जब आंदोलन पूर्ण प्रकाष्ठा पर था तभी फरवरी 1922 को चौरा–चौरी की हिंसात्मक घटना घटित हुई जिससे गांधी जी ने विवश होकर आंदोलन को स्थगित कर दिया। इस आंदोलन में गिरफ्तार हुए हरियाणा के नेताओं ने 6 माह की कठोर कारावास की सजा को झेला।[8]

इस आंदोलन के परिणामस्वरूप हरियाणा में एक नया नेतृत्व उभर कर सामने आया। इस नेतृत्व क्षमता ने ही स्वतंत्रता आंदोलन के आगामी अध्यायों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वदेशी का प्रचार एवं खद्दर की लोकप्रियता इस आंदोलन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।[9] वर्ष 1930 में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास करते हुए 26 जनवरी 1930 को कांग्रेस स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया। इसी वर्ष गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया। गांधी जी की पुकार पर सम्पूर्ण हरियाणा में क्रान्ति की लहर दौड़ पड़ी। हालांकि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी आंदोलन के दौरान पूरे देश को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे, परंतु हरियाणा को लेकर उनके हृदय में विशेष अनुराग था।[10]

गांधी जी ने 12 मार्च से 6 अप्रैल की ऐतिहासिक दांडी यात्रा करके नमक कानून तोड़ा और सरकारी आज्ञा को भंग करते हुए सविनय अवज्ञा आंदोलन का शुभारंभ किया। आंदोलन के आरंभ होते ही हरियाणा के रोहतक, झज्जर, भिवानी, पानीपत, अंबाला, हिसार एवं गुड़गांव के अनेक गांवों, शहरों एवं कस्बों में नमक बनाकर कानून तोड़ा गया और सार्वजनिक सभाओं द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम को जन–जन तक पहुँचाया गया। हरियाणा में इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए कहीं स्वयं सेवकों ने पद यात्रा की, कहीं हरियाणा के कुछ स्थानों पर "पेशावर दिवस" मनाया गया। कहीं बड़े–बड़े जुलूस निकाले गए। सत्याग्रह के इस अभियान में महिलाएँ भी पीछे न रही। महिलाओं ने शराब की दुकानों पर शांतिपूर्वक धरने दिए। श्रीमती कस्तुरी देवी, नन्ही देवी, नैनमती, श्रीमती लक्ष्मी देवी एवं धनवंती देवी जैसी महिलाओं ने आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया। इसी बीच 5 मार्च 1931 को तत्कालीन गवर्नर लार्ड इरविन एवं महात्मा गांधी के बीच एक समझौता हुआ।

इस समझौते की शर्तों के मुताबिक 11 महीने से चले आ रहे आंदोलन को स्थगित कर दिया गया। हिंसा के दोषी न पाए गए सभी राजनैतिक बंदियों को छोड़ दिया गया। इसलिए आंदोलन के दौरान हरियाणा से बंदी बनाए गए अनेक राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया गया और गांधी जी ने भी आंदोलन स्थगित कर दिया परंतु यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। लार्ड विलिगंटन ने 'गांधी इरविन' समझौते को मानने से इंकार कर दिया। साथ ही दूसरे गोलमेज सम्मेलन की असफलता ने गांधी जी को जनवरी 1932 में पुनः आंदोलन को प्रारंभ करने के लिए विवश किया।[11]

आंदोलन के पुनः प्रारंभ होते ही ब्रिटिश सरकार ने बड़े–बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इन गिरफ्तारियों की प्रतिक्रिया हरियाणा में तुरंत देखने को मिली। इस समय ब्रिटिश सरकार भी पूरी तैयारी के साथ थी। सरकार ने पुलिस संगठन एवं जिला प्रशासन को हर स्थिति से निपटने के पूर्व आदेश जारी किए थे। पंजाब प्रदेश कांग्रेस के आदेश पर 12 जनवरी 1932 को पूरे हरियाणा में स्वाधीनता दिवस मनाया गया। विराट जुलूसों के साथ आंदोलन को सफल बनाने का प्रयास किया गया। जनवरी के तीसरे हफ्ते तक रोहतक में सवा सौ के करीब लोग गिरफ्तार हुए। पंडित राम शर्मा जो पहले डिक्टेटर बने गिरफ्तार कर लिए गए। इसके बाद राव मंगली राम, छाजूराम, लक्ष्मी राम आदि भी गिरफ्तार किए गए।[12]

सरकार के दमन चक्र के चलते देखते ही देखते 1 लाख 20 हजार निर्दोष लोगों को बंदी गृह में डाल दिया गया। विशेषकर हरियाणा से सोनीपत एवं गोहाना से सबसे अधिक गिरफ्तारी हुई। आंदोलन के दौरान भी गांधी जी हरियाणा के मामले में व्यक्तिगत रुचि लेते हुए नजर आए। उन्होंने अपने समाचार पत्र "यंग इंडिया" में हरियाणा की जनता पर किए जा रहे अत्याचारों को उजागर किया। उस समय देश का हर वासी किसान, मजदूर, जनता 'कुछ कर गुजरने' को संकल्पबद्ध था। परंतु समझौतावादी नीति के चलते एक बार फिर इसको स्थगित कर दिया गया। 1933 के अंत तक आंदोलन पूर्णतः समाप्त हो गया। एक बार पुनः भारतीयों की आजादी का स्वप्न अधूरा ही रह गया। परंतु आंदोलन ने भारतीयों के हृदय में राष्ट्रवाद की ज्वाला को नहीं बुझने दिया। समय गुजरने के साथ–साथ भारत में माहौल गर्मा–गर्मी का हो रहा था। 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने

सांप्रदायिक प्रचांड के बीज बोकर हिंदू मुस्लिम विभेद को जन्म दिया।[13] स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों को बढ़ाते हुए गांधी जी ने 8 अगस्त 1942 को बंबई में 'भारत छोड़ो आंदोलन' आरंभ किया। जहां भारत के लिए यह एक मुश्किल दौर था क्योंकि भारत को किसी भी कीमत पर आजादी चाहिए थी और वहीं ब्रिटिश सरकार के लिए भी यह बेहद ही कठिन समय था। क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध ने एक और ब्रिटिश सरकार की शक्ति को कमजोर कर दिया था। वहीं दूसरी ओर "भारत छोड़ो आंदोलन" के नारे अंग्रेजों ! भारत छोड़ो की गूंज ने भारत में विदेशी सत्ता को खुली चुनौती दी थी।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव पास करते ही 9 अगस्त 1942 को गांधी जी सहित शीर्ष के सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। यह भारत के लिए परीक्षा की घड़ी थी। जब नेतृत्वहीन होने पर भी आंदोलन को सफल बनाना था। इस आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि भूमिगत रहकर आंदोलन की गतिविधियों को सफल बनाना था। जयप्रकाश नारायण, उषा मेहता, बीना दास, सुनीता जैसे नेताओं ने भूमिगत रहकर विभिन्न रेडियो स्टेशनों के माध्यम से आंदोलन को संचालित किया। गांधी जी ने "करो या मरो" का नारा बुलंद करते हुए अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश किया। वास्तव में यह अंतिम जन संघर्ष था जो राष्ट्रवादी शक्तियों के लिए सबसे बड़ी चुनौती लेकर आया था।[14]

बात यदि हरियाणा की कि जाए तो हरियाणा के लगभग हर प्रदेश में आंदोलन प्रस्फुटित हुआ। रोहतक, हिसार, भिवानी, करनाल, पानीपत, सोनीपत जैसे सभी जिलों में अनेक नेताओं ने अपनी गिरफ्तारी दी। विदेशी वस्तुओं का पूर्णतः बहिष्कार किया। वकीलों ने वकालत छोड़ दी। बहुत से नेताओं ने भूमिगत होकर आंदोलन को संगठित करने का काम किया। जिनमें रोहतक के पंडित श्री राम शर्मा, भिवानी से ठाकुर शिशुपाल सिंह जैसे नेता प्रमुख थे। हालांकि गांधी जी आंदोलन को बिल्कुल अहिंसात्मक प्रकृति का रखना चाहते थे, परंतु फिर भी हरियाणा सहित कई राज्यों में तोड़–फोड़ की गई एवं सरकारी संपत्ति को काफी नुकसान पहुंचाया गया।[15]

भारत छोड़ो आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार के सामने ऐसी स्थिति खड़ी कर दी कि अब ब्रिटिश सरकार अधिक दिनों तक भारत को गुलाम नहीं रख सकती थी। भारत छोड़ो आंदोलन के कुछ समय बाद ही भारत आजाद हो गया। हरियाणावासियों का योगदान मात्रा इन्हीं जन आंदोलनों में ही नहीं है बल्कि इन जन–आंदोलनों के बाद हुए अन्य स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों में भी रहा। इस प्रकार आंदोलन के अंतिम चरण तक हरियाणावासी किसी न किसी रूप में आंदोलन का हिस्सा बने रहे। भारत छोड़ने के सिवा अंग्रेजों सरकार के पास कोई विकल्प भी शेष न था। परंतु इस देश से निकलने से पूर्व वे इस देश में विभाजन का बीज बोकर गए। अंततः विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हुए भारतीयों ने आजादी के स्वप्न को 15 अगस्त 1947 को पूरा किया। निःसंदेह हरियाणा के योगदान को राष्ट्रीय आंदोलन में सर्वोपरि स्थान दिया जाना चाहिए। आज भी हरियाणावासी इस स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए तन, मन एवं धन से कृत संकल्प है और भविष्य में भी रहेंगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अटेला जितेंद्र, हरियाणा का इतिहास (प्रारंभिक काल से 1947 तक), लक्ष्मी प्रकाशन, भिवानी, पृष्ठ संख्या 190
2. यादव, के0सी0, द रिवांल्ट आफ ऐटिन फीफटी सेवन इन इंडिया, नई दिल्ली, 1977 पृ0 सं0 93–94
3. मित्तल एस0सी0, हरियाणा ए हिस्टोरिकल प्रस्पेकिरव, अटलांटिक प्रकाशन, नई दिल्ली 1986, पृष्ठ संख्या 91–92
4. यादव, के0 सी0, हरियाणा का इतिहास (1803–1966), गुप्ता प्रिंटर्स, दिल्ली, 1981, पृष्ठ संख्या 152–155
5. जुनेजा, एम0एम0, हिस्ट्री ऑफ हिसार, मॉडर्न बुक पब्लिकेशन, हिसार, 1989, पृष्ठ संख्या 126–127
6. यादव, के0सी0, हरियाणा का इतिहास (1803–1966) पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 159–160
7. प्रभाकर, देवीशंकर, स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा, उमेश प्रकाशन, दिल्ली, 1976, पृष्ठ संख्या 185–186
8. यादव के0सी0, पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 159–160
9. प्रभाकर, देवी शंकर, पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 187–188
10. थानी योगीराज, हरियाणा : भारत दर्शन माला, दिल्ली–6, 1974, पृष्ठ संख्या 74–75
11. जुनेजा एम0एस0, पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 144–151
12. प्रभाकर, देवी शंकर, पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 207–209
13. यादव के0सी0, पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 177–178
14. प्रभाकर, देवी शंकर, पूर्व उद्घृत, पृष्ठ संख्या 258–263
15. वही।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 115-117

रमणिका गुप्ता के कथा-साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन संघर्ष

श्वेता कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राधा गोविंद विश्वविद्यालय।

आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी' इन दो शब्दों से बना है जिसका अर्थ है प्रारंभ से निवास करने वाले। अतः आदिवासी शब्द के अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी देश के मूल निवासी हैं।

आदिवासी शब्द की परिभाषा अनेक विद्वानों ने दी है। विभिन्न मत-मतांतर होते हुए भी कहा जाता है कि, आर्य आक्रमण के कारण आदिवासी पराभूत हुए। वे अपनी रक्षा हेतु जंगल में रहने लगे। स्वाभाविक है कि इनमें पिछड़ापन आ गया। इस पिछड़ेपन से उन्हें : आदिवासी' कहना अनुचित है। अतः देश के मूल निवासी के रूप में आदिवासी कहना अत्यंत सार्थक एवं उचित है।[1]

'आदिवासी' शब्द की व्याख्या करने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा हुआ है। मानक हिंदी कोश में आदिवासी शब्द का आर्य, 'किसी स्थान पर रहने वाले वहां के मूल निवासी को दिया गया है। भारतीय संस्कृति कोश में लिखा है कि ''नागर संस्कृति से दूर रहने वाले मूल निवासी एवं आर्थ और द्रविड़ इन दो मानव समाज को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत या अन्य विदेश से भारत के पर्वत पहाड़ियों, जंगल में रहने वाली वन्य जाति को आदिवासी कहा जाता है। ''मराठी विश्वकोश में लिखा है कि ''नगर संस्कृति से दूर तथा अलिप्त हुए लोग संबंधित प्रान्त के मूल निवासी ही आदिवासी हैं।''[2]

वस्तुतः आदिवासी भारतीय समाज की नींव और उसका निर्माता है। आदिवासी समाज की संस्कृति प्राचीन रही है। जंगल, जल और जमीन इनकी अपनी संपत्ति होती है। यह समाज स्वाभिमानी, निर्मोही, अज्ञानी, अंध श्रद्धालु और प्रगति से आज भी दूर है। आदिवासी जनजाति का जंगल, पर्वत, पहाड़ों, घारियों कापरस्पर संबंध रहा है। आदिवासी समाज की सामूहिकता प्रधान प्रवृत्ति होती है। उनके उत्सव, देवी-देवता, उनके पूजा, मृतात्मा, भूत-पिशाच को संतुष्ट कराने हेतु उत्सव-पर्व का आयोजन यह समाज करता रहा है। संकट से मुक्ति पाने के लिए, देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि की प्रथा इनमें रही है। लोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य, आदिवासी मन का दस्तावेज रहा है। गुदना प्रथा सौन्दर्य वृद्धि और धार्मिकता का प्रमाण रहा है। रूढि प्रथा, परंपरा का निर्वहन करने वाला एक मात्र समाज आदिवासी है। यह समाज झोपड़ी में, कम-से-कम कपड़े पहनने वाला, शोषित, जंगल की संपदा पर निर्भर, अप्रगत व्यवसाय करने वाला रहा है। सही अर्थ में जंगल का राजा आदिवासी है।

आदिवासी कहानी में आदिवासियों के उस भाव–संसार को बुना गया है जिसे बौद्धिक व साहित्यिक जगत में 'ट्राइबल ड्योज' के रूप में जाना जाता है। इसी क्रम में रमणिका गुप्ता का नाम भी लिया जाता रहा है। उनके द्वारा रचित कहानियों का विषय मूलतः बिहार, झारखंड तथा उसके आस–पास के क्षेत्र जिसमें हजारीबाग, धनबाद, राँची, चायबासा एवं बिलासपुर आदि क्षेत्रों की मजदूरनियों का यातनामय सर्वहारा वर्ग (सर्व से हारकर जीवन जीने वाला आदिवासी जीवन की कहानी है। इन कहानियों में लेखिका पारस्परिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, समीकरणों से लैस यातनामय जीवन को चरितार्थ करती है। इन कहानियों में परंपरा से स्थापित वर्णाश्रम धर्म की कठोरता एवं वर्ग–व्यवस्था के तहत सामंती सोच एवं जमींदारी जुल्म के कारण पशु–स्वरूप बनाए गए सर्वहारा वर्ग का सजीव चित्र उपस्थित दिया गया है। रमणिका गुप्ता द्वारा लिखित कहानी –संग्रह 'बहू जुठाई' इसका जीवंत उदाहरण है। इसमें कहानियाँ – 'चिड़िया', 'चमेली', 'बहू जुठाई', 'चन्दा मर नहीं सकती', 'परबतिया', 'जिरवा और जिरवा माय', 'प्यारी', 'खुश रही', 'जिन्दा रहने के लिए, ललिता, 'वह जिएगी अभी 'आदि संग्रहित हैं। इन कहानियों में एक और पुरुष की मानसिकता या चित्र उपस्थित किया गया है। किंतु ये कहानियों पुरुष के विरोध में नहीं, व्यवस्था के विरोध में खड़ी दिखाई देती हैं।[3]

'चन्दा मर नहीं सकती' में चन्दा के माध्यम से लेखिका शिष्ट समुदाय के द्वारा छीने गए अपने अधिकारों से विच्छिन्न स्त्री का चरित्र उठाती है। चन्दा अपने अधिकारों के छीन जाने तथा उस पर हो रहे जुल्म से पश्चाताप करती दिखाई देती है, चन्दा की चुप्पी पूछ रही थी अपने–आप से, ''इतने बरस मैने क्यों सहा वह जुलम? क्यों गंवाए जिंदगी के वे सुनहले बरस, वे बाँदी से क्षण, वे अनमोल घड़ियों, जो मैं माणिक के साथ बिता सकती थी, क्यों इतनी देर लगी मुझे मुक्त होने का निर्णय लेने में, क्यों?"[4]

इसी प्रकार, उनकी अन्य कहानियों में भी आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष का चित्रण कई रूपों में व्याख्यायित हुआ है। आम आदमी सिर्फ आम आदमी बनकर न रह जाए इसका पूरा ख्याल रमणिका जी रखती हैं। उनके पात्रों की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे शोषित अवश्य हैं किंतु नियतिवाद नहीं हैं। वे अपने शोषण का विरोध स्पष्ट रूप से करते हैं और शोषित समाज के लिए प्रेरणा स्रोत बनते हैं ताकि वे भी अपने शोषण का विरोध करें, अपने अधिकारों को जाने–समझे और मुख्य धारा के लोगों की तरह सर उठाकर समाज में जिए।

रमणिका गुप्ता द्वारा रचित 'सीता' और 'मौसी' ऐसे उपन्यास हैं जिसमें दो अविवाहित आदिवासी स्त्रियों केशोषण और उनके संघर्ष की दास्तान कही गयी है। यह उपन्यास उस समय लिखे गए जब विकास के नाम पर आदिवासी संस्कृति, सभ्यता, उनकी पहचान तार–तार हो रही थी और अपनी संस्कृति और पहचान, भाषा को बचाने के लिए आदिवासी संघर्ष कर रहे थे।

'सीता–मौसी उपन्यास की मुख्य पात्र दो आदिवासी महिलाएं हैं जिनके माध्यम से समाज में बदलती स्त्री की दशा को समझा जा सकता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों के विस्थापन की भी समस्या को दर्शाया गया है। 'सीता' ऐसी महिला है जिसका पूरे जीवन शोषण होता रहा। 'सुमित्रा' अपनी चार बेटियों– 'सीता', 'प्यारी, 'रनिया, 'सरस्वतिया' के साथ रांची के 'खूंटी' गाँव से राजा की सदान 'बेदला (कोयला खदान) में काम करने आई है जिसका मुख्य कारण गरीबी है। दूसरे इनकी धारणा भी कि खेती के समय खेती करेंगे किंतु खाली समय में क्या करेंगे? जीवन–यापन कैसे होगा – ''खेती का क्या भरोसा? वर्षा नहीं हुई, तो भूसे मरने की नौबत आ जाएगी। सदान में तो नगद टटका 'पैसा मिलेगा, 'औरों' जमीन कीन सकते हो गाँव में। अभी वक्त है चलो, नहीं

तो दिकू लोग काम हथिया लेगा... खट के भाड़ा भी उतर जैईते।''[5] महिलाओं के लिए कई समस्याएँ होती हैं जो यहाँ भी थीं। ठेकेदारों, मैनेजरों और कारिन्दों द्वारा उनका यौन शोषण भी होता है। सीता भी इसका शिकार होती है। शराबी पति छोड़कर चला जाता है वह मुंशी यासीन मियाँ पर विश्वास कर शादी कर लेती है। जबकि यासीन सिर्फ सीता के शरीर से प्रेम करता था, वह अपनी ही बेटी को अपना नाम तक देने को तैयार नहीं – ''अपनी बेटी के बाप के नाम में तुम अपने ही बाप का नाम लिखवा देना, मेरे नाम के बदले।''[6]

सीता अपनी जंग शुरू करती है कोयला खदानों से।

धर्म व जाति को वह अपने आदिवासी समाज के नजरिए से देखती है। आर्थिक स्तर पर मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। 'मौसी' उपन्यास में आदिवासी समाज पर पड़ते बाहरी प्रभावों और उसके चलते स्त्रियों की हीन होती दशा का चित्रण है। आज आदिवासी स्त्रियाँ खरीदी–बेची जा रही है जिस पर न तो अभिजात्य आदिवासी चिंतित हैं और न ही सरकार। दोनों उपन्यास, आदिवासी समाज के दो पहलू हैं। मूलतः रमणिका गुप्ता ने अपने साहित्य में आदिवासी जीवन संघर्ष के कई रूपों यथा–स्त्री–पुरुष का संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, धार्मिक संघर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष आदी, को उजागर किया है।

संदर्भ :-

1. रघुवंशी, डॉ. महेन्द्र, हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – 2021, पृ० 14
2. वहीं, पृ० 14–15
3. अमीन, डॉ० सन्ना प्रसाद (सं०), आदिवासी कहानी साहित्य और विमर्श, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, संस्करण – 2020, पृ० 183
4. गुप्ता, रमणिका, बहू जुठाई, शिल्पयान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण–2010, पृ० 44
5. नेगी, स्नेह लता, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, संस्करण – 2021, पृ० 162
6. गुप्ता, रमणिका, सीता–मौसी, ज्योतिलोक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2010, पृ० 370

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 115-117

THE ARTISTIC BEAUTY OF ARUN JOSHI'S NOVEL

PRIYANKA KUMARI
RESEARCH SCHOLAR (ENGLISH), BNMU MADHEPURA

Abstract :-

Arun Joshi is one of the not many Indian writers in English who has effectively uncovered nuances and complexities of contemporary Indian life. He has created convincing work of fiction. This paper targets depicting the problem of current man in Arun Joshi's books The Foreigner (1968), The Strange Case of Billy Biswas (1971), The Apprentice (1974), and The Last Labyrinth (1981) Through his works, Joshi has attempted to extend the emergency of the urbanized and profoundly industrialized present day development with its dehumanizing sway on the person. Arun Joshi had been significantly affected by existentialist scholars like Albert Camus, Sartre, and Kierkegaard. Being an extraordinary craftsman of mental knowledge, Joshi digs profound into the inward openings of human mind. Arun Joshi provided another guidance and measurement to the Indian English tale. His books outline the profound misery of his desolate questers. Life's importance, as per Joshi, lies not in the polished surfaces of assumptions however in obscurity overgrown mazes of the spirit.

Keywords :- Fiction, Urbanized, Craftsman, Assumptions, problem of current man, Obscurity etc.

Arun Joshi, an administration chief via preparing and calling, conceived at Benaras, uttar Pradesh on July 7, 1939 as the most youthful child of Dr.A.C.Joshi and Mrs.Sumitra Joshi, had an amazing scholarly profession which incorporates a science certificate from Kansas University, U.S.A., and a M.S. degree in Industrial Management from Massachusetts Institute of Technology, U.S.A. Subsequent to working at a psychological clinic in the United States for a brief period, Joshi got back to India in 1961. Before long, he joined the Delhi Cloth and General Mills Co., Delhi as the head of its Recruitment and Training Department. He held the situation of Head of the DCM Corporate Performance Assessment Cell, and Secretary, DCM Board of Management. At present, Joshi is the Executive Director of Shri Ram Center for Industrial Relations and Human Resources, New Delhi.

He is likewise connected with the Shri Ram Center for Art and Culture, and Hindu College,

Delhi, as Member of their Governing Bodies. Joshi has set up his own businesses, fabricating items, for example, diesel motors, machine instruments, foundry items and car parts. Joshi made an imprint as an Indian English author with the distribution of his first novel, The Foreigner (1968). The remainder of his books—The Strange Case of Billy Biswas (1973), The Apprentice (1974), The Last Labyrinth (1981), and The City and the River (1990) have additionally been generally welcomed in the artistic circles. In 1979, at the greeting of the East-West Center, Joshi took an interest in the World journalists' Conference held at Honolulu, Hawaii, U.S.A. In 1983, Joshi won the esteemed Sahitya Akademy Award for his novel, The Last Labyrinth. Aside from the books referenced above, Joshi has additionally distributed an assortment of ten short stories entitled The Survivor (1975). Another short story, "The Only American from our Village," has showed itself in Quest (Mar-Apr, 1975) and furthermore in Contemporary Indian English Stories altered by Madhusudan Prasad. Himself a business person, Joshi has likewise distributed two books on the business world: Lala Shri Ram: A Study in Entrepreneurship and Industrial Management (1975), and Remembering Lala Shri Ram: Reminiscences on his 100th Birthday (Edited, 1984).

Introduction :-

Arun Joshi has evolved a style of his own that is flexible enough to communicate the varied experience of his characters with perfect ease. The quality of his novels lies in the authenticity of his scenes and it is evident from the accurate descriptions of life of Indian students in New York and Boston, the life of District collector, the corrupt practises and manipulations of Indian bureaucrats and the photographic documentation of the tribal region in central India and of the life of its people.

The strength of his narration and the superb control of his style evoke the intrinsic flavour of each place he describes. The evocative power of his narrative style is evident in his depiction of the mystical experience of spiritual regeneration that Billy Biswas undergoes in The Strange Case of Billy Biswas. His style is apparent. He depends entirely on the resources of his narrative style, which is apparently meandering but always under control and on his evocative language to recreate the journey of the human soul into the mysterious other world. It is this narrative skill that turns The Strange Case of Billy Biswas from a factual record of real events into an artistic restatement of the human quest for cultural identity and spiritual commitment. Again because of this stylistic excellence he transmutes the tract material of The Apprentice into a fictional re-enactment of the anguished search of a guilt-stricken consciousness for salvation. The plots of Arun Joshi’s novels are related to the upper class and even when the subject matter is drawn from the life of the poor, it has been narrated from the viewpoint of the upper-class narrator.

A significant fact about his fictional world is that in his novels he is concerned with the decaying

upper crust of the Indian society. He satirises the glistering flimsiness of the Indian affluent society. The Foreigner, The Strange Case of Billy Biswas and The Last Labyrinth deal with the decaying crust of the Indian society. In the Apprentice, Ratan Rathor rises to this status while in The City and the River there is a clash between the two. Arun Joshi's characters belong to the upper-class society except for the mud people in The City and the River. They are complex figures and as such they are seldom at ease with themselves. They go on developing and suffering the different schism of modern life. The major characters in his novels seem to be lost in the crisis of their identity, search for meaning. His fascination for dealing with existential themes in which the characters get lost in the mazes of their existence is also in keeping with the favourite image of the maze in the post-modern literature. His novels are peopled with educated-uneducated, urban, rural and primitive figure. There are primitive, tribal characters which naturally require a different language and expression from that of educated, civilized upper-class.

Discussion :-

The first-person narrative technique is Joshi's favourite. He employs it in his novels The Foreigner, The Apprentice and The Last Labyrinth. This omniscient narrative technique is adopted by the protagonist himself. In the Strange Case of Billy Biswas, the narrative technique is that of omniscient point of view of Billy's friend, Romesh Sahai, who knows about his strange case as an investigating officer of his past friend. In the City and the River, it is the omniscient author who narrates the tale in the third person. He has not adopted one point of view and he has adopted one consistent point of view in the novel. Arun Joshi makes his novels readable as possible and chooses a particular functioning. It is this special care and the recognition of the need to establish human contact with his readers that make his novels so extremely readable and assert the readers undivided attention. The academic world also crops up in some of Arun Joshi's novels such as The Strange Case of Billy Biswas and The City and the River. Arun Joshi's interest in the academic world has been revealed by his several characters.

In the Foreigner Sindi is on his visit to New-Delhi. Sindi leaves his academic career in the U.S. to come back to his forefather's land India. In the Strange Case of Billy Biswas, the protagonist Billy Biswas is appointed as a faculty member in the Department of Anthropology of Delhi University. His escape into the Saal forest of the Maikala hills is for his academic mission to study the tribal world along with his students. Leila Sabnis in The Last Labyrinth is an academician interested professionally in philosophy and as a pastime in foreign languages. In the City and The River, the academic world plays a dominant role. The Hermit of the Mountain, The Great Yogeshwara, the Professor and his disciple Master Bhoma are all associated with the academic world. The Foreigner the narrative point of view is that of "the protagonist narrator's point of view" (Raizada 14). Protagonist,

Sindi Oberoi he himself is the narrator. It is a sort of autobiography as the narrator protagonist begins the novel as an 'I' character. Herein Arun Joshi deals with the hero's physical contact with society and his psychological developments which enables him to solve his problems. The narrative of the novel oscillates between the past and the present and vice versa. Its narrative technique is oblique, in a flash back and not straight forward. There is the combination of British, American and Indian English.

There are also straight forward third person reporting and also alternations between first person narrative along with free, indirect narration. The narrator sometimes narrates the story in the mood of introspection and sometimes he takes recourse to telling the story in retrospect of again changing over to reporting the story in extra-version. The fictional technique of The Foreigner is influenced by T.S Eliot's poetic technique used in "The Love Song of J. Alfred Prufrock". Sindi conveys his sense of futility by using phrases from T. S. Eliot as "irredeemable time", "the eternal joker snickered within me", "stood in graveyard cars" (159) In the present novel there is a colourless cosmopolitan quality as Sindi he himself is an embodiment of cosmopolitanism. He is an uprooted young man living in the latter half of the twentieth century and who has become detached from everything except himself. The narration keeps up our interest constantly.

Joshi recognises a reality beyond a mere phenomenal world, a reality which the artists could imagine and capture by giving a consistent form to the shapeless facts of human existence"(5) . Conrad?s narrative technique in Lord Jim has great influence upon the witness-narrator?s point of view in the present novel. Like Marlow in Lord Jim, "Romi performs the task as an involved friend and as a detached narrator. Both become more and more involved as the novel progresses. Both follow a tale to the end. And they have another feature in common"(6) . In the similar vein here in the present novel Romi narrates the story. It resembles The Heart of Darkness. Like Kurtz, Billy forsakes the civilized human society and adopts himself to the primitive and has a native mistress. Arun Joshi?s third novel The Apprentice is a real masterpiece and a most compelling work of art. In its fictional technique adopted by Arun Joshi is surely one of the primarily motivations of uniqueness. It is cast in the form of dramatic monologue to that of Albert Camus? The Fall. It follows the novel narrative technique, which, however, has been a very favourite device which poets use in dramatic monologue.

Conclusion :-

Arun Joshi takes his characters into no-man?s land, the past as well as the future. The significant thing in it is that the characters in it have a sort of anonymity about them. The characters are mostly known by their positions and very few of them love their first names. Even the city and the river are anonymous. The city in which the action of the novel takes place is "a nowhere city" and the river is the symbol of the continuity of life, is also nameless. The ageless Yogeshwara has a disciple known as

Nameless-One. The Grand Master, the Astrologer, the Police Commissioner, the Minister of Trade, the Professor and the boatmen have no personal tags attached to them. Even those who are known by their personal tags have rather connotative names typical to the humorous characters. Bhumiputra, a symbol of rebellion, means the son of soil. The General of the Army is called General Starch for his stiff attitude. Nevertheless, the characters represent not only types but also individuals. The Grand Master is a character to represent the collusion of the businessmen with politicians for their sharing profits. Being a fantasy novel, it has some hazy characterization, Anup Beniwal affirms that "the characters do not develop spontaneously and lack psychological depth" (Dhawan)(10) . This is to say that most of the characters in it are flat ones and lack in the rotundity of the great fictional characters.

References :-

1. Abraham Joy. "The Foreigner: A Study in Technique." The Novels of Arun Joshi. Ed. R. K. Dhawan, New Delhi: Prestige Books, Print 1992.
2. Bande Usha. "Archeypal Patterns in The City and the River". The Novels of Arun Joshi. Ed. Dhawan R.K., New Delhi: Prestige Books Print 1992.
3. Dhawan RK. Ed. The Novels of Arun Joshi. New Delhi: Classical Publishing Company, Print 1986.
4. The art of fictional technique in the novels of Arun Joshi by Dr. Vinod Kumar
5. Mathai, Sujatha, I am a Stranger to My Books,The Times of India, 9 July 1983: 6
6. O.P.Mathur, "Survival and Affirmation in Arun Joshi's Novels," World Literature Today 63.3 (1989) : 426.

ADDRESS-
D/O- ANANT KUMAR
AT- WARD NO 09 AZAD NAGAR , MADHEPURA
PIN – 852113 (BIHAR)
EMAIL- sonipriya3991@gmail.com
MOBILE NO- 7319647842

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 123-128

DIASPORIC CONSCIOUSNESS IN THE NOVELS OF BHARATI MUKHERJEE

RAJEEV RENU
RESEARCH SCHOLAR (ENGLISH), BNMU MADHEPURA

ABSTRACT :-

Diaspora is defined as the dispersion of any people from their traditional homeland. Diasporic literature of the 21st century is enriched by the issues of diaspora, transnationalism, hybridity and identity crisis. These are reflected in the writings of Salman Rushdie, Amitabh Ghosh, V.S.Naipaul, Bharati Mukherjee and many others. Bharati Mukherjee in her novels attempt to bridge the gulf between "home" and "exile". Nostalgia, directness towards the culture you are absorbing, restiching and the divided settler evolving into a permanent alien getting transformed into a perfect immigrant are the elements of consciousness. In the present paper an attempt has been made to investigate or recognise the elements of diasporic consciousness in Bharati Mukherjee's novels.

Keywords :- Diaspora, transnationalism, hybridity, assimilation, identity crisis.

Introduction :-

In the genre of Indian American diasporic fiction Bharati Mukherjee is one of the finest writers who meticulously deals with the phenomenon of migration, the status of new immigrants and the feeling of isolation and identity crisis, often experienced by the expatriates. Her writings bring unique insight and profundity to the immigration and assimilation of South Asians in America. Herself being a migrated author Bharati Mukherjee is conscious about the socio-cultural and psychological conditions which the characters face in the host country and also throws light on new possibilities for social amalgamation and cultural creolization. In an interview to the Massachusetts Review, Mukherjee states: "The immigrants in my stories go through extreme transformation in America and at the same time, they alter the country's appearance and psychological make-up" (654). Her writings cover a vast canvas of diaspora issues such as dislocation, fragmentation, nostalgia for home, marginalization, racial hatred, cultural and gender hatred, racial conflicts, identity crisis, generation differences, transformation of subjectivities, emergence of new patterns of life with cross-cultural interaction

and disintegration of family units etc. Bharati Mukherjee choses herself to be addressed as an American writer of Bengali-Indian origin. Faced with the dilemma of her own cultural location in the new nation, Mukherjee observes: We immigrants have fascinating tales to relate. Many of us lived in newly independent or emerging countries which are plagued by civil and religious conflicts. We have experienced rapid changes in the history of the nations in which we lived. When we uproot ourselves from those countries and come here, either by choice or out of necessity, we suddenly must absorb two hundred years American history and learns to adapt to American society. Our lives are remarkable, often heroic. (38) While dealing with the issues of immigration to and assimilation with a new land, a new culture, a new society and a new standards and convention, Bharati Mukherjee depicts her characters as lost souls who remain indecisive about their status and search for their identity, their roots and their heritage. Bharati Mukherjee's career can be conveniently divided in three stages: the phase of Expatriation (from 1972 to 1979), the phase of Transition (1980 to 1988), and the phase of Immigration (from 1989 onwards). In the phase of Expatriation she wrote two novels and a nonfiction; The Tiger's Daughter (1972), Wife (1975) and Days and Nights in Calcutta (1977). During the period of Transition she wrote short stories collections and a non-fiction; Darkness (1985), The Sorrow and the Terror: The Haunting Legacy of the Air India Tragedy (1987) and The Middleman and Other Stories (1988). In the phase of Immigration she wrote four novels; Jasmine (1989), The Holder of the World (1993), Leave It to Me (1997) and Desirable Daughter (2002).

Diasporic Experiences of Mukherjee's Women Protagonists :-

Bharati Mukherjee is renowned for narratives whose protagonists are Indian immigrant female characters. Her writings deal with women who experience culture clash and identity crisis as a result of their displacement, yearn to determine their identities through a psychological transformation in their diasporic journeys: "The finding of a new identity…. the painful or exhilarating process of pulling yourself out of the culture that you were born in to and then replanting yourself in another culture" (Nayak 123). In her novels Mukherjee attempts to express the newfound identity of immigrant women who struggle to survive in an alien land. Mukherjee asserted that in diasporas one's biological identity may not be one's real identity as immigration brings changes, physical and psychological both. She realized that her transformation was a two-way process because it affected both the individual as well as the cultural identity. Salman Rushdie aptly describes this psychological condition of immigrants in his essay Imaginary Homelands :

I am speaking now of those of us who emigrated…and I suspect that there are times when the move seems wrong to us all, when we seem, to ourselves, post lapsarian men and women. We are Hindus who have crossed the black water; we are Muslims who eat pork. And as a result- as my use of

the Christian notion of the Fall indicates- we are now partly of the west. Our identity is at once plural and Partial. Sometimes we feel that we straddle two cultures; at other times, that we fall between two stools (Rushdie 15). Mukherjee's first novel The Tiger's Daughter is a marvellous manifestation of an immigrant's quest for identity amid cultural conflict. It was conceived in a very difficult phase of life when the heroine of the novel was struggling to determine her own identity in the Indian culture. The story of the novel runs parallel to Mukherjee's own experience when she returned to India with her Canadian husband Clark Blaise in 1973. The protagonist Tara Cartwright Banerjee returns her home after gap of seven years to find her identity and her place in the society. Tara goes America for higher study. In Poughkeepsie she feels discrimination and humiliation. She falls in love with David Cartwright. David is completely western and he is not interested about her culture and family genealogies.

After landing at Bombay airport, she views India with the keenness of foreigner. She is welcomed warmly by her relatives, but her response is very cold. Seven years back on her way to Vassar "she had admired the house on Marine Drive, had thought them fashionable, but now their shabbiness appalled her" (22). Tara's reaction towards the railway station is also one of despise. She "thought the station was more like a hospital; there were so many sick and deformed men sitting listlessly on bundles and trunks" (24). Though she is surrounded by the army of relatives at the Howrah station, she feels completely alone. In America in spite of having a white husband, she always feels isolated and stranger. When she is worshipping with her mother, she forgets the rituals. She realizes that "it was not a simple loss… this forgetting of prescribed actions; it was a little death, a hardening of the heart, a cracking of axis and centre" (64).

She spends much of her time in the Catelli-Continental hotel in the company of her friends. But after sometimes their attitudes towards her marriage unsettles her. They want to listen stories about American lifestyle, television, automobiles, frozen foods, and record players but they are not ready to accept her marriage with foreigner. Her friends and relatives make her feel that her marriage is imprudent. Tara Banerjee is torn between two cultures. She feels isolated, alien, and rootless in America so she decides to marry David. Despite having a white husband, she cannot assimilate in mainstream American culture. In an attempt to Americanize herself, she loses her Indian identity and becomes expatriate. The last pages of novel are full of riots of Naxalite movement. Tara decides to go back to America, and calls her friends at Catelli- Continental to inform them about her plan. In meantime the mob marches towards Catelli-Continental so she and her friends are surrounded by rioters.

The novel ends with "Tara, still locked in a car across the street from the Catelli-Continental, wondered whether she would ever get out Calcutta, and if she did not, whether David would ever know

that she loved him fiercely" (247- 248). What Mukherjee wants to show is that Tara becomes lonely in her own native land, whereas shewas expecting for a long time in America that, "all shadowy fears of the time abroad would be erased quite magically if she could return home to Calcutta" (25). The same note of identity crisis and cultural conflict can also be seen in Mukherjee's novel Wife which focuses on how cultural displacement or dislocation cause new identities but through a rigorous path. In Wife, Mukherjee expresses and challenges the hardships of multicultural society of an immigrant.

In an interview Bharati Mukherjee said about the novel, "It was very much an immigrant book. The Wife was going through feminist and immigrant crises. The style was distinctly American in that omniscience was no longer natural to me. I was closer to my character and the material was more passionate. I had sacrificed irony for passion" (Steinberg 33). Dimple Dasgupta, the heroine of the novel migrates to America because of her marriage with Amit. She imagines that moving to U.S. will bring about a sea-change in her life, as she believes firmly "real happiness was just in the movies or in the West" (47). Though married to an educated husband Dimple is not able to strike a balance between the two juxtaposed worlds, the one she left behind and the other she has come to live in. She was always been conscious of her foreignness. On more than one occasion she realizes that she is an outsider in America. She becomes unable to fit in the culture of America and it fills her with a sense of identity crisis. Thus Dimple appears as a victim of conflicting cultures. She fails to be at peace with herself as well as with her surroundings.

Bharati Mukherjee in her novels explores the struggle of immigrants living in the United States and Canada. In her fiction she mirrors her own life as an immigrant first to Canada and later to the United States. Many of her characters are Indian women who are victims of racism and sexism. We can discern two themes in her works. The first is the immigrant experience and the feeling of alienation as an expatriate. The second is the mistreatment of women in Indian society owing to the overburdening expectation to conform to societal norms and tradition. Mukherjee in her first novel, The Tiger's Daughter a loosely autobiographical story about an East Indian immigrant who is unable to adjust to North American culture, but who at the same time is painfully aware that she will never again belong in the culture she has left behind. This novel addresses Mukherjee's personal difficulties of being caught between two worlds, home and exile. The Tiger's Daughter can also be seen as the story of a young girl named Tara who comes back to India after seven long years of being away, and on her return finds only poverty and turmoil.

It reflects Mukherjee's own experience of coming back to India with her American husband in 1973, when she was deeply affected by the chaos and poverty of India. The novel is a starting point with Mukherjee's treatment of the theme of the conflict between Eastern and Western Worlds, as in

her other works. Tara is born in Calcutta, schooled in the States and married to an American gentleman. After spending seven years abroad, the beautiful, luminous Tara leaves her American husband behind and comes back to India. But the place she finds on her return full of strikes, riots and unrest is vastly different from the place she remembers. Yet she seeks to reconcile the old world that of her father, the 'Bengal Tiger' with the new one of her husband David. Mukherjee introduces Tara to her readers with typical yearning of an 'exile' for her 'home'.

Tara Banerjee Cartwright makes a trip to India, her home, after staying seven long years in America. When she places her foot on the soil of her dearest home, she feels that 'home is no more home'. She finds it tough to adjust to her friends and relatives in India, even with the traditions of her own family. Tara becomes lonely in her own native land, whereas she was expecting for a long time in America that, "all shadowy fears of the time abroad would be erased quite magically if she could return home to Calcutta" (Daughter). In the story of Desirable Daughters there are three sisters who grow up in Calcutta and eventually are scattered in three different corners of the globe with their individual lifestyles. Padma leaves in New Jersey among the elite class of Indian migrants. Parvati leads a comfortable life in a posh locality in Mumbai in a typically aristocratic Hindu family.

Conclusion :-

Bharati Mukherjee has achieved great recognition within a short span of time as a diasporic writer through her fictional works on immigration, cross-cultural experiences, and assimilation with unique cross-cultural sensibility from her personal experiences as an expatriate and immigrant in the United States. Mukherjee's creativity is focused with razor sharp precision on her diasporic imagination which transcends the rhetorical dimension of the text and becomes the material core of Mukherjee's narrativity. Refashioning of self is a prerequisite in Bharati Mukherjee's fictions. Each of the characters of Bharati Mukherjee's fiction such as Jasmine, Tara Cartwright, Dimple and Tara Chatterjee re-incarnates herself with a new identity as a strategy to pave a path to a future, which provides freedom of expression, be it in their sensuality or be it the voicing of their suppressed selves. The process of reincarnation once started, through dislocations and re-locations, the women in Bharati Mukherjee's fictions cannot regress back nor can they stop it. The only thing they resort to, is to be re-placed into the New World with rupturing the body, mind and soul in an ongoing resort to root search. She also refers to the transformative energy in her women characters and says: 'They take risks they wouldn't have taken in their old, comfortable worlds to solve their problems. As they change citizenship, they are reborn.' In conclusion it may be said that Bharati Mukherjee has explored many facets of diasporic consciousness and immigrant experience of dislocations, ruptures and relocation of the migrant women in her fictions.

References :-

1. Alam, Fakrul. Bharati Mukherjee. New York: Twayne Publishers, 1996.Print.
2. Armstrong, John A. "Mobilized and Proletarian Diasporas". American Political Science Review. 70.2 (1976) :393-408. Print.
3. Ashcroft, Bill. Post-Colonial Studies: The Key Concepts. London: Routledge, 2007. Print.
4. Blaise Clark and Bharati Mukherjee. Days and Nights in Calcutta. New York: Doubleday, 1977. Print.
5. Brah, Avtar. Cartographies of Diaspora: Contesting Identities 1996. London & NY: Routledge, 2005. Print.
6. Brubaker, Rogers. Citizenship and Nationhood in France and Germany. Cambridge: Harvard University Press, 1992. Print.
7. Dhawan, R.K. Indian Women Writers. New Delhi: Prestige Books, 2001. Print.
8. Nayak, Bhagabat. Quest for Identity in Postcolonial Indian English Fiction. New Delhi: Adhyayan Publishers, 2010. Print.
9. Nayar, Pramod. Postcolonial Literature: An Introduction. New Delhi: Pearson, 2008. Print.
10. Rushdie, Salman. Imaginary Homelands. London: Vintage, 1991. Print.
11. Steinberg, Sybil. Bharati Mukherjee. Publishers Weekly, 1989. Print.

ADDRESS -

S/O – RAMPRAKASH KUMAR RENU

AT + PO- CHIROURI

PS- CHAUSA DISTRICT- MADHEPURA

PINCODE - 852213 (BIHAR)

EMAIL- rajeevrenu112@gmail.com

MOBILE NO- 9931729219

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 129-133

DIASPORAS' CONSCIOUSNESS IN V.S.NAIPAUL'S A HOUSE FOR MR.BISWAS

SANJEEV RENU
RESEARCH SCHOLAR (ENGLISH), BNMU MADHEPURA

Abstract :-

Diasporic writing raises questions about home and nation. It affects to the lives of diaspora characters. V. S. Naipaul is a diaspora writer who broadens the depth of diaspora by focusing on the painful problems of immigrants in his writing. He occupies the unique place among the diaspora writers and he has given a creative direction to the diaspora writing. Naipaul presents the chaotic picture of immigrants who live in alien land. The novel A House for Mr. Biswas has elements of high comedy and tragic pathos which closely associated with Naipaul's own personal search for meaning in life. The present paper is a humble attempt to focus the diasporic sense of Naipaul's characters while living in an alien land.

Keywords :- Diaspora, Exile, House and Identity.

Introduction :-

V. S. Naipaul is the most controversial novelist of our times. The novel A House for Mr. Biswas (1961) is nothing but a struggling picture of East Indian people for getting a stable identity in West Indies. The novel is a struggle of a man who has a strong desire to own his house. It presents the East Indian Trinidadian society as it was before and after colonization affected them. The novel narrates the marginalized East Indian community in Trinidad. The characters in the novel have to face many struggles to establish themselves with a place to live in an alien environment. The house in this novel is a symbol not for homelessness but for freedom from slavery and injustice. Most of Naipaul's writing issue from a desire to understand his own position in the world. A House for Mr. Biswas is a journey towards the fulfillment of inner desire of home.

A House for Mr. Biswas is the masterpiece of V. S. Naipaul. The problem that he projects in his work is how an individual resists or overcomes the frustration and condition in migrations. In which he is placed and eventually succeeds or fails to survive and succeed. Naipaul's fictions thus

acquire a three dimensional significance-Historical, Social and Psychological, and Understand ability. Naipaul is at once a chronicler, historian and biographer. He is the author of more than twenty books of fiction and non-fiction and recipient of numerous honors, including the noble prize in 2001, the booker prize in 1971, and this novel is the best work of him.

It is a novel, which is created out of what he saw and felt as a child so it is written from the autobiographical point of view. The life of Mr.Biswas resembles the life of Naipaul himself, whose serious of the experience of exile and alienation while living in Trinidad seem to be portrayed through the character of his protagonist, Mr.Biswas. He struggles from his childhood because of the conventional society. He faces ups and downs in life. The society becomes an obstacle for maintaining is individuality, developing his status and achieving his goal without the support of his family. The main reason for his frustration starts when is not able to give shelter to his wife and children as he wished. Mr.Biswas, a failed pundit, an au dental Journalist, one of fictions enduring citizens, is an idea personified with lots of ancestral inputs. The novel traces a life from the isolated totally, rural community of the first decade of the twentieth century through its gradual contact with a larger society. Throughout the novel Mr.Biswas struggles to retain his individuality from immigrant consciousness of homeland. It is a kind of internal conflict which continues until his death.

Most of his writings issue from a desire to understand his own position in the world. These are identifiable with the diaspora people. Diasporic writers handle the identity problem in their works. Identities are not fixed. They are plural and partial. The migrants do suffer from the clash of two cultures. They have always ambiguous identity. So they construct imaginary homelands. A House for Mr. Biswas depicts the struggles of Indian immigrants towards acculturation. It depicts the exile's desire to strike roots and attain an authentic selfhood. Diaspora writing shows the strong concern with exile. Alwin Toffler said that the modern man is 'the new nomad'2 (74). He is in search of his own identity. Mr. Biswas realized the true meaning of home in his life. "And so Mr. Biswas came to live the only home to which he had some right. For the next thirty five years he was to be a wanderer with no place he could call his own" (40).The immigrants imitate colonizers to involve in cultural negotiation, which is called 'mimicry'. The way of mimicry takes them towards 'double consciousness.'

Naipaul's writing presents problem of homelessness, rootlessness, and alienation, mimicry in the hybrid communities. As Bruce King observes, "While the novels and short stories have seldom been about himself, they have reflected the various stages of his disillusionment with Trinidad, his despair with India and his concern with being a homeless ex-colonial"3 (108). One of the major themes of Naipaul's work is the colonial artist discovering his own artistic potentialities, for a West Indian writer who is disinherited by all traditions and at the same time exposed to all traditions. Mr.

Biswas is a modern version of everyman. He has been regarded as an everyman. He is the representative of modern man who struggles hard to purchase his own house.

"Cultural and psychological rootlessness are inextricable. In addition the harsh conditions of colonialism have left the west Indian crippling burdens of physical condition correspond so closely, the unhoused, poverty-stricken. West India is often culturally and spiritually dispossessed as well". (Boxhill 1976:49).

Mr.Biswas is frustrated by his family and hates the society which limits his opportunity. His frustration starts from the family which is the unit of society and continues to trouble him in the form of social norms. As we analyze frustration in psychology, frustration is a common emotional response to opposition. Related to anger and disappointment, it arises from the perceived resistance to the fulfillment of individual will. There are two kinds of frustration, internal and external frustration. The previous one may arise from challenges in fulfilling personal goals and desires, instinctual drives and needs, or dealing with perceived deficiencies, such as a lack of confidence or fear or social situations.

External cause of frustration involves conditions outside and individual, such as a blocked road or a difficult task. As mentioned before, the hero of the novel Mr.Biswas undergoes both frustrations in his life time. Internal frustration of Mr.Biswas arises when his idea of possessing his own house is constantly delayed through social situations. The external conflict arises when he is considered as an unlucky by his family and by the conventional society.

The title, Hanuman House is symbolic. It is named after monkey god, Hanuman which purposes for monkey business. It is as good as prison. The people who live in this house are lifeless and disturbed. It is symbol of darkness and decay. It is the place where old Hindu rituals are performed and the real spirit is bypassed. The old Hindu culture fails to survive long due to external influences of alien cultures. They celebrate 'Christmas Day' and Christian visitors often visit the house. "Mr. Biswas said, 'Well, since I had been in this house. I begin to get the feeling that to be a good Hindu you must be a good Roman Catholic first" (125).There is another symbolic significance of barracks which relates to regimentation. Mr. Biswas purchased his own house at Sikkim Street. It is a symbol of individual liberty where he plants flowers and trees and erects a boundary. "His portion of earth"(8).

The under lying tone of this novel is existential. He uses particular words, phrases, sentences and images. Words have meaning in situations and situations have involved the ability to use the language. He talks to a Negro builder, Mr. Maclean and arranges for the construction materials but Mr. Biswas could not complete the construction due to insufficient fund. Though, the house remains incomplete for want of fund and it remains incomplete forever like an unfulfilled dream to own a house in Mr. Biswas's life. Shashi Kamra writes in her book: "His was a society without heroes. It was

a multiracial immigrant, slave, colonial society with the drive ' and restlessness of immigrants' it was stunted society with the forms of traditions and culture surviving but the core lost, submerged, destroyed, rendered meaningless and unimportant" 5 (14). The world of A House for Mr. Biswas deals with Naipaul's own concerns as a displaced man in a socially deprived-society who struggles to preserve his existence.

Mr.Biswas hates the dictatorship of Mrs.Tulsi. He feels remaining in Hanuman House will crush his individuality. Therefore, he prepares to buy his own House. But it seems very difficult to attain his goal as soon as he wishes. So the internal frustration arises when his desire for a House becomes unattainable due to poverty and social suppression. Mr.Biswas moves to various place in order to give shelter to his family members. At first he goes to Green Valley where the single room makes him to move with his family and furniture, it leaves his feelings suffocated. So the intensity of alienation and displacement continue in this place. As he has become a reporter in the Trinidad Sentinel in Port of Spain he lives there for some time. Feeling that will be a great help for him to get a new House but the Trinidad Sentinel is taken over by new authorities. So he is disappointed to get a way for his expected life.

"Everything he now saw become sullied by his fear, every field, every house, every tree, every turn in the road ...so that by merely, looking at the world, he was progressively destroying his present and past"(66)

At the end Mr.Biswas exhausted all his savings to build the house in short hills. But the house is not conveniently suited. Shama has to walk a mile daily for shopping and there is also a problem of transportation. So the situation makes Biswas to shift his house again to port of where Mrs.Tulsi offers him two rooms. Even though the house is not the house of his dreams, it helps him to realize his responsibility as a father and husband. Mr.Biswas's suffering is that of a penniless individual struggling to possess a minimum basic necessity in the form of house. At one point of time, Mr.Biswas defiance seems to have lost much of its early freshness. His gestures are made in a fatigued manner, and these gestures last only long enough to be frozen into frustration and roaming here and there.

Conclusion :-

The Protagonist Mr.Biswas is a rootless man who desires for home in the novel A House for Mr.Biswas. The other characters in the novel are aware of their existence and identity in an alien land. They are in search of their biological and ethnic roots for creating their own identity. Throughout the novel, Mr. Biswas touches a pathetic condition diasporic life. The diasporic sense focuses on cultural crisis, rootlessness, fragmentation, frustration, and love for motherland. An idea of a house approves a positive approach to the problem of diaspora. Mr. Biswas's struggle is a long and disturbing one but

he is successful in his goal by achieving his dream of having a house of his own. It is astonishing achievement for a man of his limited and mediocre existence. To Mr. Biswas a house is not simply where one lives, it is one's national, cultural and spiritual identity.

References :-

1. Clemens, Walter C. Third World in V. S. Naipaul, 1982.Print.
2. Adams, Robert Martin. V.S.Naipaul. Hudson Review, 1989. Print.
3. Dr. Pandian I. B. Life and Works of V. S. aipaul: A Critical Study. Kanpur: Bhaskar Publications, 2009. Print.
4. Kamra, Shashi. The Novels of V.S.Naipaul. New Delhi:
5. Prestige Books 1990. Print. King, Bruce. West Indian Literature: The Macmillan Press Ltd.: London: 1979.Print.
6. Naipaul, V. S. A House for Mr. Biswas, Penguin Books: New Delhi 1992.
7. Toffler, Alwin. Future Shock Newyork; Bantam Books 1970.
8. Walsh, William. V.S.Naipaul. Edinburgh: Oliver and Boyd, 1973.Print.

EMAIL- sanjeevrenu43@gmail.com
MOBILE NO- 7488175569
ADDRESS-
S/O – RAMPRAKASH KUMAR RENU
AT + PO- CHIROURI
PS- CHAUSA DISTRICT- MADHEPURA
PINCODE - 852213 (BIHAR)

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 134-138

An Analysis of Environmental Degradation And Its Effect on Sustainable Development

Dr. Kiran Angra
Principal, MDSD College, Ambala City.

Abstract :-

These days, research on sustainable development is quite important. It is a growth strategy that aims to provide current growth without compromising or lowering the standard of living for future generations. Humans are given priority in sustainable development, which acknowledges their right to a productive, healthy existence in balance with the environment. The state of the ecosystem is deteriorating, and one of the global concerns right now is ecological imbalance. This essay aims to examine how environmental deterioration affects sustainable development.

Keywords :- Environment, Climate, Environmental Degradation,Health, Sustainable Development,

Introduction :-

The entirety of all components, both living and non-living, and how they affect human life are collectively referred to as the environment. Water, land, sunshine, rocks, and air are examples of non-living or abiotic components. All live or biotic elements include animals, plants, forests, fisheries, and birds. The environment's roles include supplying resources, sustaining life, and improving the standard of living. Everything that affects a person's quality of life, both living and non-living, is considered their environment.

Life on Earth originates from the environment, which also governs and dictates human existence, growth, and development, among all other activities. Ecology and environmental studies are crucial for planning and protecting resources for sustainable development, in addition to helping us understand and use them. Natural resources are to be protected, used, conserved, and enhanced for the benefit of both the present and future generations. Sustainable development is the rational and prudent use of our finite natural resources to enhance our economic, cultural, social, and environmental lives. It is a method of socioeconomic planning and development that upholds our dedication to preserving the state of the environment. It generally aims to maintain a sustainable balance between the requirements

of people, the environment, and the natural resources of the planet. Humanity is given priority in sustainable development, which also acknowledges that people have a right to a healthy, productive existence in balance with the environment.

Objectives :-

- To examine the effects of environmental degradation.
- To ascertain how Sustainable Development is affected by Environmental Degradation.

Methodology :-

The current investigation was carried out using the descriptive approach. The only secondary sources from which the data were gathered were books and research articles, among other sources.

Concept of sustainable development :-

The goal of sustainable development is to ensure that the requirements of both the current and future generations are met by managing and conserving the base of natural resources and directing institutional and technological contributions in that direction. The phrase "sustainable development" refers to social and economic advancement that satisfies present demands without jeopardizing the capacity of future generations to satisfy their own.

It is a method of development that aims to provide growth in the here and now without compromising or lowering the standard of living for coming generations. "Development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs" is how the Brundtland Report defines sustainable development. "Development which does not damage, and exists harmoniously with the eco-systems" is the main goal of sustainable development. Three essential aspects of sustainable development-

1. Economic Sustainability. 2. Social Sustainability.
3. Environmental Sustainability.

The concept of sustainable development is predicated on human objectives and an awareness of the long-term effects of human activity on the environment and its constituent parts. In recent years, research on sustainable development has become increasingly important. Future generations should inherit a safe, healthy, and resourceful environment, and sustainable development is the only way to achieve this provided we cease overusing resources, cut back on emissions and waste production, and preserve ecological balance. Using nature and its resources wisely to satisfy the needs and ambitions of future generations while preserving the ability to bring the maximum sustainable benefit to the present generation by :-

- Living within the environment's carrying capacity.
- Living in balance with nature.

- Realizing that the Biosphere is for future generations as much as for us.

The following are the main facets and components of sustainable development.

- Financial Stability.
- Reducing poverty and ensuring justice.
- Sustainable Socio-Political Relations.
- Ecological Sustainability.
- Intergenerational Fairness
- Equity within Generations
- Sustainable utilization and preservation of natural resources for the benefit of current and future generations

Concept of Environmental Degradation :-

The phrase "environmental degradation" is broad, encompassing the reduction and deterioration of environmental quality resulting from natural and human activities on a local, regional, and global scale. It might develop as a result of man-made or natural causes. On the other hand, an ecological imbalance indicates the deterioration of the ecosystem. Degradation of the environment is the result of ecosystems being destroyed, species extinctions, and the depletion of resources including soil, water, and air.

The following are some reasons why the environment degrades :

- The advancement of contemporary technology.
- The growing urbanization and habitation of areas.
- The expansion of factories and industries.
- The high rate at which natural resources are used.
- Natural resources are under threat.
- The growing number of people on Earth.

Impact of Environmental Degradation on Sustainable Development :-

One of the main concerns being examined in the globe today is environmental deterioration. More lately, a variety of contaminants have been harming the globe, making the impacts of environmental degradation more and more evident. Situated between 20 and 30 kilometres above sea level is the Ozone layer. It offers a beneficial layer that shields Earth from the sun's UV rays. The damage to the environment caused by human activity, chemicals, and the atmospheric emission of chlorofluorocarbons is what causes the ozone layer to thin. Lower agricultural productivity, skin conditions, and the demise of aquatic life are all caused by ultraviolet light.Greenhouse gas emissions into the atmosphere result in global warming, which in turn causes droughts, flooding, soil erosion,

and an increase in sea level. The following are some effects of environmental degradation.

- **Loss of Biodiversity :-** Pollution control, nutrient restoration, water source protection, and climate stabilization all depend on biodiversity to keep the environment in balance. Thus, a variety of environmental problems have a significant influence on Earth's biodiversity.
- **Climate change and global warming :-** Climate change would affect agriculture, forestry, and natural ecosystems like wetlands and fisheries. It would also alter precipitation patterns, ocean circulation, and marine systems. Global warming can have significant physical, environmental, and socioeconomic effects. Global populations would have health issues due to rising temperatures, which would also cause an increase in heat stress and a shift in the patterns of vector-borne illnesses. This would result in alterations to settlement patterns and widespread migration.
- In the face of environmental degradation, sustainable development is a pressing concern for all people. The environment's fast transformation is a major problem for the modern world. Global concern today is the environmental deterioration leading to climate change, global warming, and biodiversity loss. Sustainable development and the environment are two sides of the same coin. Therefore, there is a relationship between development and the environment.

Unplanned actions leading to significant pollution and excessive exploitation of natural resources can generate environmental and social problems. The idea behind sustainable development is to use natural systems to meet present demands without sacrificing those of future generations. The goal of sustainable development ought to be to optimize human welfare or quality of life while avoiding any threats to the environment that sustains life.

The primary cause of ecological imbalance and environmental damage is the rapid rate of population development. The unsettling and immediate effects of climate change and global warming on Earth's surviving life have ushered in a new age.

- The condition of the forest in the area at hand has a significant impact on the eco system and ecological balance, which are the primary biotic components of the natural environment. The primary causes of deforestation include moving or jhumming cultivations, turning forests into pastures, logging, excessive animal grazing in forests, etc.
- Numerous gasses, ashes, smokes, and other aerosols that are released by factory chimneys and moving vehicles have a negative impact on the environment.
- Climate change and global warming have ushered in a new era of unsettling direct effects on earthly existence.
- Big dam construction is another factor contributing to environmental risks. It affects the ecosystem and results in the extinction of plants, animals, and birds, among other things.

Environmental pollution at the local level has an influence on nature globally. The environment is one topic that has both global and local implications. Therefore, in order to prevent further environmental damage and preserve it for future generations of living things, the entire country must work together. The amount of food and shelter available to animals has been declining, and as a result, wildlife is now residing in human areas. These days, man-animal confrontations are a frequent occurrence. In light of these implications, sustainable development is primarily required for living things in order to maintain a safe environment for future generations.

- Ways and Means for Securing Sustainable Development: Programs to raise public understanding of the laws and the relationship between environmental preservation and human rights must be started by the government.
- Encouraging awareness and education about the environment.
- Give up using items that harm the environment.
- Specialized instruction on sustainable development has to be implemented in educational institutions.
- The effort to grow trees and maintain a clean, green environment should not stop.

Conclusion-Government action to avoid environmental harm may be necessary, as it is primarily motivated by public welfare concerns. It could be necessary to consider the environmental improvement as a public good. Sustainable development is not complete until and unless laws that are beneficial to the environment are made.

References :-

1. Choudhury, Md. Moinul Hoque(2018), " Sustainable Development and Its impact on Environment", Excellence International Journal of Education and Research; Volume:5 Issue:2, February,2018
2. Ghai, K.K.(2011), " Political Theory I & II", Kalyani Publishers
3. Hojai, Mili(2018), " Underlying Causes and Impacts of Environmental Degradation", Environment : Emerging problems & management (part–II), Kaziranga printing House,Chandmari, Guwahati
4. Mahanta, Jyotisma(2018), " Environmental Degradation and Hazards", Environment : Emerging problems & management (part –II), Kaziranga printing House,Chandmari, Guwahati
5. Medhi, Kabita(2018), " Environmental Degradation and Sustainable Development Issues and Challenges", Environment : Emerging problems & management (part –II), Kaziranga printing House,Chandmari, Guwahati
6. Brundtland Commission (1987). Our Common Future. Report of the World Commission on Environment and Development.
7. Cristian, D., Artene, A., Gogan, M., & Duran, V. (2015). The Objectives of Sustainable Development - Ways to Achieve Welfare. 26(15), 812-817.
8. Dincer, I. (2000). Renewable Energy and Sustainable Development: A Crucial Review. 4, 157-175.
9. Dincer, I., & Rosen, M. A. (1998). A Worldwide Perspective on Energy, Environment and Sustainable Development. 1321, 1305-1321.

kiranangra@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 139-142

प्रेमचंद की कहानियों में दलित

('ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'दूध का दाम', और 'कफन' कहानी के विशेष संदर्भ में)

राज कुमार मेहता, शोधार्थी,
डॉ० सत्येन्द्र कुमार, सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, राधा गोविंद विश्वविद्यालय, झारखण्ड

बीसवीं शताब्दी के दूसरे–तीसरे दशक में जहाँ महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, निराला और पंत जैसे साहित्यकार प्रकृति और निजता पर लिख रहे थे, वहीं दूसरी तरफ प्रेमचंद छूत–अछूत की समस्या से लड़ रहे थे। वे इस पर कथा और पत्रिकाओं में लेख लिख रहे थे। वस्तुतः वे प्रतिक्रिया में लेख लिख रहे थे और विवादों में घिरे रहे थे। उन्हें ब्राहमण विरोधी कहा जा रहा था। प्रेमचंद इन प्रतिक्रियाओं को सहते हुए लगातार हिंदू समाज में व्याप्त सामाजिक भेदभाव की आलोचना कर रहे थे। अपने लेख 'महान तप में वे लिखते हैं, ''क्या अब भी हम अपने बड़प्पन का, अपनी कुलीनता का ढिंढोरा पीटते फिरेंगे। यह ऊंच–नीच, छोटे–बड़े का भेद हिंदू जीवन के रोम–रोम में व्याप्त हो गया है। हम यह किसी तरह नहीं भूल सकते–हम शर्मा हैं या वर्मा, सिन्हा हैं या चौधरी, दुबे हैं या तिवारी, चौबे हैं या पाण्डे, दीक्षित हैं या वर्मा उपाध्याय। हम आदमी पीछे हैं चौबे या तिवारी पहले और यह प्रथा कुछ इतनी भ्रष्ट हो गयी है कि आज जो निरक्षर भट्टाचार्य है, वह भी अपने को चतुर्वेदी या त्रिवेदी लिखने में जरा भी संकोच नहीं करता।''[1]

अनेक कटु आलोचनाओं के बावजूद भी प्रेमचंद इस निर्णय पर पहुंचे थे कि राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण– ऊँच–नीच के भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना है।[2] प्रेमचंद ने इसी विचारधारा के अधीन कई मार्मिक और यथार्थवादी कहानियाँ लिखीं। यथा– 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'घासवाली', 'कफन', 'दूध का दाम', 'मंत्र' आदि। दलित जीवन से संबंधित यह कहानियाँ हजारों वर्षों से सामंती व्यवस्था में जकड़े दलितों को उनकी विभिन्न परिस्थितियों के साथ व्यक्त करती हैं। प्रेमचंद अपने समय के सबसे ज्यादा प्रतिबद्ध सामाजिक सरोकारों वाले कथाकार थे। प्रेमचंद की दलित जीवन से संबंधित कहानियों को पढ़ने के उपरांत दलितों की स्थिति का उनकी कहानियों में जो बोध होता है, वह बेहद चिंता और आक्रोश उत्पन्न करता है। बेघर होना, गरीबी, शोषण व अत्याचार सहना, अपमानित होना, निरक्षर होना, अंधविश्वासी होना लगता है जैसे दलितों की नियति है। कहना न होगा कि दलित जीवन की त्रासदी की विविधताओं को प्रेमचंद अपनी इन कहानियों में कई कोणों से देखते हैं।

अमानवीयता, शोषण और अत्याचार पर आधारित सामंती व्यवस्था का भयावह रूप ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, सद्गति, कफन जैसी कहानियों में अवश्य देखा जा सकता है।

'ठाकुर का कुआँ' प्रेमचंद की बहुत छोटी कहानी है। कुल तीन पृष्ठों की है परन्तु इसमें प्रेमचंद ने दलितों की स्थिति को कलात्मक सौंदर्य एवं निरपेक्षता के साथ उकेरा है। कहानी में गंगी का पति जोखू बीमार है। जोखू दलित जाति का है। उनका कुआँ गाँव से बहुत दूर है। गंगी प्रतिदिन शाम को वहाँ से पीने का पानी भर लाती थी। कल जब वह पानी लायी तो उसमें बू नहीं थी, परंतु आज उस पानी से भयंकर बदबू आ रही थी। शायद कोई–जानवर कुएं में गिर कर मर गया होगा परंतु अब रात के नौ बजे बज चुके थे और इतनी रात गये वह पानी कहाँ से ला सकती है ? गाँव में दूसरे दो कुएँ हैं – एक ठाकुर का कुआँ दूसरा साहू का कुआँ। वे लोग अछूतों को अपने कुएं से पानी नहीं भरने देते।

गंगी जोखू को वह बदबूदार पानी नहीं पीने देती,क्योंकि उससे उसकी बीमारी बढ़ सकती है। अतः किसी प्रकार, साहस जुटाकर गंगी लुकती–छिपती ठाकुर के कुएँ पर जाती है और डरते–डरते अपने देवताओं को याद करते हुए कलेजे को मजबूत करते हुए गंगी घड़े को कुएँ में डाल देती है। गंगी जब घड़े को पकड़ रही थी तब ठाकुर का दरवाजा अचानक खुलता है। ठाकर का दहशत और आतंक कितना है, उसका वर्णन लेखक एक वाक्य में कर देता है – ''शेर का मुंह भी इससे अधिक भयानक न होगा।''[3] दलित जातियों पर इनका कितना अत्याचार होता है उसे भी लेखक ने गंगी के चिंतन द्वारा उकेरा है। यथा– 'कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक–धक करने लगी। यहीं देख ले, तो गजब हो जाए! एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये में जा खड़ीहुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर। बेचारे महंगू को इतना मारा कि महीनों लहू निकलता रहा। इसलिए कि उसने बेगार न दी थी।''[4]

प्रस्तुत कहानी में गंगी के चिंतन द्वारा लेखक ने हमारी जाति–प्रथा पर ऊंच–नीच के झूठे खपालों पर भी चोट की है। यथा– '' हम क्यों नीच हैं और वे लोग क्यों ऊंच है? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहाँ तो कितने हैं, एक से एक छंटे हुए हैं १ चोरी थे करें, जाल फरेबये करें, झूठे मुकदमें ये करें!अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में इन्हीं पंडित जी के घर में तो मार कर रखा गया। बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊंचे। कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रसभरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊंचे हैं।''[5] इस प्रकार, इस कहानी में दलित जीवन का कटुयथार्थ प्रस्तुत हुआ है।

'सद्गति' का दुखी चमार अपने नाम से भी दुःखी ही है जो ईश्वरभक्त पंडित घासीराम से साइत पूछने जाता है, तो उनकी गाय को घास डालने से लेकर भुसा ढोने और लकड़ी काटने तक सब कुछ भूखे रहते हुए अंत में सद्गति को प्राप्त होता है। दुखी के मरने के बाद लेखक ने उसका इस प्रकार दृश्य खींचा है, ''पंडित जी ने एक रस्सी निकाली उसका फन्दा बनाकर मुर्दे के पैर में डाला और फन्दे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ–कुछ धुंधलका था। पंडित जी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर ले गये। वहाँ से आकर तुरन्त स्नान किया, दुर्गा–पाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का उधर दूखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।''[6]

'दूध का दाम' कहानी दलित जीवन की विभीषिकाओं को उकेरने वाली कहानी है। इसमें लेखक ने अपनी सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से उच्चवर्णीय लोगों की शोषण नीति पर्दाफाश किया है। हमारा धर्म किस तरह खान–पान और चौके–चूल्हे तक महदूब है, इसे भी रेखांकित किया गया है। इसे किस प्रकार अपनी सुविधा के अनुसार तोड़ा–मरोड़ा जाता है। उसेः– मोटे राम शास्त्री के कथनों में देखा जा सकता है। महेशनाथ के बच्चे ने भंगिन का दूध पिया था, अतः उन्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा। इस पर महेशनाथ कहते हैं, ''प्रायश्चित की तो खूब कही शास्त्री जी, कल तक उसी भंगिन का खून पीकर पला, अब उसमें छूत घुस गयी। वाह रे आपका धर्म।''[7]

कथानुसार जमींदार बाबू महेशनाथ के घर तीन कन्याओं के बाद जब पुत्ररत्न पैदा हुआ, तो उनकी पत्नी के स्तनों में दूध न बन पाने के कारण पुत्र को दूध पिलाने में असमर्थ थी। तब बालमीकि जाति की भूंगी ने अपने दूधमुंहे बच्चे की उपेक्षा करके अपना दूध पिलाकर उसे पाला। बदले में जमींदार महेरानाथ ने उसको ढेरों रूपये, जायदाद देने के साथ–साथ उसके बेटे मंगल के लालन–पोषण का वचन दिया। भूंगी और उनके पति गूदड़ की मृत्यु के उपरांत बालक मंगल उपेक्षित हो गया। महेश बाबू के यहाँ उसको नौकर के तौर पर रखा गया था और खाने में उसे जूठन मिलता था। कुछ समय बाद तो वह जूठन भी उसको टामी (कुत्ते) के साथ नसीब से मिल पाता था।''उसने पत्तल को ऊपर उठाकर मंगल के फैले हुए हाथों में डाल दिया।... टामी भी अंदर से निकल आया था। दोनों वहीं नीम के नीचे पत्तल में खाने लगे। मंगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा, ''देखा, पेट की आग ऐसी होती है। यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलती, तो क्या करते ?'' टामी ने दुम हिलायी। ''सुरेश को अम्मा ने पाला था।'' टामी ने फिर दुम हिलायी। ''लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।''[8]

सामंती समाज में विकास और उन्नति के अवसर कुछ लोगों की मुट्ठी में कैद हो जाते हैं और कुछ हाशिये के लोग घोर दरिद्रता में पहुँच जाते हैं, तभी तो 'कफन' कहानी में पिता–पुत्र घीसू और माधव बुधिया (माधव की पत्नी) के कफन के लिए मिले चंद से पैसों से अपनी भूख को शांत करते हैं। घीबू और माधव सामाजिक असंतुलन के प्रति सचेत दिखते हैं– ''कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए। कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है और क्या रखा रहता है? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा–दारू कर लेते।'' उनके विचारों की गतिशीलता यहीं नहीं रूकती, बल्कि पूंजीवादी व्यवस्था के घटकों के प्रति नफरत की भावना में प्रवाहित होती है, ''वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।'' घीसू और माधव की हास्यास्पद त्रासदी के पीछे सामंती व्यवस्था के शोषण और आडम्बर मुख्य कारण हैं। अपने को शक्तिशाली बनाए रखने के लिए सामंती व्यवस्था व्यक्ति की लाचारी का फायदा उठाती है और तमाम तरह के ढोंग और पाखण्ड करती है, ऐसे घीसू–माधव जैसे चमार जाति के दलित और अभावग्रस्त व्यक्ति इसका आसानी से शिकार बन जाते हैं।''[9]

अंततः प्रेमचंद भले ही स्वयं दलित नहीं थे किंतु दलितों के प्रति उनकी सहानुभूति और संवेदानाएं पूर्णरुपेण सत्य थी। समाज में दलितों की वास्तविक स्थिति का चित्रण उन्होंने अपनी रचनाओं में कलात्मक ढंग से दिया है। वर्तमान के इस वैज्ञानिक युग में आज भी छूआछूत, जात–पात की समस्या, संकीर्णतापूर्ण सोच, आदि अमानवीय व्यवहार मौजूद है जिसका चित्रण प्रेमचंद ने कई वर्षों पूर्व ही अपनी कहानियों में कर दिया था। किंतु

विडम्बना यह है कि इतने वर्षों बाद भी सवर्ण समाज द्वारा दलितों के साथ किए गए व्यवहार में कोई विशेष अंतर नहीं दिख पड़ता है।

संदर्भ :-

1. कुमार, अनिल और एस० एस० गौतम (संपा०), प्रेमचन्द और दलित विमर्श, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, संस्करण– 2013, पृ० 23
2. वही, पृ० 24
3. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग–1, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2018 पृ. 107
4. वही, पृ० 108
5. वही, पृ० 108
6. कुमार, अनिल और एस० एस० स० गौतम (सं०), प्रेमचन्द और दलित विमर्श, गौतम बुक सैन्टर, दिल्ली, संस्करण – 2013, पृ० 25
7. गवली, डॉ० कल्पना, प्रेमचन्द तथा शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित विमर्श, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, सस्करण – 2005, पृ० 97
8. कुमार, अनिल और एस० एस० गौतम (सं०), प्रेमचन्द और दलित विमर्श, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, संस्करण–2013, पृ० 25–26
9. वही, पृ० 26

संगम Impact Factor : 4.553 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 143-147

Value Education in India from Vedic to Modern Era

Sourav Mandal

Ph.D. Research Scholar, Department of Sanskrit, Gauhati University, Guwahati, Assam

Abstract :-

In ancient Indian literature of the Vedic period, the word sik?a and adhyapana frequently occur. siksa means to learn to recite. In those days education consisted of learning to recite to Holy text. The word adhyapana which literally means 'to go near' implied the idea of pupils going to some teacher for education.

In ancient India, education emerged from the Vedas because the Vedas were a source of the Indian philosophy of life. The main aim of Vedic education was to develop the physical, moral and intellectual faculties of man and thereby attain salvation.In the field of salvation, much emphasis was laid on attention concentration and yoga. Man's effort was to lift himself above everything through this method. The educational system of the Vedic period achieved considerable success in connection with character formation. Gurukula's were established with this aim in view. In these institutions, students led the life of Brahmacari a celibate. Life in the Gurukulam was rigorous and hard.

In today's time, when there is a huge crisis of moral values in society, value-based education proves to be the solution. The main purpose and main function of education is to develop and balanced personality in students and to develop all dimensions of the human intellect so that our children can contribute to making our nations more democratic, cohesive, socially responsible, culturally reach and intellectually competitive nations.

Keywords :- Values, education, Era, develop, modern,Gurukulam, Vedic, etc.

Introduction :-

Value-based education places an emphasis on helping students develop their personalities so the can shape their future and deal with challenges with case. It shapes children to effectively carry out their social, moral and democratic responsibilities while becoming sensitive to changing circumstance. "Value education" is the process through which people impart moral ideas to one another.

During this time people are assisted by others. This nation refers to the educational process instilling moral norms in order to foster more peaceful and democratic communities. Values education therefore encourages tolerance and understanding beyond our political, cultural and religious differences.

Importance of value education:- value education ought to be integrated into the educational process rather than being considered a separate academic field. The importance of value education can be understood from many angles. The following are some reasons why value education is essential in the modern world.

1. Children's curiosity is sparked, their value and interests are develops and this further aids in students skill development.
2. Additionally, it promotes a sense of brotherhood and patriotism, which helps students become more accepting to all cultures and religions.
3. People are more convinced and dedicated to their goals and passions when they learn about the importance of values in society and their own lives. This cause the emergence of awareness, when produces deliberate and fruitful decisions.

Vedic education :-

Many people may think the gurukulamsystem is quite a complicated and a bizarre idea. The thought of leaving with a teacher, absence of a curriculum or a set routine can make people wonder how exactly will a child learn anything? However the modern-day educationalist has taken a back word look or realized that there are many teaching approaches from the gurukulam system that can be inculcated in the present day educational system.

Value education in modern day :-

Modern education is the latest and contemporary version of education that is taught in schools and learning institutions in the 21th century. Modern education not only focuses on advanced academic disciplines such as commerce, science and arts, but also aims to developstudents, critical thinking, life skills, educational assessment, analytical skills and decision-making ability. Modern education also makes use of the latest technology such as mobile applications, audio and video platforms like you tube, podcasts, E-books, movie etc. to educate students and make the learning process more engaging and interesting.

We all grew up in a teacher-centred classroom, a system in which the teacher sits at the front and the students sits in nice, orderly rows, listening to the lectures and taking notes. This system was and in a sense, still is the heart of our education system. Schools have relied on it for decades and have only recently seen major changes. In the 21th century, technology has become an integral part of our every lives. None of us can deny that this has only led to a restructuring of our world and especially

our education system. From chalkboards to white boards and now to smartboards. Technology has become our primary source of research, knowledge and teaching. This blog is going to some light on the modern education system and how it is replacing traditional methods of teaching.

The academic curriculum needs to be modernized not only to keep up with the times but also to better educate students about rapid technological advances. Flexibility in the face of changing times helps students apply conventional and technical skills with equal ease. The current education system is unfair to ordinary people, limiting their potential and preventingthem from coping with the complexities of public and private life. Since humanity is facing many different problems today's competitive world, the education system must be flexible enough to train pupils for these dynamics.

Modern Education in India :-

In India, the education system has its deep roots in the ancient oral and Gurukulam education system, which was later converted into formal education by the British.The policy of the government underwent a change in the year 1890- 91. In the year 1889-90 government established two schools for the depressed classes, one at Huskur (AnekalTaluk), and another at Narasapur (MalurTaluk) of Kolar district. Sixty two students enrolled in these two schools during the first year of its establishment.

The students of depressed classes in government schools were made to sit apart from the other students of high caste, usually outside the school building. The 75 London Mission was running a school for depressed classes at Anekal. Wesleyan mission was running three schools for the depressed classes at Mysore and another at Hassan. All these missionary schools were unaided. The total number of children belonging to the depressed classes attending schools during 1890-91 was 349 boys and 35 girls including students attending ordinary schools. The above number constitutes 0.23 per cent of enrolment of students belonging to the depressed classes to the total school going population of the state.

There were strong and deep rooted prejudices against women's education. It was believed that female education would not only produce widows but also facilitate romantic intrigue. It was said that no man would marry an educated girl. Objections to female education seemed to have been based on the apprehensions of the unknown power education could give to women. Further it was held that education would undermine the feminine qualities in women and bring disgrace to their families.

Whereas education of males was directly related to employment, female education hardly had any economic importance. The domestic role of women fostered a belief that education for girls was unproductive because it could not be put to any financial use. The cost of education in terms of fees, books and so on, as well as the temporary loss of a helper in the household and the lack of visible monetary return were strong economic deterrents reinforcing the existing taboos. Lack of separate

schools for girls, male oriented curriculum and general ignorance of women were other factors which contributed to the exclusion of women from formal system of education during the early part of the nineteenth century.These are the salient features of modern education in India.

- Modern education in India was introduced by the British colonizers in 1830 with the English language said to have been introduced to India by Lord Thomas Babington Macaulay.
- When India was liberated from the British by building schools across the country primarily for children aged 6 to 14 years.
- The modern education system in India in the 21st century consists of a newapproach to learning ranging from online education, skill development courses, digital learning platforms, assessment systems and the use of educational technologies.

Advantage of Modern Education System :-

In particular, the advantages of modern education can be summarized as follows :

- Modern education is a dynamic way of learning that allows students to learn much faster. Interaction between students and teachers helps student to understand better.
- Allowing students to participate in physical activities to improve their performance has another benefit. Modern education allows students to do much more than just study, it also help them become more sociable and interactive.
- Extracurricular activities, rational activities, drama and art in class help the student become creative, hardworking and patient. This is one of the factors that stimulate students' desire to study at school.
- Modern education has selected courses and lessons that take place at specific times so that students are punctual and consistent.

Disadvantage of the modern education system :-

- **No human interaction :** online courses are completed at your own pace. Students find it difficult to build relationships with their classmates. Little personal interaction and little social engagement.
- **Probability of distraction :** The probability of being distracted is quite high for students who are less focused and unmotivated. Students deviate from the course and end up doing something different.

Conclusion :-

In Vedic times, education played a central role of society. They were considered pious and important to society. The Vedas are given grate importance in the education system. During this period, sadhyana self-education was considered more important. Modern education refers to the use

of useful technologies such as mobile applications and video platforms to impart knowledge and improve learning experiences. The modern Indian education system has many advantages. Most of them are the result of innovation research and technology. Thanks to this and other respects, the current Indian education system is more accessible, adaptable and affordable. Today the condition of the Indian education system is much better.

The government is making numerous efforts to improve the current Indian education system. Significant changes in education have enabled students to acquire practical knowledge and made it accessible to all.

Bibliography :-

1. Talagiri, S,G. (1962).The Rgveda: A Historical Analysis, New Delhi : Aditya Prakashan.
2. Giri, M. (1947).Vedic Culture. Calcutta: Calcutta University.
3. Das, S,K. (1931). The Educational System of Ancient Hindus. Calcutta : Mitra Press.
4. Ghosh, S,C. (2001).The History of Education in Ancient India, New Delhi : Munshiram ManoharLal Publications.
5. Aggarwal, J,C. (2006). Education for Values, Environment and Human Rights. New Delhi: Shipra Publication.
6. Patil, Y. (2015). Value Education: Need of the Hour,Pasaaydan Foundation.
7. Ravi, S,S. (2011). A Comprehensive study of Education. New Delhi: PHI Learning Private Limited.
8. Mookarji, R,K. Ancient Education System. Delhi: Banarasidas Publication.
9. Basu, A. (1974). The Growth of Education and Political Development in India. New Delhi: Oxford University Press.
10. Basu, A. (1982). Essays in History of Indian Education. New Delhi: Concept Publishing House.
11. Kamath, A,R. (1985). Education and Social Change in Modern India. Bombay: Somaiya Publication.
12. Sael, A, (1968).The Emergence of Indian Nationalism. Cambridge: Cambridge University press.
13. Srinivas, M,N. (1970). Caste in Modern India and other Essays. Bombay: Asia Publishing House.

Name- SouravMandal, S/O- BinaykumarMandal

VILL- Sahilapur, P.O- Umakantatola, P.S-Kaliachak, Dist- Malda (W.B)

PIN- 732216

Email- souravman732216@gmail.com

Ph-7478666306

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 148-153

Impact of Social Media among Society : Pros and Cons

Dr. Kiran Angra, Principal
Dr. Kaushal Chauhan, Librarian
M.D.S.D. College, Ambala City

Abstract :-

The start of social media has transformed the world in several ways. The youth is especially one of the most dominant users of social media. We can use social media to improve our communication skills and make new friends. Instead of holding huge advantages, social media is deemed to be one of the most dangerous elements of society. If the exceedingly usage of social media is not controlled, it can commence to grave outcomes. The excessive use of social media leads the students to addiction to social media platforms. Many teenagers spend too much time on it, and they might learn about bad things or want to do bad things because of it. This paper elucidates the concept, benefits, pros and cons including some suitable suggestions of social media. It basically tries to analyze the effects of the growth of social media and its implications in the society. This paper also tries to find out the usefulness of social media as a tool of communication.

Keywords :- Social Media, Communication Tool, Pros & Cons of Social Media, effects of Social Media, Benefits of Social Media, Social Media & Wastage of time, Social media as effective Communication Medium.

Introduction :-

Social media is nowadays playing an important role in society in providing some important news and information which is good for everyone. Social media can provides accurate and up-to-date news of what's going on in the world. It serves as a means for people to express their voices with regards to political, religious, and other matters. The youth is especially one of the most dominant users of social media. Social media is a repository for random content sharing post of it ranges from sharing of news to sharing of travel videos and pictures. Social media is not only a web page communication. It spans across the scope of playing online games together to that of sending

personalized wishes of special occasions to each others. In other words, the whole world is at our fingertips due to social media.

Objectives :-

- To investigate role of social media in society.
- To identify social media as a tool of communication.
- To aware about Pros and Cons of Social Media.
- To suggest safely use of social media.

Social Media as a tool of communication :-

Digital transmission has not only influenced businesses and made the world more accessible but also it has change the way we communicate. Social media is good for communication. It is a tool that is becoming quite popular because of its user-friendly features. Social media provide you accurate and up-to-date news of what is going on in the world. The importance of social media in communication is a constant topic of discussion. Social media is a kind of networking channel where people find friends, communicate, share ideas, and collaborate in creating content. Social media platforms like Facebook, Instagram, Twitter and more are giving people a chance to connect with each other across distances. Social media has taken over the business sphere, the advertising sphere and additionally, the education sector. Online communication has brought information to people and audiences that previously could not be reached. Today, you can text anyone across the globe as long as you have an internet connection. Social media has increased awareness among people about what is happening in other parts of the world.

Pros of Social Media :-

People use social media to explore interests and connect with their community, which helps them further develop existing relationships with like-minded peers. They can share their problems with them and ask for advice, or just chat with their friends when they feel bored. Social networking sites allow users to share ideas, activities, events and interests within their individual networks.

- Social media has created the scope of developing active personalized payment gateways for any purpose. Online payment scheme is nowadays amalgamated with almost all social media platforms. The only challenge that these new payment systems presents is the maintenance of security standards.
- Social media has brought people face-to-face with humanitarian issues. It brings together activists, allows people to raise their voice against injustice and helps people come together for social causes.
- There is a fast transfer of information online and hence the users can stay well informed. Social media aids the communication of thoughts, opinions, and important information. For example,

social networking platforms such as Facebook and WhatsApp help users create and share content.

These tools bring people closer. Moreover, social media serves as a platform to spread breaking news. Users can learn about news right away, all without moving or stepping out of their homes.

• Everything is just a click away and includes everything from news to buying your groceries. The ease of access that social media provides has taken over the traditional methods of shopping, reading news and even studying.

Education too has incorporated forums and social media chat rooms to increase interactivity among students, conduct webinars and promote events and courses.

• There are few social benefits as well like communication with long-distance friends and relatives. Social media provide a convenient way for people to connect with their peers and keep in touch with friends they already spend time within the offline world. This mutual, constant availability can lead to the strengthening of these relationships.

• Social Media provides great employment opportunities online. Social media platforms like Facebook are also popular as content sharing platform. Currently Facebook is considered as an authentic and trusted source of news and various information like job openings or event it and gatherings.

Cons of Social Media :-

Instead of holding huge advantages, social media is deemed to be one of the most dangerous elements of society. If much usage of social media is not controlled, it can commence to grave outcomes. Every person is given 24 hours a day and it is up to them if they spend it wisely. If you believe that you are doing the right activity by socializing, then, by all means, go for it. However, if you spend your entire day lying on the couch and just checking your best friend's Instagram account over and over for updates, then it can be a time-wasting activity, if you are not able to get some benefits from it in the long run. Social media has negatively impacted our communications skills in the following ways :

• Social media reduced the communication skills of the students. They didn't want to go and meet the other peoples and communicate with them face to face.

They only communicate with social media. Due to the excessive use of social media they students forget communication skills. Self-confidence and selfesteem are badly affected by the excessive use of social media. Students feel shy and less-confidence in communicating face to face with other peoples.

• Social media outlets are all about us our successes, achievements, and experiences. People may read their friends or connections posts, but at the end of the day, it's all about to them only. They have forgotten how to listen to others.

- Due to the excessive use of social media, the students lose their creativity and motivations. The excessive use of social media leads the students to addiction to social media platforms. The students didn't want to go outside and do some kind of activity and play games which cause the rise of laziness in them.
- Social media has been linked to higher levels of loneliness, envy, anxiety, depression, narcissism and decreased social skills. One of the negative effects of social media is that it makes people addicted. Social Media divert the concentration and focus from the particular task.
- Social media can easily affect the kids; the reason is sometimes people shares photos, videos on media that contain violence and negative things which can affect the behavior of kids or teenagers.
- Sometime social media seems waste of time due to addictive technology. If you look at people on the street, you can see those taking selfies and messaging to their friends. Due to the addiction to social media, the students are distracted from their study and goals. They always want to use social media. Social media reduced the productivity of the students.
- Many teenagers spend too much time on it, and they might learn about bad things or want to do bad things because of it. Social media mostly damaging the mental health of students and also, social media causes physical health problems for students. Students' depression is mostly caused by the excessive use of social media.
- Dropping of grades and performance of students and enables cheating in exams, Users are vulnerable to cyber-crimes like hacking, identity theft etc.
- Kidnapping, murder, robbery can be easily done by sharing details on social media. There are many more scam victims as a result of social media and the scammers always come up with new and trickier ways of deceiving their victims. It also directs to cyber bullying which attacks any personality significantly.

Suggestions :-

- Social media is a convenient way to send money digitally but security standards must be regulated.
- Usually it is not even necessary to sign up for a social media service to access its content but registering an account makes it easier to keep track of content because it opens the possibility to add to favourites or create lists. These features can help with time management.
- The most notable being a magnificent source of education. Learners can teach themselves on different topics using social media. The education can be taught e-learning through social media.
- Marketing is one of the most important and common use of social media in business. It also

helps the business for promotional activities.

- The parents have to keep eye on their children that how they used social media. This is the most important responsibility of the parents. They have to train their children's they have to teach them bad things and good things and keep them away from bad things.

Conclusion :-

As the technology is growing the social media has become the routine for each and every person, peoples are seen addicted with these technology every day. Social media is a gateway that provides social communication. It is spreading rapidly everywhere in the world. Majorly adults and teenagers are joining websites such as Facebook, Whatsapp, Instagram, and Twitter to socialize with friends, family, and strangers. Social media is huge and has become one of the largest ways to communicate and it keeps getting bigger.

Many people say that social media is a waste of time but that is not true because it can grant you many learning opportunities. Social media is good for communication.

Many of research have shown that social media has become a study tool for people of all ages. Social media has various merits but it also has some demerits which affect people negatively. Social networking sites have created a huge impact on the lives of many individuals mostly the students. Students get many distractions while using social media. They distract from the pool of reliable information sources. If people are not making money through social media and they are just using it for the likes, posts, and tweets, then it is a waste of time. It can be good for them to spend their time doing other meaningful tasks. Moreover Social media platforms have invaded and taken over public consciousness and has become essential to everyday life. It depends on what people do with social media if they only chat on it every day; they need to impose a time limit. Thus use of social media is beneficial but should be used in a limited way without getting addicted. Don't Use Social media to impress people; use it to impact people.

References :-

1. DePaula, N., Dincelli, E. and Harrison, T.M., 2018. Toward a typology of government social media communication : Democratic goals, symbolic acts and self-presentation. Government Information Quarterly, 35(1), pp.98-108.
2. Di Lauro, S., Tursunbayeva, A. and Antonelli, G., 2019. How nonprofit organizations use social media for fundraising: A systematic literature review. International Journal of Business and Management, 14(1), pp.7-11.
3. Nurhadi, D., Zahro, S. and Chisbiyah, L.A., 2019. A management framework for implementing social media in higher education. Acta Universitatis Danubius. Communicatio, 13(1).

4. Shabnoor Siddiqui and Tajinder Singh. Social Media its Impact with Positive and Negative Aspects. International Journal of Computer Applications Technology and Research. 5(2).
5. Trisha Dowerah Baruah. Effectiveness of Social Media as a tool of communication and its potential for technology enabled connections: A microlevel study. International Journal of Scientific and Research Publications, 2(5).
6. Marius Badeaa. Social Media and Organizational Communication. Procedia Social and Behavioral Sciences. 149 (2014), 70-75.
7. Aveseh Asough, SOCIAL MEDIA AND ETHICS - The Impact of Social Media on Journalism Ethics, Center for International Media Ethics (CIME), December 2012.
8. Acquisti, Alessandro, and Gross, Ralph. (2009). Predicting Social Security numbers from public data. Proceedings of the National Academy of Sciences, 106 (27).

Email: mdsdgirlscollege@gmail.com
Email: chauhan_khushi@rediffmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 154-157

डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक जी की कविताओं में जीवन मूल्य

के. मंगलक्ष्मी
पीएच.डी. शोधार्थी, पी.जी.केन्द्र, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नै–600 017

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कविता संग्रह 'अंधेरा जा रहा है (2017) एवं 'सृजन के बीज' कविता संग्रहों निक्षित जीवन की संवदनात्मक अनुभूतियों एवं जीवन मूल्यों को उकेरने का प्रयास किया गया है। 'अंधेरा जा रहा है' कविता संग्रह का रचना काल 2017 रहा है। प्रस्तुत कविता संग्रह के अंतर्गत कुल '138' कविताएँ संकलित है। प्रस्तुत कविता संग्रह के माध्यम से हमें कवि डॉ. निशंक जी अपने जीवनानुभूतियाँ के लघुतम कलेवर को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। अर्थात् कवि के जीवन के संवेदनात्मक अनुभूतियों का चित्रांकन प्रस्तुत कविता संग्रह में हुआ है। कथन है कि कुँवारी संवेदनाओं की सांद अनुभूतियाँ जब–जब मानस को उन्देलित करती हैं ता सृजनधर्मी रचनाकार अपनी भावनाओं को कविता का आकार देता है। यह आकृति उसकी संपूर्ण सृजन यात्रा का ताना–बाना होती है। यो भी रचनाकार अपने सृजन को संकति के समान पालता–पोषता है। यह पोषण उसकी आत्मा को परिपोष भी देता है और एक चिखर तक आनंदित भी करता है।''

डॉ. 'निशंक' जी का 'सृजन के बीज' कविता संग्रह का रचना काल 2017 रहा है। जिसमें कुल '96' कविताएँ संकलित हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह में उदात्त–चिंतन और मानवीय संवेदनाओं एवं जीवन मूल्यों के स्तर भरे हैं। जिन्हें उकरने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत किया गया है। कवि डॉ. 'निशंक' जी उदात्त–चिंतन और मानवीय संवेदनाओं के प्रति पूर्णतः समर्पित रचनाकर ही नहीं समाज के उच्चतर जीवन 'मूल्यों के पक्षधर हैं।

प्रस्तुत कविता 'रिश्ते' के माध्यम से निशंक जी रिश्तों के महत्व को दर्शाया है। आज हम देख रहे हैं कि हर व्यक्ति या मानव अपने रिश्तों को शिक से निभा नहीं पा रहा है। अर्थात रिश्तों में खटास एवं दटारें ही ज्यादा देखने को मिलती है। कोई भी व्यक्ति अपने रिश्तों को सही भाइते में निभावे में असफल ही रहा है। जिसका मुख्य कारण है आज के मानव में अहट एवं नकली जीवन या देखाता ही है। यह सही नहीं है कवि का कथन है कि

''रिश्तों में होकी चाहिए
बस, ईमानदारी, विश्वास
और समझदारी''।[1]

प्रस्तुत कविता 'दोस्ती' के माध्यम से कवि निशंक जी 'दोस्ती' निभानेवाले के महत्व को दर्शाया है कवि निशंक जी का कथन है कि 'दोस्ती बड़ी नहीं होती है वरन् 'दोस्ती' निभानेवाला बड़ा होता है। दोस्ती नहीं

निभानेवाले की हालत हमेशा बुरी होती है। कवि के शब्दों में –

दोस्ती कर, नहीं निभा सकने वाला
हमेशा चौराहे पर रोल है।''[2]

'रिश्तों का महत्व पर बन देतों हुए कवि निशंक जी का कथन है कि वे संबंधों को कभी भी खोना नहीं चाहते हैं। कुछ रिश्ते ऐसे होते है कि जो जिंदगी जीने का वजह बन जाते हैं। ऐसे रिश्तों को सदा संजोये रखना मानव मात्र का धर्म बनता है। कवि के शब्दों में –

''जो जिंदगी जीने की
वजह बन जाते हैं
कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं।''[3]

प्रस्तुत कविता में कवि 'निशंक' जी का कथन है कि जिनके मिलते से खुशी मिलती है और जिनकी मेहनत से मुरसाई कली भी खिलती है। दुःख–दर्द में भी ऐसे ही लोगों के ये ही मिला करते है। क्योंकि उन्में जीवन के दुःख–दर्द को सहने की क्षमता होती है। मानव कि सदा ऐसा नहीं रहना है। कवि के शब्दों में–

''जिनकी मेहनत से
मुरसाई कली भी खिलती है
दुरूख दर्दों में भी
बसा उन्हीं के चेहरे तो खिला करते है।''[4]

दूसरों के लिए बने है कविता में कवि निशंक जी का कथन है कि जो दूसरों के लिए खुशियों देने के लिए आगे बढते हैं वो सदाबहार होते हैं। उनमें इतनी क्षमता रहती है कि वो न किसी को जिंदगी खोने देते हैं और नहीं स्वयं की जिन्दगी खोते हैं। कवि के शब्दों में –

''वो न किसी को जिंदगी
सोने देते हैं।
न स्वयं की जिंदगी खोते हैं।[5]

प्रस्तुत कविता 'तुम्हारे सौरे के माध्यम से कवि निशंक जी का कथन भरा है कि कुछ लोग ऐसे होते है कि जिनके कुशल प्यार भरा व्यवहार से दूसरों को या सामनेवाले को जीवन भर अपनी ओर खींच लेते हैं। उनकी मुस्कुराहट में जो अपनापन होता है जिसके आगे सामनेवाला उनकी और खिंचा चल जाता है। कवि के शब्दों में –

''तुम बस एक छोरी सी मुस्कराहट
देते हे,
और हमें
जिंदगी भर को लिए
अपना बना लेते है।''[6]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि डॉ. निशंक का कथन है कि जहाँ खुशियों की बरसात हो वहाँ सुन्दर मनोहर भावनाओं ने पूर्ण जो गाँव है। हमारा खुश रह हर सफलता की बचार में बन्हते की बात कवि कह रहा

है – यथा –

''तुम हमेशा खुश रहो
सफलता की हो बचार
उसमें बहो।''7

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि को कथन है कि अपनी जिंदगी को हतीन बनाने हुए जीना ही नहीं दूसरों के लिए भी जीना सच्चे नागरिक का लक्ष्य रहा है। जरूरत पड़ते पर दूसरों के लिए जान की बली भी लगानी पड़ती है। खूबसूरत जिंदगी पीने के हर एक मानव को विचार रखना चाहिए। कवि के शब्दों में –

''जिंदगी जीने का
खूब सूरत विचार तो करो।''[8]

प्रस्तुत कविता में डॉ. निशंक प्रेम के महत्व पर बल देते हुए कहते हैं कि प्रेम में असीम ताकत है। प्रेम के सहारे पूरी दूनिया को अकाथ जा सकता है। उदाहरण के लिए कवि कृष्ण का संदर्भ में कथन है कि –

वरना क्या जरूरत भी कृष्ण का
अपने आंसुओं से सुदभा के पग पखारने की।''[9]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि डॉ. निशंक जी का कथन है कि जीवन के चरम लक्षय के लिए नित्य संबंधों की स्मृति अभिन्नता, आत्मियता, अत्यावश्यक है। आत्मियता तो प्रेम को भरती है तो जीवन का चरम लक्ष्य रहे है। कवि के शब्दों में –

''आत्मीयता
उस अनंत में
प्रेम को भरती है।
यही प्रेम तो
जीवन का चरम
लक्ष्य है।''[10]

''दूसरे के लिए
कड़वे वचनों
और कठोरता करने से डरो।''[11]

प्रस्तुत कविता में 'अनुभव का महत्व पर प्रकाश डालते हुए कवि का कथन है कि जीवन का अनुभव इन्सान को भला–बुरा का पहचान कर देता है। इन्हीं अनुभवों से हम कल की नई इबादव लिखते हैं अर्थात् जीवन के अनुभवों को संचित कर अपनी जिंदगी को बदल सकते हैं।

प्रस्तुत कविता ''वक्त'' में वक्त अर्थात् समय के मूल्य पर बल दिया गया है। कवि का कथन है कि वक्त सब कुछ सिखा देता है। इसीलिए वक्त को अपने टाथ से न जाने देना है।

बल देते हुए कवि का कथन है उनके जीवन में कई लोग आए। ऐसे बड़तों लोग है जो कवि के सुख–दुःख में साथ रहे। तो कवि का कर्तव्य बनता है कि ऐसे लोगों को वे सदैव अपने अन्तस्थ में स्थान देना है। ऐसे लोगों के प्रति कवि कूतम है। कवि के शब्दों में –

''जीवन के संघर्ष में
उनको अपने साथ पाया
उन सभी का हमेशा
मेरे अंतस्थ में स्थान है,
मेरे तन–मन में बसा
कड़वी–मीठी यादों का जहान है।''[12]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि का कथन है कि हमें हमारे जीवन में ऐसी अदभूत क्रांति ले आना चाहिए। जिससे की जीवन में अंधकार दूर हो, दिशाएँ निर्बल हो। आनंद की बाद आ जाये, जन–तन के हृदय पर बल पर हर्ष की बहार आ जाऐ।

प्रस्तुत कविता में कवि का कथन है कि केवल अपने को ही हम मनुष्य बनाते की कोशिश तो करे। क्योंकि आज मानव रहा। किसी भी कुतर्क के मन में आने से पहले कम से कम भगवान से तो डरे। अगर मानव भगवान को साक्षी बनाकर मानवीयता को बट कटार रखे तो बस समझ सकते है मानव दुनिया को बदल दिया। कवि के शब्दों में :–

''और यदि/भगवान को साक्षी बनाकर
अपने आप में बदलाव किया,/ तो समझों कि
अब डमने / पूरी दूनिया को बदल दिया।''[13]

इस प्रकार उपर्युक्त अंशों के आधार पर कहा जा है कि डॉ. 'निशंक' जी ने जीवन मूल्य का महत्व और जीवन में आने सभी संकटों और दुःखों को अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है।

निष्कर्ष रूप में कवि 'निशंक' कहते हैं कि डॉ. 'निशंक' ने जन्म से अभी तक मानव का जीवन मूल्य का वित्रता किया है। यह मानव जीवन में सफल प्रयास है।

संदर्भ :–

1. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 14
2. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 15
3. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 21
4. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 25
5. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 27
6. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 28
7. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 29
8. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 32
9. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 37
10. डॉ. निशंक, 'अंधेरा जा रहा है'', कविता संग्रह, पृ. सं. 37
11. डॉ. निशंक, 'सृजन के बीज'', कविता संग्रह, पृ. सं. 16
12. डॉ. निशंक, 'सृजन के बीज'', कविता संग्रह, पृ. सं. 32
13. डॉ. निशंक, 'सृजन के बीज'', कविता संग्रह, पृ. सं. 61

Email : mangalakshmi786@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 158-163

नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में चित्रित विदेशी संस्कृति

कु. चारूशिला अनिल कदम
शोध–छात्र, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।

शोध सारांश :–

नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास प्रवासी जीवन पर आधारित उपन्यास हैं। उपन्यास में भारतीय परिवार का चित्रण किया हैं। नरेश जी ने अपने उपन्यास में तीन पीढियों का चित्रण किया हैं। उपन्यास में पहली पीढी भारतीय जन्मभूमि की हैं और दूसरी–तीसरी पीढी इंग्लैंड में जन्म होने के कारण विदेशी संस्कारों से परिचित हैं। नरेश भारतीय जी ने उपन्यास में विदेशी संस्कृति का चित्रण किया हैं। नरेश जी ने देश–विदेश की संस्कृतियों का चित्रण किया हैं। उपन्यास में युवा और युवा–पीढीयों के जीवन पहलुओं का चित्रण किया हैं। विवेच्च उपन्यास में विदेशी संस्कृति संबंधी विवेचन किया हैं।

'दिशाएँ बदल गईं' इस उपन्यास में तीन पिढीयों के संस्कारों का चरित्र–चित्रण बड़ी गहराइयों से किया गया है। तीन पिढीयों में से पहली पिढी का गुजराना भारत देश में हुआ है। उस पिढी के हर एक संस्कार में भारत कि संस्कृति का चित्र झलकता है। दुसरी तथा तिसरी पिढीयों के जीवन पर विदेशी संस्कृति का गहरा असर दिखाई देता है। इस उपन्यास में भारत तथा विदेश कि संस्कृति और संस्कारों का अलग–अलग चित्रण अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द :– संस्कृति, साहित्य, प्रवासी, पारिवारिक, परिस्थिति, संस्कार।

प्रस्तावना :–

आधुनिक हिंदी साहित्य, स्त्री साहित्य, दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य तथा किन्नर साहित्य के साथ–साथ प्रवासी साहित्य भी आता हैं। इक्कीसवीं सदी में प्रवासी साहित्य भी आता हैं। आज हिंदी साहित्य में प्रवासी साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में तीन पीढीयों का चित्रण किया हैं। उपन्यास में एक पीढी भारत की संस्कृतियों से जुड़ी हैं और दुसरी–तीसरी पीढी विदेशी संस्कृतियों से जुड़ी हैं। नरेश भारतीय ने उपन्यास में विदेशी संस्कृति का चित्रण किया है। नक्शे भारतीय ने अपने उपन्यास में विदेशी संस्कृति, परिवार, धार्मिक, ग्रामीण लोगों के जीवन का चित्रण तथा पारिवारिक समस्या का चित्रण किया है। युवा और युवा पीढीयों के जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया हैं। हर देश की अपनी एक संस्कृति होती है। अपने देश के संस्कृति के अनुसार लोग अपने जीवन जीते हैं। विदेश में लोग नोकरी,

व्यवसाय, पढाईं के लिए आदि भिन्न–भिन्न कारणों से जाते हैं। विदेश में रहते हुए लोगों को वहाँ के वातावरण, घटनाओं और परिस्थितियों की तरह रहना पडता हैं। स्वाभाविक रुप से वे संबंधित देश की संस्कृति आत्मसात करते हैं। विवेच्य उपन्यास में भारतीय परिवार का चित्रण हैं। अतः प्रस्तृत शोधपत्र में लेखक नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में चित्रित विदेशी संस्कृति संबंधी विवेचन किया हैं।

नरेश भारतीय : संक्षिप्त परिचय :–

प्रवासी साहित्यकार नरेश भारतीय जी का मूल नाम नरेश अरोड़ा है। नरेश भारतीय का जन्म 21 मई, 1940 में पंजाब (भारत) में हुआ। नरेश जी की प्रकाशित कृतियाँ 'दिशाएँ बदल गईं' (उपन्यास), 'सिमेट गई धरती' (आत्म संस्मरणात्मक उपन्यास), 'टेम्ज के तट से' (राजनीतिक लेखों का संग्रह), आतंकवाद, वैश्विक आतंकवाद का खोजपूर्ण अध्ययन आदि रचनाएँ हैं। नरेश जी लंदन में हिंदुस्तान समाचार समिति के संवाददाता भी रहे हैं। नरेश जी को राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित विश्व हिंदी सेवा सम्मान तथा आंतरराष्ट्रीय जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार 2001 से सम्मानित किया गया हैं।

'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास का परिचय :–

नरेश भारतीय का राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा सन 2006 में प्रकाशित उपन्यास 'दिशाएँ बदल गईं' हैं। नरेश जी का यह उपन्यास प्रवासी भारतीयों के जीवन पर आधारित उपन्यास है। उपन्यास में भारतीय परिवार का चित्रण हैं। उपन्यास में ब्रिटन में बसे तीन पीढीयों का चित्रण हैं। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विदेशी संस्कृति का चित्रण उपन्यास की खास विशेषता हैं।

'संस्कृति' शब्द का अर्थ :–

नालंदा विशाल शब्दसागर में 'संस्कृति' शब्द का अर्थ है– "1. शुद्धी । सफाई । 2. सुधार । संस्कार । 3. किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि के वे सब जी उसके मन, रुचि, आचार–विचार, कला–कौशल्य और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं। कलचर।"[1] शब्द के कोशगत अर्थ देखने के पश्चात 'संस्कृति' शब्द संबंधि मेरी धारणा है कि किसी समूह, देश–प्रदेश के लोगों का रहन–सहन एवं कुल जीवन पद्धति।

'विदेशी संस्कृति' का अर्थ :–

संस्कृति शब्द के पहले विदेशी शब्द जुड़ने से इसका अर्थ व्यापक हो जाता हैं। मातृभूमि की संस्कृति छोडकर अन्य किसी भी देश की संस्कृति संबंधित व्यक्ति के लिए विदेशी संस्कृति हैं।

'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में विदेशी संस्कृति :–

नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में विदेश में जन्में दुसरी और तीसरी पीढीयों का संस्कृति चित्रण किया है। उपन्यास में चित्रित पुरानी पीढी और नई पीढी के बीच बहुत ही अंतर हैं। युवा पीढी अपने मनमौजा जीवन जीना चाहती हैं। पहली पीढी भारतीय होने के कारण वह अपने संस्कारों को मानती हैं। लेकिन दूसरी और तीसरी पीढी इंग्लैड में जन्म होने के कारण वह उस देश के संस्कारों का अनुकरण करती हैं। उपन्यास में पहले पीढी के पात्र हैं राजेश और रुप, दुसरी पीढी के पात्र संजीव और हरिश, तीसरी पीढी के पात्र परमवीर और रेचल है। नरेश भारतीय ने अपने उपन्यास में नई संस्कृति का चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में संजीव और हरिश युवा पीढी के प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। रुप और राजेश उनके माता–पिता हैं। परमवीर और रेचल बच्चे के रुप में हमें दिखाते हैं। उपन्यास में उच्चवर्गीय, मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय परिवार का चित्रण

मिलता हैं। उपन्यास में वेशभूषा, खान–पान, रीति–रिवाज, धर्म, त्योहार, भाषा तथा मॉल संस्कृति का चित्रण किया हैं।

वेशभूषा :-

हर एक देश की अपनी एक वेशभूषा होती है। हर देश के प्रांतों की भी अलग–अलग वेशभूषा होती है। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में भारत और इग्लैड दोनो देशों की वेशभूषा का चित्रण किया हैं। उपन्यास में पहली पीढी भारतीय जो इग्लैड में बसी हैं वह अपने देश की तरह वेशभूषा पहनती है। लेकिन दुसरी पीढी इग्लैड मे जन्में के कारण उस देश की वेशभूषा को अधिक पसंद करते है। हर रोज के वेशभूषा, त्योहारो की वेशभूषा, विवाहों की वेशभूषा में भिन्नता होती है। इग्लैंड की वेशभूषा भारत की वेशभूषा से अलग–अलग प्रकार की होती है। उपन्यास में उपन्यासकार ने वेशभूषा के साथ–साथ आभूषणो का भी चित्रण करते है। उपन्यास में संजीव और हरिश नई पीढी का प्रतिनिधि पात्र हैं। संजीव के वेशभूषा के संदर्भ में उपन्यासकार कहते हैं कि, "सलवार और लम्बा चोंगा कानों में कुण्डल गले में ताबीज की तरह दिखने वाली तालाएँ हाथों ते उँगलियों में तरह–तरह की अँगूठियाँ।"...[2] इससे ज्ञात होता हैं कि, अग्रेजी वेशभूषा के संस्कृति पर आर्थिकता का प्रभाव नजर आता हैं। मध्यमवर्गीय परिवार में जन्म लिया संजीव ने अपनी वेशभूषा के संदर्भ में नजर आते हैं। अर्थात उपन्यास की कथावस्तु से यह स्पष्ट होता हैं कि विदेश में गए लोगों की अपनी नई पीढी की तरह अपने मूल देश वेशभूषा से संबंधित देश की वेशभूषा को पसंद करते हैं।

खान-पान :-

मनुष्य के जीवन में खान–पान का अनन्य साधारण महत्व होता हैं। खान–पान पर संबंधित देश, क्षेत्र की भौगोलिकता के साथ–साथ संस्कृति का भी का प्रभाव पड़ता है। साथ ही खान–पान पर आर्थिकता का प्रभाव भी पड़ता है। हररोज का खान–पान, चाय पानी के समय का खान–पान इसमें अंतर होता हैं। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में भारतीय और इग्लैड देश के खान–पान का पर्याप्त मात्रा में चित्रण मिलता हैं। विवेच्य उपन्यास में तीन पीढीयों के पात्र हैं। एक पीढी जो भारत में रही थी और बाद में इग्लेण्ड में बसी हैं तो दुसरी और तीसरी पीढी इग्लैण्ड में जन्मी और पली–बढी हैं। बुजुर्ग पीढी जो भारतीय व्यंजनों की जानकारी हैं तो नई पीढी को पाश्चात्य व्यंजनों को पसंद आते हैं।

उपन्यास में संजीव और हरिश नई पीढी का प्रतिनिधि पात्र हैं। उसके माता–पिता रुप और राजेश हैं। इग्लैंड में पिझ्झा, बर्गर, गोस्तहार को अधिक महत्व हैं। त्यौहार, उत्सव, के समय ही नहीं तो हर रोज के खान–पान में यह व्यंजन दिखाई देते हैं। वहाँ शराब पानी आम बात हैं। भारतीय संस्कृति की तरह चोरी–चुपके शराब पान नहीं किया जाता बल्कि परिवार के सदस्य शराबपान संबंधी खुले आम बोलते हैं। उपन्यास में परमवीर और रेचल के बीच का संवाद इस दृष्टि से संदर्भित– "'मॅकडोनल्ड' रेचल बोली 'नही कंटकी फाइड चिकन'।"[3] इससे विदित होता है कि इग्लेण्ड में स्त्री–पुरुष गोस्तहार और शराबपान करते हैं। मध्यमवर्गीय परिवार के परमवीर और रेचल खान–पान के संदर्भ में स्वच्छंदी नजर आते हैं। उपन्यास में सब्जी, फलाहार का चित्रण न के बराबर हैं। अर्थात उपन्यास की कथावस्तु की मर्यादा होने की बावजूद यह स्पष्ट होता हैं कि, मूल विदेश में गये लोगों की नई पीढी अपने मूल देश के खान–पान की अपेक्षा संबंधित देश के खान–पान पसंद करते हैं।

त्योहार :-

विश्व में अलग–अलग के प्रकार के त्योहार होते हैं। हर देश में त्योहार अलग–अलग तरीकों से मनाये जाते हैं। त्योहारों पर संबंधित क्षेत्र की भौगोलिकता के साथ संस्कृति का प्रभाव पड़ता हैं। साथ ही त्योहारों पर भी आर्थिकता का प्रभाव पड़ता हैं। भारत को त्योहारों का देश भी माना जाता हैं। भारत में हर महिनों में कोई–न–काई त्योहार मनाया जाता हैं। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गईं' उपन्यास में भारत और इग्लैण्ड के त्योहारों का चित्रण मिलता हैं। विवेच्य उपन्यास में तीन पीढीयों के पात्र हैं। एक पीढी जो भारत में रही थी और बाद में इग्लैण्ड में बसी हैं तो दुसरी और तीसरी पीढी इग्लैण्ड में जन्मी है।

उपन्यास में संजीव और हरिश नई पीढी के पात्र हैं। भारत जैसे इंग्लैण्ड में भी अलग–अलग तरह के त्योहार मनाये जाते है। इंग्लैण्ड के त्योहारों में क्रिसमस यह त्योहार महत्वपूर्ण माना जाता हैं। उपन्यासकार अपने उपन्यास में त्योहारों के बारे में कहते हैं कि, "क्रिसमस के हलचल खत्म हो चुकी थी। नए वर्ष के स्वागत समारंभ शांत पड़ गए थे। संजीव ने रुप और राजेश को क्रिसमस और नए वर्ष के शुभ कामनाओं के साथ कार्ड भेजा था।"[4] इससे ज्ञात होता हैं कि इंग्लंड में क्रिसमस और नए वर्ष यह त्योहार मनाते हैं। अंग्रेजी त्योहारों के संस्कृति पर आर्थिकता का प्रभाव पड़ता हैं। अर्थात उपन्यास की कथावस्तु कि, मर्यादा होने के बावजुद स्पष्ट होता हैं कि, विदेश में गए लोगों की नई पीढी विदेश के त्योंहार को मनाना जादा पसंद करते हैं।

रीति-रिवाज :-

मनुष्य के जीवन में संस्कारों को बहुत ही महत्व है। रीति–रिवाजों पर संबंधीत देश विदेश की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। भारतीय संस्कारों को अनन्य साधारण महत्व है। भारत एक ऐसा देश हैं जिसमें सर्वधर्म के लोग रहते हैं। उसके रीति–रिवाज अलग–अलग होते हैं। विदेश में एक धर्म के लोगों की संख्या बहुत होने के कारण उनके विवाह संस्कार एक ही प्रकार के होते हैं। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गई' उपन्यास में भारतीय और इंग्लैंड देश के रीति–रिवाजों का पर्याप्त मात्रा में चित्रण मिलता हैं। यह उपन्यास में तीन पीढीयों का चित्रण हैं। पुरानी पीढी को भारतीय परंपराओं की जानकारी हैं तो नई पीढी को पाश्चात्य विदेशी परंपराओं की जानकारी हैं।

उपन्यास में संजीव और हरिश नई पीढी का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। इंग्लैंड में रीति–रिवाजों की भिन्न प्रकार की परंपरा हैं। उपन्यास में संजीव और शारलोट के विवाह संस्कार से संदर्भिय यह कथन हैं "दूल्हा और दूल्हन एक–दूसरे से आजीवन प्रेम करने, परस्पर सहयोग और सुख–दुःख में एक दूसरे का पूरा साथ देने का वचन देते हैं। अंगुठी पहनाते हैं।"[5] इससे विदित होता है कि, संजीव और शारलोट के विवाह संस्कारों का चित्रण किया है। इंग्लैंड के विवाह संस्कार भारतीय परंपराओं से भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। अर्थात् उपन्यास की कथावस्तु की मर्यादा होने के बावजूद यह स्पष्ट होता है कि विदेश से गई पीढी अपने मूल देश के लोगों के नई पीढी के रीति–रिवाजों से संबंधित देश के रीति–रिवाजों अधिक पसंद करते हैं।

धर्म :-

विश्व में अनेक धर्म–जात–पात के लोग रहते हैं। अनेक देश के अलग–अलग धर्म होते हैं। भारत देश को धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता को समाज द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है। भारत के इतिहास में धर्म एक महत्वपूर्ण संस्कृति हैं। विश्व के चार प्रमुख धर्म हैं– हिंदु धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म।

इंग्लैंड में क्रिश्चियन धर्म के लोग बहुत हैं। विदेश में एक ही धर्म के लोग आप को देखने को मिलते हैं। हर एक देश का अपना एक धर्म होता हैं। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गई' उपन्यास में भारतीय और इंग्लैंड जैसे धर्मों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

उपन्यास में संजीव और हरिश नई पीढी के पात्र है। भारत सर्वधर्म समभाव से युक्त ऐसा देश है। इंग्लैण्ड में भी अनेक प्रकार के लोग रहते हैं। वहाँ के लोग अपने धर्म के तरह रहना पसंद करते हैं। उपन्यास में उपन्यासकार ने धर्मों का चित्रण करते हुए कहाँ हैं, "मुसलमानों की एक धार्मिक पुस्तक हैं कुरान। सिखों का गुरुग्रंथ साहब हैं और इसाईयों की बाईबल।"[6] इससे विदित होता हैं कि इंग्लैंड में क्रिश्चियन धर्म के लोगों के साथ–साथ अन्य धर्म के लोग भी रहते हैं। उपन्यास की कथावस्तु की मर्यादा होने के बावजुद यह स्पष्ट होता हैं कि विदेश में गये मूल भारतीय लोग अपने–अपने धर्मों का पालन भी करते हैं। साथ–साथ विदेशी धर्मो का भी पालन करते हैं।

भाषा :–

विश्व में अंग्रेजी भाषा का प्रभाव बहुत है। भाषा का प्रभाव संस्कृति पर भी पड़ता है। लोग अपने देश की तरह भाषा सिखते हैं। हर एक प्रांत की अपनी भाषा है। जैसे भारत में हिंदी भाषा का प्रभाव अधिक होता है। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गई' उपन्यास में भारत और इंग्लैंड देश की भाषा का चित्रण किया है। इंग्लैंड के लोगों की बोली भाषा अंग्रेजी ही है और यह अंग्रेजी भाषा से उनका जीवन प्रभावित है। उपन्यास में संजीव और हरिश नई पीढी के प्रतिनिधि पात्र हैं। उपन्यास में उपन्यासकार ने भाषा के बारे में कहते हैं– "संजीव पश्चिमी जीवन से अधिक प्रभावित था, पर थोड़ा बहुत भारतीयता का अंश उसमें भी थे।' हरीश हिंदी बोल लेता था, संजीव नही।"[7] इससे विदित होता हैं कि इंग्लैंड में अंग्रेजी भाषा बोलचाल की भाषा है। मध्यमवर्गीय परिवार के हरीश और संजीव के भाषा के संदर्भ में यह कथन नजर आता हैं। उपन्यास की कथावस्तु की मर्यादा होने के बावजूद यह स्पष्ट होता हैं कि मूल विदेश में गए लोगों की नई पीढी उस देश की भाषा की अपेक्षा संबंधित देश की भाषा को अधिक पसंद करते हैं।

मॉल संस्कृति :–

मॉल संस्कृति समाज की एक नई संस्कृति है। मॉल संस्कृति पर आर्थिकता का प्रभाव भी पड़ता है। नरेश भारतीय कृत 'दिशाएँ बदल गई' उपन्यास में भारत और इंग्लैंड देश की मॉल संस्कृति का पर्याप्त चित्रण मिलता है। विवेच्य उपन्यास में तीन पीढीयों के पात्र हैं। एक पीढी भारत में रहकर इंग्लैंड में बसी हैं तो दूसरी और तीसरी पीढी इंग्लैंड में जन्मी है। उपन्यास में संजीव और हरीश नई पीढी के प्रमुख पात्र हैं। इंग्लैंड में बड़े–बड़े मॉल आपको दिखाने को मिलते हैं। भारत में रस्तों पर दुकाने, मॉल देखने को मिलते हैं। भारत से अलग प्रकार के मॉल इंग्लैंड में हैं। कपड़ो, आभूषण, खान–पान जैसें अन्य प्रकार के दुकाने देखने को मिलती हैं। उपन्यासकार मॉल संस्कृति के बारे में कहते हैं – "कपडों, गहनों और खाने–पीने की दुकानों की भरमार हैं।"[8] इससे ज्ञात होता हैं कि इंग्लैंड में मॉल जैसे सुविधा में आपको सभी चीजे देखने को मिलते हैं। यह मॉल की सुविधाएँ भारत से ही बहुत अच्छी होती हैं। उपन्यास की कथावस्तु की मर्यादा होने के बावजूद यह स्पष्ट होता हैं कि मूल विदेश में गये लोगों की नई पीढी मॉल संस्कृति को अधिक पसंद करती हैं।

निष्कर्ष :-

बीसवी शती के प्रारंभ में ही प्रवासी साहित्य का विकास हुआ हैं। प्रवासी साहित्य में साहित्यकारों ने विदेशी संस्कृति की चर्चा की है। नरेश भारतीय जी ने अपने उपन्यास 'दिशाएँ बदल गई' उपन्यास में प्रवासी जीवन के अंतर्गत इंग्लैंड में बसे परिवार का चित्रण किया है। इसमें प्रथम पीढी जो भारतीय जन्म भूमी के संस्कारों की हैं और दुसरी–तीसरी पीढी इंग्लैंड में जन्म होने के कारण अंग्रेजी संस्कारो से परिचित हैं। यह पीढी मूल भारतीय होकर भी इंग्लैंड में जन्म होने के कारण भारतीय संस्कारों को भूल जाकर विदेशी संस्कृति का अनुकरण करते हैं। अनेक प्रवासी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से विदेशी संस्कृति का चित्रण किया हैं। उपन्यास में उपन्यासकार ने आज की युवा पीढी का चित्रण किया हैं। नरेश जी ने उपन्यास में देश–विदेश की संस्कृतियों का चित्रण किया हैं।

संदर्भ सूची :-

1. श्री नवल जी, नालंदा विशाल शब्दसागर, आदिश बुक डेपो, 7ए/29, डब्ल्यु.इ.ए. करेल बाग, नयी दिल्ली 110005, संस्करण 2017 पृ. क्र. 1388
2. नरेश भारतीय दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 36
3. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 131
4. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 135
5. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 152
6. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 50
7. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 37
8. नरेश भारतीय, दिशाएँ बदल गई, राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006। पृ. क्र. 147

मु. पो. केंजळ, तहसिल –वाई,
जिला – सातारा
फोन नंबर 7887538913
charushilak01@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 164-166

मध्यप्रदेश की सहरिया जनजाति की उत्पत्ति

प्रो. रंजना टोणपे, विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशिका
ममता गौड़, शोधार्थिनी
संगीत संकाय (गायन), राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म.प्र.

सारांश :-

सहरिया जनजाति मध्यप्रदेश की अत्यंत पिछड़ी जनजाति के रूप में जानी जाती है। वैसे तो यहां की अन्य अत्यंत पिछड़ी जनजातियों में गोंड, कोल, कोरकू, भारिया, बैगा जनजातियां प्रमुख रूप में जानी जाती हैं। चूंकि मैं पिछले कई वर्षों से सहरिया जनजाति के साथ अपना समय व्यतीत कर रही हूँ और एक उक्त प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय से शोधार्थिनी के रूप में प्रगतिशील भी हूँ। मैं अपनें शोध के माध्यम से इस जनजाति के सांगीतिक पहलुओं को समाज से शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी परिचित कराना चाहती हूँ।

भूमिका :-

मध्य प्रदेश की अनेक जनजातियों में सहरिया जनजाति एकमात्र ऐसी जनजाति है जिसकी कोई उप जनजाति नहीं है। यह अपनी विभिन्नताओं व पारंपरिक सांस्कृतिक परिवेश तथा स्वभाविक गुणों के आधार पर जाने जाते हैं। लगभग जनजातियों की तरह यह भी प्रकृति का आश्रय लेना पसंद करते हैं।

इनकी उत्पत्ति की अनेक कथायें समाज में प्रचलित रहीं हैं। इनकी कथाओं से भी हमें इनकी प्राचीनता के प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते हैं। इनमें खान–पान, रहन–सहन, पहनावा आदि के अलावा औषधियों के अच्छे और काबिल जानकर लोग भी होते हैं।

मैं अपने इस शोध पत्र के माध्यम से सहरिया जनजाति की उत्पत्ति की कुछ कथाओं से समाज को परिचित कराना चाहती हूँ। इस शोध पत्र को मैनें अपनी शोध निर्देशिका के सानिध्य में सम्पन्न करनें का प्रयास किया है।

उत्पत्ति :-

एक बार ब्रह्मा जी ने मनुष्यों को बनाया। जब उन्होंने बहुत सारे मनुष्यो का निर्माण किया। तब सबसे पहले जिस मनुष्य का निर्माण किया था वह सबसे पीछे रह गया और जिनका निर्माण होता क्या वे सब आगे होते गए। तब ब्रह्मा जी ने उन निर्मित मनुष्यों को सृष्टि पर कार्य करने के लिए भेजने से पहले सभी को उनके वर्ण के आधार पर कार्य विभाजित किया और कार्य के अनुरूप उन्हें कहा की जो कार्य तुम लोगों को लेना हो उसके आधार पर वस्तुओं को चुन लो। उन सभी मनुष्यों ने वर्ण के आधार पर अपने–अपने वस्तुओं को चुन लिया। तब उनमें से ब्रह्मा जी ने जो सबसे पहले व्यक्ति की संरचना की थी वह व्यक्ति सबसे आखरी में था उसका नंबर

आते ही आते सारी वस्तुएं लगभग खत्म हो गई जो वर्ण के आधार पर विभाजित की गई थी। उसे व्यक्ति ने ब्रह्मा जी से अनुरोध किया कि मेरे लिए तो कोई वस्तु बची ही नहीं है तो मैं क्या करूं। तब ब्रह्मा जी ने उसे मिट्टी खोदने की वस्तु दी, और कहा कि तुम जंगलों में जाकर काम करो। कालांतर में इन्ही को खुटिया कहा जाने लगा, जो सहरियाओं की उत्त्पत्तिकर्ता रहे।

एक और इनकी उत्त्पत्ति के विषय मे कथा प्रचलित है कि एक बार भगवान शिव ने सहरियांव को जंगल साफ करने के लिए धरती पर भेजो और साथ ही सहायता करने के लिए अपने नंदी (बैल) को भी भेजा। और यह आदेश दिया कि यह पूरा जंगल साफ करो तब तक सहायता पढ़ने पर मैं दूसरा बैल भी तुमको ला करके देता हूं। पूरी मेहनत व तालीनता से इन लोगों ने पूरे जंगल को साफ कर डाला उसके पश्चात इन्हें भूख लगी। भूख लगने पर उन्हें जब कुछ नहीं मिला तो उन्होंने नंदी को ही मारकर खा डाला।

जब भगवान शिव ने धरती पर आकर जंगल को देखा। उसके उपरांत सहरियाओं ने जंगलों में उत्पन्न जड़ी–बूटियों की जानकारी भी दी। जिससे भगवान शिव अत्यधिक प्रसन्न हुए। लेकिन जब उन्होंने नंदी के बारे में पूछा तो सहरियांव ने को जवाब नहीं दिया। बहुत ढूंढने के बाद उन्हें नदी के अस्थि–पंजर मिले उन अस्थि–पंजारों को भगवान शिव ने अमृत डालकर जीवित किया। पूरी घटना नंदी ने स्पष्ट कर दी कि इन्ही सहरियाओं ने भूख लगने पर मुझे मारकर खा लिया था। भगवान शिव ने क्रोधित होकर इन शहरियों को श्राप दिया और कहा कि तुम हमेशा ऐसे ही आलसी, निकर्मण्य बने रहोगे।

ऐतिहासिक काल में जब प्रगति तक चित्रों में हमको नृत्य के चित्र मिलते हैं गुफाओं में रहने वाले मनुष्य ने बनाया विकसित नहीं थी तब उसने वहां पर नृत्य के चित्र बनाएं और पशु पक्षियों की चित्र बनाएं तो सबसे पहले हमको जो व्यक्ति के चित्र दिखाई देते हैं की चित्र डीपी से भी पहले संगीत उत्पन्न हुआ। एक और उनके संगीत की विशेषता है कि वह हमेशा एक व्यक्ति के साथ केवल गीत गाते ही नहीं है जबकि उसके साथ नृत्य भी होता है।

शिव को संगीत का जनक बना नृत्य और संगीत दोनों का। लेकिन जनजातीयों ने संगीत को पहले ही उत्त्पन्न कर लिया था। एक भेद की कथा मैं आपको बताना चाहता हूं संगीत के बारे में महादेव उनके आदि देवता हैं। जनजातिय लोग इन्हें देवाधिदेव मानते हैं। मतलब देवताओं के भी आदिदेव हैं।

जो महादेव की पूजा करते हैं उन्हें बूढ़ा देव, बड़ा देव या लिंगो देव कहते हैं। अपनी उत्पत्ति महादेव से मानते हैं तो संगीत के बारे में महादेव आदिवासियों की देवता और जब तक पार्वती से विवाह नहीं किया था तब तक वह रुद्र थे, महादेव थे। पार्वती जी से विवाह होने के बाद महादेव शिव कहलाए। पार्वती राजा की पुत्री थी अर्थात् सम्भ्रांत परिवार से थी और महादेव आदिवासियों के देवता। इसीलिए जब दक्ष ने यज्ञ किया तो शिव को नहीं बुलाया क्योंकि ये आदिवासी देवता थे। लेकिन पार्वती ने शिव को पिता के यहां यज्ञ होने पर बुलाया। लेकिन शिवा राजा दक्ष के यहां यज्ञ में उपस्थित होना नहीं चाहते थे, उनका कहना था कि यदि कोई बात हो जाएगी तो सती तुम गुस्सा हो जाओगी। लेकिन कई बार मना करने पर भी राजा दक्ष के यहां होने वाले महायज्ञ में उन्हें बुलाया। जब महादेव यज्ञ में पहुंचे तो वहां उनका बहुत अनादर हुआ कारणवश माता सती यह देख बहुत ग्लानि महसूस करती हैं, और उसी हवन कुंड में अपने को समर्पित कर देतीं हैं।

मध्य प्रदेश तो जनजातीय बहुल प्रदेश है। यहां बहुत सी जनजातियां निवास करती हैं। यहां की मुख्य

जनजातियों के रूप में सहरिया जनजाति को देखा जाता है। यह जनजाति मध्य प्रदेश के शिवपुरी, श्योपुर, गुना, अशोक नगर आदि जगहों पर बहुतायत पाए जाते हैं। राजस्थान की सीमा पर भी सहरिया लोग निवास करते हैं। सबसे अधिक पाई जाने वाली जनजाति यहां भील जनजाति है जो धार तथा झाबुआ आदि क्षेत्रों में निवास करती है। यहां की भारिया, बैगा, कोल गोंड आदि जनजातियाँ हैं जो मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं।

सहरिया लोग आज भी प्राकृतिक रूप से रहना पसंद करते हैं। समाज की भौतिकता का इन पर यही दुष्प्रभाव पड़ा की विस्थापन की स्थिति में इन्हें जंगलों से अलग कर दिया गया। लेकिन कुछ कुछ सहरिया अभी भी जंगलों में निवास कर रहे हैं, उदाहरण स्वरूप हम श्योपुर से शिवपुरी की सड़क के मध्य बसे सहारियों की बात करें तो। यह लोग आज भी अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रहन–सहन, पहनावे, खान–पीन आदि को संजोए हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. श्री अरुण कुमार सक्सेना 'अरुण अपेक्षित' जी के साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।
2. श्री बसंत निरगुणे जी के साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।
3. श्री प्रमोद भार्गव जी के साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।
4. भार्गव, प्रमोद, सहरिया आदिवासी जीवन और संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021
5. निरगुणे, वसंत, लोक–संस्कृति, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 2022

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 167-169

जीवित लोगों का मृत्युभोज - चहल्लुम

दीपक कुमार सेठिया
(नेट, सेट, हिन्दी) शिक्षक, मा. शा. पुलचा जगदलपुर, बस्तर, छ.ग.।

कथाकार शानी मुस्लिम जीवन चित्रण के सच्चे और प्रामाणिक कथाकार है। मुस्लिम जीवन की आँखों देखी सच्चाई उनकी रचनाओं में अंकित है। हिंदी में मुस्लिम जीवन चित्रण के पहले बड़े कथाकार माने जाते है मुस्लिम जीवन के धर्म आस्था परंपराओं के साथ ही वे वहाँ के पाखंड कुरीती और प्रवंचनाओं को भी अपनी लेखनी से उकेरते है। यहाँ उनकी कहानी 'चहल्लुम' में यह देख सकते है।

इस कहानी में शानी प्रगतिशील तेवरो के साथ मुस्लिम समाज में प्रचलित ''चहल्लुम'' (मृत्युभोज) जैसी सामाजिक कुरीतियों की विसंगति तथा दस्तूर के नाम पर फिजुल खर्ची पर व्यंग्य किया है और ऐसे रस्मो–रिवाजो की निस्सारता का पर्दाफाश किया है। इस कहानी में चहल्लुम' के बावजूद उत्सव धर्मी माहौल का अंकन है। मरियम और उसकी बदनसीब बेटी का मौन रूदन सारे परिवेश में आकाश में कौंधती बिजली के समान चमकती रहती है। अपनी जवान बेटी गुलशन के भविष्य की और से अंधी होकर मरियम बडे तामझाम तथा खर्च से पति का चहल्लुम करती है। जबकि आये हुए करीब मेहमान तथा रिश्तेदार भी अपने हंसी तथा कहकहा से यह लगा नहीं कि वे चहल्लुम में आये है।

सिराजमियाँ अपनी पत्नी और इकलौती बेटी गुलशन को छोड कर चले गए। अपने जीवन में स्वभाव से दब्बू और अडियल सिराजमियाँ किसी प्राइवेट मोटर कंपनी में नौकरी पर थें। पर नशाखोरी की उन्हे ऐसी लत थी जो उनकी जान ही लेकर गयी। शराब की लत ने उनके स्वास्थ्य और सेहत पर बुरा असर डाला। लेकिन 'शराब न पीने की' बात पर वे हस कर टाल दिया करते थे। धीरे–धीरे उनका शरीर खोखला होता गया और दुनिया जहान की बिमारियो ने उन्हे घेर रखा था। बदहवास होकर अस्पताल और दवाखानो का चक्कर काटना, उनकी दिन चर्या बन गई थी। ऐसे में माँ पत्नि–बच्चे सहित रिश्तेदारो की भी आशा टूटने लगी लेकिन वे ठीक हुए काम काज भी जाने लगे परंतु अपने तबादला आर्डर को रद्द करवाने, रायपुर गये तो आते समय राह में ही उनकी मृत्यु हो गई। उनकी इकलौती जवान बेटी गुलशन की शादी की फिक्र उन्हें नही रही, न उसके लिए पैसो की व्यवस्था की भले ही गुलशन का ''पान'' होकर रिश्ता टूट गया था, उसमें रूप भले ही न हो काली कलौटी ही सही लेकिन उनकी दृष्टि में उसकी शुमार अच्छी लडकियों में थी। अतः बेफ्रिक रहे, लेकिन उनके जाते ही मरियम के मन में बेटी के भविष्य का प्रश्न कौंधता है। जो बहन और रिश्तेदार उनके जनाजा पर ढांढे मार मारकर रो रहे थे आज चहल्लुम में मानो उस दर्दनाक घटना को भूल चुके है–'' रायपुर वाली ननद हंस हंसकर काम कर रही है उनकी जवान ब्याहता लड़की ने उम्दा साड़ी पहन रखी थी। जब वह किसी से

मुस्कुराकर बाते करती तो उसके कान के झुमके झिलमला उठते। मरदाने में बैठे मास्टर साहब के दोस्तो को थोड़ी–थोड़ी देर में किसी न किसी चीज की जरूरत पड़ती थी जल्दी करने के लिए जब मास्टर साहब खुद परदे के इस पार आ जाते तो उन्हे देखकर विश्वास ही नही होता, चेहरे से ये बिल्कुल नहीं लगता कि अभी कुछ दिनो पहले उनके साले का इंतकाल हुआ है। अडोसी–पडोसी रिश्तेदार, हमदर्द और अपने पराए से लेकर बर्तन साफ करने वाली सब जैसे उस घटना को भूले हुए है।''[1]

मरदानी बैठक से आने वाली कहकहे मरियम के दुःखी मन को शूल की तरह चुभते है। हजियाइन दादी आँखे तरेर कर कहती है –'' कुछ तो मौके का ख्याल करना चाहिए। भई चहल्लुम की दावत है, कोई वलीमा का खाना तो नहीं'' फिर थोड़ा रूक कर व्यंग्य करती हुई कहती है। ''जिसकी जान गई उसकी गई। नसीब फुटे होंगे मरियम के हमें तुम्हें क्या? हम लोगो के लिए तो चहल्लुम भी जशन हो जाता है।''[2] दूसरी और व्यथित और दग्ध हृदया मरियम और गुलशन मौन रूदन करते है, उनके रूदन में मेहमानो की विपरीत प्रतिक्रियात्मक व्यवहार अपने भविष्य की चिंता तथा सिराजमियाँ को खोने का दुःख तीनो सम्मिलित है। मृत व्यक्ति के नाम पर ढेरो खाने की बर्बादी तथा तामझाम ढोंग तथा उतने पैसे की मरियम और गुलशन के लिए महत्ता के बावजूद व्यर्थ हो जाने का दर्द भी है। कथा समीक्षक मधुरेश के शब्दो में'' मेहमानो के उत्सव धर्मी जमावडे के दृश्य में गुलशन और मरियम की मौन पीड़ा के संकेत पूरी कहानी में बड़े कलात्मक ढंग से बुने गए है। इन दोनो के भविष्य पर बड़ा–सा प्रश्न चिन्ह लगाते हुए ढेरो खाने की बर्बादी इस पूरी रस्म की व्यर्थता को रेखांकित कर जाती है।''[3]

संपूर्ण कहानी मरियम के दृष्टिकोण से कही गई है। अतः वही इस कथा की साक्षी है, उसमें तीन दर्द हैं– सिराजमियाँ को खोना, मेहमानो का अनपेक्षित व्यवहार तथा अपनी और खासकर जवान बेटी गुलशन की चिंता। ''चहल्लुम'' में अधिक ताम झाम तथा खर्च न करने की बात पर वह अड़िग नही रह पाती क्योकि ननद की गोलमोल बाते तथा ताने वह सह नहीं पाती पैसो का उसके जीवन में विशेष महत्व है। लेकिन अपनी तथा बेटी के भविष्य के भार से अंधी होकर पैसा पानी की तरह बहादेती है। लेकिन मेहमानो के कह कहे हंसी मजाक उसके दग्ध हृदय में शूल की तरह चुभते है। ननद और मास्टर साहब का व्यवहार भी दिखावा है। जनाजा में ढाँढे माकर रोने वाली बहन तथा जीजा का व्यवहार चहल्लुम में उत्सव के समान हो जाता है। सभी प्रसन्नचिंत नजर आते है, जैसे कुछ न हुआ हो। सिराजमियाँ एक निम्न वर्गीय व्यक्ति चरित्र है। जिसे शराब खोरी ने ग्रस लिया है, उसे ही नही उसके स्वास्थ्य को भी, फिर भी शराब के दीवाने है, यही नही अपनी बेटी के व्याह तथा उसके लिए पैसो की चिंता भी नही है। परिवेश की दृष्टि से इस कहानी में वातारण को जीवंत कर दिया गया है। समीक्षक मधुरेश के शब्दो में,–'' चहल्लुम में समूचे परिवेश के जीवंत चित्रांकन की जो पद्धति अपनायी गयी है, उससे चहल्लुम की समूची रस्म की अर्थहीनता बड़े कुरूप ढंग से स्पष्ट हो सकती है।''[4] मरियम सबको देख चुप–चाप आंसू ढाल रही थी, लेकिन कोई उसे नहीं देख रहा था उसके दर्द को नही पहचान रहा था। मेहमानो को खिलाने के साथ घर के लिए बांधकर भेजा जा रहा था, लेकिन मरियम, गुलशन को सहानुभूति से खाने के लिए कहने वाला कोई न था। यही नही इतना बिरयानी बनाया गया कि एक चौथाई बचकर व्यर्थ हो गया। जिन 300 रूपये से ये सारे ताम झाम खर्च हो रहे थे वे उनके लिए बड़े महत्व के थे, परंतु भविष्य से अंधी होकर खर्चकर रहे थे, इसका दर्द भी मरियम को था।

इस कहानी के शिल्प में वर्तमान घटनाक्रम परिप्रेक्ष्य को पार्श्व–भूमि देने के लिए फ्लैशबैक में सिराज मियाँ के व्यक्तित्व को उभारा गया है। चूँकि सिराजमियाँ के इंतकाल के बाद उनके 'चहल्लुम' की रस्म अदायगी की जा रही थी ऐसे में उनके परिजनों को उनकी स्मृति स्वभाविक है। उनकी कही बाते, उनकी आदते उनका स्वास्थ्य, सभी बाते रह रहकर याद आती हैं और कथा को सार्थकता प्रदान करती है।

इस प्रकार 'चहल्लुम' कहानी में शानी ने मुस्लिम समाज के अंर्तविरोध, कुरीति और परंपराओं के नाम पर प्रचलित पाखंड का भंडाफोड किया है। यहाँ उनकी प्रगतिवादी सरोकार के दर्शन होते है। निश्चय ही शानी की यह कहानी भीष्म साहनी की ''चीफ की दावत,'' यशपाल की ''परदा'' तथा प्रेमचंद की ''पूस की रात'' या ''कफन'' की तरह ही है। वही तेवर वही आवेग।

संदर्भ :-

1. सब एक जगह एक – शानी, पृष्ठ 335
2. सब एक जगह एक – शानी, पृष्ठ 351
3. नई कहानी पुनर्विचार – मधुरेश, पृष्ठ 205
4. नई कहानी पुनर्विचार – मधुरेश, पृष्ठ 205

पता :–

G-24 मेघकुंज ग्राम–घाटपदमूर (भाटागुड़ा), पोस्ट–धरमपुरा जिला बस्तर (छ.ग.)

email-id :- rajeshsethiya77@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 170-173

हिंदी के प्रमुख कहानीकार और उनकी कहानियों में गाँव

षेक करीमुन्नीसा, शोधार्थी
प्रो. संजय एल. मादार, शोध निर्देशक
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, तेलंगाना।

देशकाल तथा वातावरण चित्रण में स्थानीय रंग तथा ग्रामीण भाव–बोध या आंचलिकता प्रेमचंद युग में महत्व प्राप्त कर चुके है। कालांतर में खासकर स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्रामीण परिवेश एक स्वतंत्र प्रवृत्ति के रूप में स्थापित हुई तथा इसने साहित्य की प्रत्येक विधा को प्रभावित किया। ग्रामीण भाव से ओत–प्रोत कहानियों की शुरुआत बहुत पहले हुई थी। हंस और विप्लव जैसी पुरानी पत्रिकाएँ देखें तो उनमें कई कहानियाँ प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त हुआ करती थी। स्वातंत्र्योत्तर काल में कई कहानीकारों ने गाँव को अपनी कहानी का विषय बनाकर उसका चित्रण किया। हिंदी के विभिन्न कहानीकारों ने ग्रामीण जन–जीवन के स्वाभाविक दृश्यों को अपनी भाषा और शैली के माध्यम से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, भैरवप्रसाद गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ रेणु, रामदरश मिश्र, शैलेश मटियानी, मेहरून्निसा परवेज, राजेन्द्र अवस्थी, मधुकर सिंह, काशीनाथ सिंह, मार्कण्डेय, हिमांशु जोशी, भीमसेन त्यागी, विवेकीराय, चंद्रप्रकाश पांडेय, प्रभु जोशी, असगर वजाहत, मिथिलेश्वर, बलराम, शेखर जोशी आदि हिंदी कहानीकारों ने अपनी–अपनी कहानियों में ग्राम–जीवन, ग्रामीणों पर होने वाले अत्याचार, अन्याय और जाति–संघर्ष आदि का उल्लेख किया है।

स्वतंत्रता के बाद की कहानियों के बारे में बच्चन सिंह लिखते हैं–"देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद जिस तरह शासकों का ध्यान गाँव की ओर गया उसी प्रकार कुछ कहानी–लेखकों ने भी गाँव को विषयवस्तु के रूप में चुना। इनमें शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय और फणीश्वरनाथ रेणु प्रमुख हैं। इनके गाँव प्रेमचंद के गाँव से भिन्न हैं। प्रेमचंद की कहानियों पर स्वतंत्रता–संग्राम और गाँधीवादी मूल्यों का प्रभाव है। किंतु इन कहानीकारों की प्रारंभिक कहानियों में गाँव की मिट्टी की महक और लोगों के जीवट के चित्र खींचे गये हैं जो मूलतः रोमैंटिक हैं।" प्रेमचंद हिंदी के प्रमुख कहानीकार हैं। इन्होंने ग्राम्य जन–जीवन संबंधी अनेक कहानियाँ लिखी, जिनमें ग्रामीण यथार्थ संबंधी विभिन्न बातों का उल्लेख किया गया है। 'सवा सेर गेहूँ', 'सती', 'सद्गति' आदि ग्रामीण जीवन की कथाओं में उन्होंने ग्राम जीवन तथा वहाँ के रहन–सहन व शोषण आदि स्थिति को स्पष्ट किया है। 'सवा सेन गेहूँ' कहानी में शंकर जैसा सीधा सादा किसान विप्र के ऋण को खलिहानी के रूप में दे देने पर भी उऋण नहीं हो पाता तथा आजीवन विप्र महाराज की गुलामी कर अपने प्राण त्याग देता है और अपने ऋण का भार विरासत के तौर पर अपने पुत्र पर लाद जाता है। सती कहानी की मुलिया, अपने कुरूप पति कल्लू से बहुत प्रेम करती

है। जब कल्लू को अपने चचेरे भाई राजा और अपनी पत्नी पर शक होने लगता है, तब उसकी पत्नी उसकी बीमारी में खूब सेवा कर, विश्वास प्राप्त कर लेती है। कल्लू की मृत्यु के पश्चात् जब राजा मुलिया से अपने प्रेम के बारे में कहता है, तब वह अपने दिल में छिपे, कभी न मरने वाले कल्लू के प्रेम को बताती है। सद्‌गति कहानी का दुखी चमार अपनी बेटी की सगाई करवाने के लिए पंडित घासीराम को लेने जाता है और पंडित के कहने पर भूखे पेट, पंडित के घर के सारे काम करते–करते अपने प्राण त्याग देता है। जब लाश को ले जाने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता तब पंडित स्वयं दुखी की लाश को खेत में फेंक देता है, जो गीदड और गिद्ध का भोजन बन जाती है।

जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम', 'दुखिया', 'मधुआ तथा घीसू' कहानियाँ ग्राम संबंधी कहानियाँ हैं। ग्राम कहानी में महाजन से लिए गए ऋण को समयानुसार वापस करने पर भी महाजन के उस ऋण को आठ दिन बाद लेने और आठ दिनों में उस व्यक्ति से ऋण के स्थान पर उसकी जमीन ले लेने के षड्यंत्र का चित्रण किया गया है। गाँव में गरीब व्यक्तियों पर होने वाले अत्याचारों को दर्शाते हुए जयशंकर प्रसाद दुखिया कहानी में बताते है कि जमींदार के घोड़ों को घास देनेवाली दुखिया कहानी में बताते हैं कि जमींदार के घोड़ों को घास देनेवाली दुखिया, घायल जमीदार कुमार मोहनसिंह की रक्षा करते हुए एक दिन घास ले जाने में विलम्ब करती है, तो पशुशाला का निरीक्षक नजीब खाँ उसकी बातों पर विश्वास न कर, उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। जयशंकर प्रसाद ने जमींदार के दुराचार को मधुआ कहानी में भी दर्शाया है। ठाकुर साहब की दिन–भर नौकरी करने पर भी मधुआ को खाना नहीं मिलता था, जबकि शराबी झूठी कहानियाँ सुनाकर उनसे (जमींदार से) रूपया आदि पा लेता था। अंततः शराबी के साथ मधुआ सान देने लगा और ठाकुर साहब की नौकरी छोड़ दी। घीसू कहानी का पात्र घीसू, विधवा बिंदों की अराधना किया करता था। किन्तु जब उसे बिंदों के कुचरित्र के बारे में पता चलता है तब वह मन ही मन दुखी हुआ तथा यही दुःख उसकी मौत का कारण बन गया।

भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'संकट में लाल' रत्नाकर सिंह जहां बड़ी धूम–धाम से अपने पुत्र का मुंडन करते हैं, वहीं कवि–सम्मेलन में आए कवि अभिशप्त को दक्षिणा के तौर पर सब्जी के दो झाबों के संकट में डाल देते हैं।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'दादी माँ' से हिंदी कहानी में एक नए युग की सूत्रपात हुआ। उन्होंने ग्राम जीवन को आधार बनाकर सत्तर से ऊपर कहानियाँ लिखीं। शिवप्रसाद सिंह की प्रतिनिधि कहानियों में 'दादी माँ', 'नन्हें', 'पापजीवी', 'शाखामृग', 'कर्ज', 'ताड़घाट का पुल', 'बीच की दीवार' 'एक यात्रा सतह के नीचे', 'अंधकूप', 'अंधेरा हँसता है', 'मरदास राम', 'आरपार की माला', 'आँखें धरातल', 'कर्मनाशा की हार' जैसी कहानियाँ सम्मिलित है। शिवप्रसाद सिंह ने 'दादी माँ' के संदर्भ में स्वयं लिखा हैं–"दादी माँ, ग्राम–जीवन की पहली कहानी थी, जिसमें निजी अनुभव और भोगे हुए सत्य की व्यथा को व्यक्त किया गया है।" इन सब में लेखक ने भारतीय गाँव का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इनकी बरगद का पेड़ कहानी के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं–"एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि मुख्य कहानी की पृष्ठभूमि में किसी लोककथा को रखकर, दोनों को साथ–साथ अग्रसरर कराकर, कहानी की केंद्रीय संवेदना को धारदार बनाने का कौशल कमलेश्वर की राजा निरबंसिया से पहले इसी कहानी में मिलता है।"

कहानीकार मार्कण्डेय की कहानी 'शव साधना' में साधुओं के कुकर्म की अभिव्यक्त किया गया है। इस

कहानी का साधु कुछ दलालों के माध्यम से अपनी योग्यता का प्रचार कराता है। विश्वास प्राप्ति के बाद स्त्रियों से अवैध एवं अनैतिक संबंध स्थापित करता है और धर्म के नाम पर चंदा जमा करता है तथा एक दिन सुखी नामक स्त्री, जिसके प्रसूति के दिन निकट रहते है, और चंदे के धन को लेकर भाग जाता है। गाँव में जमींदार द्वारा निम्नवर्ग वालों पर होने वाले अत्याचार को मार्कण्डेय की भूदान कहानी में भी देखा जा सकता है।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम' में नायिका हीराबाई, हीरामन नामक व्यक्ति की गाडी में बैठकर मेले जाती है। ग्रामीण परिवेश से गुजरते हुए हीराबाई और हीरामन पारस्परिक वार्तालाप से, एक–दूसरे के प्रति सहानुभूति से, मानसिक दृष्टि से एक–दूसरे के निकट आ जाते हैं और कल्पनाओं द्वारा प्रेम की भावी दुनियाँ बना लेते हैं किंतु अंत में उनका प्रेम अधूरा रह जाता है।

रामदरश मिश्र की कहानी 'घर' में गाँवों में पारिवारिक संबंधों में होने वाले विघटन और बदलाव को चित्रित किया गया है। वृद्ध व्यक्ति चाहे कमाऊ क्यों न हों, आजकल के जवानों के लिए असह्य ही हैं। यह बात कहानी के पात्र बलराम अपने ही घर में अपमानित होता है। उसे उपेक्षित एवं दूषित समझा जाता है।

शैलेश मटियानी की कहानी 'प्रेम–मुक्ति' ब्राह्मण जाति के मिथ्याडम्बरों व शुद्र जाति के अज्ञान को अभिव्यक्त करती है। उच्च जाति के लोग शास्त्रोक्त पद्धति के कारण इस लोक से मुक्ति पा लेते हैं। वे प्रेत योनि में नहीं जाते। शुद्र जाति के किसनलाल को इस बात का भय रहता है कि मृत्यु–उपरांत यदि उसका प्रेत उसकी जवान पत्नी भुवानी को लग जायेगा, तो उसके लड़के उसे चिमटों से दाग देंगे। इसी भय व वेदना से उसका हृदय उत्पीड़ित रहता है। किसन–लाल की तरह ही ग्रामीण समाज में अनेक लोग अंधविश्वासों से ग्रसित रहते हैं। शैलेश मटियानी की ही कहानी परिवर्तन में गाँवों में उत्पन्न हो रही चेतना को देखा जा सकता है। पिछड़ी जाति के लोग परिश्रम करके भी भूखे और अपमानित रहते हैं, जबकि सवर्ण श्रम को खरीदकर सम्मानित और संपन्न बन जाते हैं। इस बात को पिछली जाति का देवराम भली–भाँति जानता है। थोकदार कल्याणसिंह के यहाँ देवराम के पूर्वज चाकरी करते आ रहे हैं। देवराम अपने जाति के लोगों को इस चाकरी प्रथा से मुक्त देखना चाहता है। पिछड़ी जाति के पंचायत के पंच के रूप में देवराम चुन लिया जाता है। थोकदार कल्याण सिंह और गाँव की विधवा ठकुराइन के बीच जमीन संबंधी झगड़ा होता है, जिसका फैसला पंचायत को सौंप दिया जाता है। देवराम पर अपने पक्ष में निर्णय देने के लिए ठाकुर कल्याणसिंह दबाव डालते हैं, जिसे वह ठुकरा देता है।

कमलेश्वर ने 'राजा निरबंसिया' की भूमिका में नयी कहानी की उपलब्धि के रूप में नयी भावभूमियों के सृजन का उल्लेख किया है, जो इस कहानी से प्रमाणित होता है। इनकी पीला गुलाब, सच और झूठ, पानी की तसवीर, सीने का दर्द नाच आदि कहानियाँ प्रेम की संवेदना संबंध की जटिल भावुकता से भरी कहानियाँ हैं। मुर्दों की दुनिया, कस्बे का आदमी में एक कस्बे के सामान्य से आदमी की राम नाम के प्रति आस्था और तोते के प्रति गहरी आत्मीयता का चित्रण किया गया है। इस संदर्भ में मधुरेश का मत है कि "कमलेश्वर की रचनात्मकता का सबसे बड़ा संकट उनकी वैचारिक विपन्नता से संबंधित है। जब–तब वे मनुष्य की सम्यक मुक्ति के संघर्ष में साहित्य की हिस्सेदारी की बात भी कहते हैं।"

मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'अकेला गुलमोहर' में आर्थिक दबाव तथा उसका घर में पति के प्रति पत्नी के बदलते हुए व्यवहार का चित्रण किया गया है। अकेला गुलमोहर कहानी में बड़ा भाई, अपने छोटे भाई को जिसकी आय कम है, अलग कर देता है तथा अपनी बहन का जो नौकरी करती है, विवाह नहीं करना चाहता,

क्योंकि बहन की आय से घर के खर्च में आर्थिक सहायता मिलती है। इसी प्रकार अर्थ संबंधी कहानी उसका घर का मुख्य पात्र कोढ़ की बीमारी के कारण अपने पुत्रों कर आश्रित रहता है। उसकी पत्नी, बेटे–बहुएं, पुत्री सभी का उसके प्रति सद्व्यवहार नहीं रहता। पिता के स्थान पर भाई द्वारा भरण, पोषण होने पर पुत्री भी उन्हें इज्जत नहीं देती।

राजेन्द्र अवस्थी की कहानी 'एक प्यास पहेली' आदिवासियों के परिवेश को अभिव्यक्त करती है। चालीस वर्षीय अधेड़ पति पुन्ना के प्रति नवयौवना यंदिया सेवा–भाव और जवान सौतेले पुत्र के प्रति यौन–आकर्षण उद्घाटित करती है। यह कहानी चंदिया की मानसिकता को दर्शाती है। मधुकरसिंह की कहानी 'कवि भुनेसर मास्टर' भी गाँवों में जागृत चेतना को अभिव्यक्त करती है। भुनेसर हरिजनों का समर्थन करता है। वह सामंतों, जमींदारों और पुलिस के खिलाफ एक विशाल जुलूस हरिजनों के नेतृत्व में निकालता है, शोषकों के विरुद्ध आवाज उठाता है, इश्तहार लगवाता है तथा अंततः देवन चमार की लड़की को छिपाने वाले और जंगी की लड़की की मरवाने वाले जालिम भूपति को चोट पहुँचाकर, उसके पास रखे गरीबों के हैण्ड नोटों को फोड़ देता है।

काशीनाथ सिंह भी गाँव के कथाकार हैं। वे शिल्प के धनी हैं। कहानियों में जितने अधिक प्रयोग काशी ने किये हैं उतने बहुत कम लोगों में मिलेंगे। काशी के पास टटकी और धारदार भाषा है जो उनकी नितांत अपनी है। उनका जोकुलर मिजाज उनको अपने से तटस्थ बना देता है। इसलिए आत्मपरक कहानियाँ अनात्मपरक बन जाती है। उदाहरण के लिए उनकी सबसे प्रसिद्ध कहानी कविता की नई तारीख में वह अपने ढंग से आज की गहमागहर्मी में एक अदद आदमी को बचा लेने की चिंता ज्ञान को भी है, काशी को भी। कभी–कभी वह सुधीर घोषल जैसी फार्मूला कहानी में भी उलझ जाते हैं। "लाल किले का बाज अपने अन्तर्विरोधों में अधिक यथार्थ है। काशी की कहानियाँ तत्कालीन हिंदी कहानियों की एकरसता–वादग्रस्तता से मुक्त सामान्य व्यक्तियों की कहानियाँ है, बावजूद इसके कि जोकुलर मिजाज जहाँ–तहाँ बाधक भी हुआ है।"

हिमांशु जोशी की कहानी 'मनुष्य चिह्न' में भोली–भाली बाल विधवा गोविन्दी के साथ पंच, सरपंच, पटवारी, पेशकार आदि अधिकारी बलात्कार करते हैं और अपने प्राप्त अधिकारों से गाँव वालों पर जुल्म करते हैं। गाँव की मासूम, अपढ़ जनता किस प्रकार के जुल्म ढोती है–यह इस कहानी में दर्शाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ–490, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राईवट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996.
2. गोपाल राय, हिंदी कहानी का इतिहास–2, 1951–1975), पृ–109, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति–2014.
3. गोपाल राय, हिंदी कहानी का इतिहास–2, 1951–1975), पृ–109, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति–2014.
4. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास, पृ–85, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, षष्ट संस्करण–2011.
5. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ–530–531, बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ–490, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राईवट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996.
6. नामवर सिंह, कहानी नयी कहानी, पृ–29, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 11-12
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 174-179

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शैक्षिक विचार

महेशचन्द गुर्जर, पीएच०डी० शोधकर्ता,
डॉ० शरद कुमार वर्मा, प्रोफेसर,
शिक्षा संकाय, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक।

सार :-

इस अध्ययन में, हमने डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की शिक्षा में भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया है। हमारा उद्देश्य उनके योगदान को समझना, उनके विचारों को विश्लेषण करना और उनके शिक्षा के क्षेत्र में किए गए योगदान को सार्वजनिक दृष्टिकोण से देखना है। हमने उनके शिक्षा दार्शनिकता को समझने के लिए विभिन्न स्रोतों का उपयोग किया है, जिनमें उनकी व्याख्यान और लेखन की रचनाएं शामिल हैं। हमने डॉ. राधाकृष्णन के शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण, उनके शिक्षा के लिए अद्वितीय दृष्टिकोण, और उनके शिक्षा के क्षेत्र में किए गए योगदान की विश्लेषण किया है। हमने उनके शिक्षा संबंधी विचारों की समीक्षा की है, जो शिक्षा तथा विचार के माध्यम से आत्मा के संस्कार और बनावट को उन्नति देने की मानवीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करते हैं। डॉ. राधाकृष्णन भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में अपने महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में विचारों को प्रोत्साहित किया, जो शिक्षा को सिर्फ ज्ञान के स्तर से ऊपर ले जाने के साथ–साथ अन्य दृष्टिकोणों से जोड़ते हैं। उनका योगदान शिक्षा को समाज की मौलिक समस्याओं के साथ जोड़ने में था, जैसे कि जाति, धर्म और सामाजिक बेहतरी को प्रोत्साहित करना। उन्होंने शिक्षकों को राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका देने के लिए बढ़ावा दिया और शिक्षा के माध्यम से उन्नति तथा समृद्धि को साधने का संदेश दिया।

कुंजी शब्द :- शिक्षा, दर्शन, चरित्र निर्माण, सांस्कृतिक विकास, आध्यात्मिक विकास, एकीकरण, पाठ्यक्रम, स्त्री–शिक्षा, अनुशासन।

भूमिका :-

डॉ० राधाकृष्णन के शैक्षिक विचार उनके जीवन–दर्शन से बहुत प्रभावित हुये हैं। इसीलिये उनके शिक्षा–दर्शन को उनके जीवन–दर्शन की पृष्ठभूमि में समझने की आवश्यकता होती है। यद्यपि डॉ० राधाकृष्णन एक आदर्शवादी दार्शनिक माने जाते हैं किन्तु फिर भी उनका दर्शन बन्द राजमहल का दर्शन नहीं था वरन् वह व्यावहारिकता के धरातल पर पनपा था क्योंकि वह उन आदर्शों एवं मूल्यों की ओर जाने को प्रेरित करता है जो जीवन को एक सार्थक दिशा प्रदान करते हैं। इसीलिये एक और यदि एक दार्शनिक के रूप में डॉ० राधाकृष्णन जीवन के वास्तविक सत्य को जानना चाहते थे तो दूसरी ओर एक शिक्षाविद् के रूप में डॉ० राधाकृष्णन जीवन के वास्तविक सत्य को जानना चाहते थे तो दूसरी ओर एक शिक्षाविद् के रूप में वह वैज्ञानिक सोच वाले व्यक्ति थे।

शिक्षा की आवष्यकता :-

शिक्षा का महत्त्व हमारे समाज एवं व्यक्तित्व के विकास में है। डॉ० राधाकृष्णन ने इसे महत्वपूर्ण माना और नए विचारों वाली पीढ़ी के निर्माण को बल दिया। शिक्षा से ही न्याय, स्वतंत्रता, और आपसी भाईचारा की भावना विकसित होती है। उनके अनुसार, अच्छी शिक्षा से व्यक्ति आत्म–विवेचन करता है और समाज के निर्माण में सकारात्मक योगदान देता है। उन्होंने समझाया कि मानसिक मलिनता भौतिक मलिनता से भी अधिक खतरनाक होती है। इसलिए, सही दिशा की शिक्षा समाज और व्यक्ति दोनों के लिए अत्यंत जरूरी है। (राधाकृष्णन, 1956)

शिक्षा का अर्थ :-

शिक्षा का मतलब डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार व्यापक है। वे नहीं मानते थे कि शिक्षा सिर्फ पुस्तकों से होती है, बल्कि इसमें हृदय और आत्मा का विकास भी शामिल है। यह समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाती है, व्यक्ति को समृद्ध और समझदार बनाती है। (मणि, 1965)

शिक्षा के उद्देश्य :-

डॉ० राधाकृष्णन ने माना है कि शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिये –

चरित्र निर्माण :-

डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, चरित्र निर्माण शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य है। उन्होंने चरित्र को समझाया कि यह सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान का ही नहीं, बल्कि व्यक्ति के मूल्यों, नैतिकता, और सद्‌गुणों का विकास करता है। चरित्र निर्माण से ही समाज में न्याय, सच्चाई, और समृद्धि की नींव रखी जा सकती है। उनके विचारों में, व्यक्ति का चरित्र ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति होती है, जो आध्यात्मिक विकास के साथ समृद्धि और व्यक्तिगत प्रगति का आधार बनती है (राधाकृष्णन, 1956)।

मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रोन्नति :-

डॉ० राधाकृष्णन के विचार में, शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ तकनीकी ज्ञान नहीं है, बल्कि मानवता को समझाने, समृद्धि के लिए नैतिक मूल्यों को स्थापित करने और समाज को समृद्ध बनाने में सहायता करना चाहिए। शिक्षा न केवल विद्यार्थियों को विचारशील बनाती है, बल्कि उन्हें जिम्मेदार नागरिक भी बनाती है जो अपने समाज में नैतिकता, ईमानदारी, और समर्थता के साथ योगदान करते हैं। उनका दृष्टिकोण सिद्ध करता है कि राष्ट्रीय समृद्धि न केवल भौतिक, बल्कि नैतिक मूल्यों के समान मापे जाने चाहिए। (राधाकृष्णन, 1965)

सांस्कृतिक विकास :-

डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, शिक्षा संस्कृति के मूल्यों को पीढ़ी से पीढ़ी तक पहुंचाने का माध्यम होती है। शिक्षा अतीत के मूल्यों और वर्तमान की रचनात्मकता को समझाती है और समाज के साथ संस्कृति को बनाए रखने और आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे बुद्धि को अज्ञान और अंधविश्वासों से मुक्ति मिलती है। शिक्षा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को संवारती है और समाज की प्रगति में योगदान करती है। राधाकृष्णन ने युवाओं से समाज के अनुभवों और आदर्शों का अध्ययन करने को कहा, ताकि एक समृद्ध जीवन प्राप्त हो सके। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों को मिलाकर समृद्ध समाज के लिए शिक्षा का महत्त्व बताया। (मणि, 1965)

आध्यात्मिक विकास :-

आत्मा का संबंध शिक्षा से होना चाहिए, जो मानवीय उन्नति और आत्मा के विकास को प्रोत्साहित करती

है। डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य है एक ऊँचे और श्रेष्ठ जीवन में पहुँचना, जो सिर्फ शैक्षिक कौशलों की विकास तक ही सीमित नहीं होता। यह उस समाज के लिए आवश्यक है जो आध्यात्मिकता, नैतिकता, और मानवीयता में समृद्ध हो। आत्मा के विकास के माध्यम से ही व्यक्ति अपने आप को पूर्णता की ऊँचाइयों तक पहुँचा सकता है। उनके दृष्टिकोण में, शिक्षा व्यक्ति को आत्मिक मूल्यों की ओर उन्मुख करने का एक माध्यम होनी चाहिए (मणि, 1965)।

व्यावसायिक विकास :-

शिक्षा डॉ० राधाकृष्णन के दृष्टिकोण में समाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तन का माध्यम होती है। उनके विचारों में, शिक्षा न केवल वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान देती है, बल्कि व्यावसायिक क्षेत्र में वृद्धि कराने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे गाँवी जीवन के लोगों को आत्मनिर्भर बनाने की ओर प्रोत्साहित करते थे और कृषि, शिल्प, और हस्तकला को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा मानते थे। उनका दृष्टिकोण था कि शिक्षा गाँवी क्षेत्रों में भी व्यापारिक कौशल बढ़ाने के लिए अपना योगदान दे सकती है (मणि, 1965)।

राष्ट्रीय एकीकरण :-

भारत में समृद्ध विविधता होने के बावजूद, राष्ट्रीय एकता एक महत्त्वपूर्ण विचार है। डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, शिक्षा एक साधन है जो इस एकता को समझाने और स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। विभिन्न संस्कृतियों और समुदायों के विद्यार्थी एक साथ पढ़कर एक संवादात्मक वातावरण बना सकते हैं, जो राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करता है। शैक्षिक संस्थानों में भारतीय संस्कृति और एकता के महत्व को समझाने के लिए प्रयास किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए, समृद्धि के सभी स्तरों पर शिक्षा में सक्रिय भागीदारी आवश्यक है (मणि, 1965)।

वैश्विक समुदाय का विकास :-

कौशल और शिक्षा के माध्यम से, डॉ० राधाकृष्णन ने वैश्विक समुदाय के विकास को बढ़ावा दिया। उन्होंने व्यक्तिगत और सामाजिक शिक्षा के माध्यम से यह दृढ़ निश्चय किया कि हम सभी एक बड़े परिवार के हिस्से हैं। उन्होंने विश्व–नागरिकता के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण माना और कहा कि यह शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए। उन्होंने राष्ट्रीयता को वैश्विक निष्ठा के अधीन होने का संकल्प किया जो सभी मानवता के प्रति समर्पित हो। उनके अनुसार, यही निष्ठा सभी लोगों को एक समृद्ध समुदाय का हिस्सा बनाने का मार्ग है। इसलिए, उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षण संस्थानों में सभी देशों के इतिहास और संस्कृति का ज्ञान देना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों में वैश्विक एकता की भावना जागरूक हो (राधाकृष्णन, 1960)।

धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण का विकास :-

डॉ० राधाकृष्णन विचार करते थे कि धर्म निरपेक्षता शिक्षा में महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना था कि यह धर्म को न तो उपेक्षा करना चाहिए और न ही उसके प्रति उदासीन होना, बल्कि सभी धर्मों और पवित्रता को सम्मान देना चाहिए। उन्होंने धार्मिक शिक्षा को एक माध्यम माना जो व्यक्तित्व का समृद्धिकरण, सामाजिक समानता, और सभी धर्मों के साथ जुड़ाव का साधन बना सके। शिक्षा के परम उद्देश्य के रूप में, वे विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, और आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा देने की बात करते थे। उनका मानना था कि शिक्षा को तकनीकी ज्ञान के अलावा मानसिक प्रवृत्ति और जनतांत्रिक भावना के साथ ऐसे नागरिक बनाना चाहिए

जो विभिन्नता में एकता को समझें (राधाकृष्णन, 1965)।

पाठ्यक्रम :-

सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शिक्षा और पाठ्यक्रम पर विचारों का अन्वेषण संदेश कर रहा है। उन्होंने व्यक्त किया कि एक समग्र पाठ्यक्रम की महत्ता है जो समाज और व्यक्तियों की बदलती जरूरतों को पूरा करे। राधाकृष्णन ने जोर दिया कि शिक्षा को केवल विद्यार्थी को शैक्षिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास में भी सहायता करनी चाहिए। राधाकृष्णन ने प्राथमिक शिक्षा को मौलिक शिक्षा के रूप में महत्वाकांक्षी माना। उन्होंने कहा कि प्राथमिक शिक्षा विद्यार्थी को उसके दैनिक जीवन से जोड़नी चाहिए और शारीरिक शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करनी चाहिए। उन्होंने माध्यमिक स्तर पर कॉलेजों के पाठ्यक्रम को व्यावहारिक बनाने की सलाह दी, जो प्राथमिक शिक्षा की बुनियादों पर आगे बढ़ता है। विश्वविद्यालय स्तर पर, उन्होंने शोधात्मक शिक्षा को महत्व दिया, लेकिन अत्यधिक विशेषीकरण से चेतावनी दी। उनका मानना था कि एक संतुलित पाठ्यक्रम आवश्यक है जो शिक्षार्थियों को समाजिक और राष्ट्रीय उत्थान के लिए तैयार करे। लेकिन, आपका पाठ व्यापक रूप से राधाकृष्णन के शिक्षात्मक दृष्टिकोण को बयां करता है, लेकिन विशिष्ट स्रोतों या उद्धरणों का संदर्भ नहीं देता। सटीकता को सुनिश्चित करने के लिए, डॉ। सर्वपल्ली राधाकृष्णन के विचारों को संदर्भित करने के लिए उनके विशिष्ट पाठों, भाषणों या लेखों का संदर्भ देना आवश्यक होता है (मणि, 1965)।

शिक्षा का माध्यम :-

शिक्षा के संदर्भ में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने मातृभाषा और संस्कृति के महत्व को उजागर किया। उनके अनुसार, अंग्रेजी भाषा का उपयोग करने से विद्यार्थी अन्य से अलग हो जाते हैं और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते। उन्होंने विद्यार्थियों को मातृभाषा के साथ हिन्दी और अंग्रेजी का संयोजन सुझाया, जो समृद्ध शिक्षा का माध्यम हो सकता है। उन्होंने संस्कृत को भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत के रूप में भी जानकारी और धार्मिक ग्रंथों की समझ के लिए महत्त्वपूर्ण माना (राधाकृष्णन, 1961)।

शिक्षण विधियाँ :-

शिक्षा के प्रक्रियाओं में शिक्षण विधि का महत्त्व अत्यंत उच्च है। इसके माध्यम से विद्यार्थी को ज्ञान प्राप्त होता है। डॉ० राधाकृष्णन ने भी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं में विशेष ध्यान दिया। विद्यार्थियों की मानसिक स्तिथि और समझ के अनुसार वे विभिन्न शिक्षण विधियाँ प्रायोगिक करने की सिफारिश करते थे। शिक्षकों को अध्यापन के लिए विभिन्न सहायक साधनों का उपयोग करने की सलाह भी दी गई थी। डॉ० राधाकृष्णन ने शिक्षण के लिए विभिन्न विधियों को सुझाया जैसे व्याख्यान, विचार–विमर्श, चिंतन–मनन, पाठ्य–पुस्तकों का अध्ययन, विचार गोष्ठियों के माध्यम से शिक्षण। उन्होंने जन–संचार के साधनों जैसे रेडियो, टेलीविजन और चलचित्रों का भी प्रयोग सुझाया। चलचित्रों के माध्यम से विद्या, विनोद और विनय की शिक्षा भी दी जा सकती है (राधाकृष्णन, 1965)।

स्त्री-शिक्षा :-

डॉ० राधाकृष्णन ने स्त्री–शिक्षा को बड़ा महत्त्व दिया था। उनका मानना था कि जब तक समाज में स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होतीं, समृद्धि सम्पूर्ण नहीं हो सकती। उन्होंने यह भी कहा कि स्त्रियों को समाज के हर क्षेत्र में पुरुषों के समान अवसर मिलने चाहिए। बालिकाओं को अधिक विस्तृत शिक्षा का प्रावधान करने की आवश्यकता है और

उन्होंने इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों की शिक्षा को महत्त्व दिया, जैसे कि गृह–विज्ञान, सिलाई, बच्चों की देखभाल, धार्मिक अध्ययन, तथा मनन जैसे क्षेत्र। उन्होंने इस बात को भी महत्वपूर्ण माना कि बच्चे अपनी माँ से भी काफी कुछ सीखते हैं।

धार्मिक शिक्षा :–

डॉ० राधाकृष्णन ने धार्मिक शिक्षा को आध्यात्मिक शिक्षा से जोड़ा था। उनके अनुसार, धर्म मानव की आध्यात्मिक विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन है। धार्मिक शिक्षा से सम्मान, प्रेम, और विश्वबंधुता के लक्ष्य मिल सकते हैं। उन्होंने कहा कि सच्चा धर्म ही आध्यात्मिक धर्म होता है और विद्यार्थी की आध्यात्मिक प्रगति स्वतंत्रता का मार्ग होती है। धर्म–निरपेक्षता का मतलब सभी धर्मों का सम्मान करना है, न कि किसी एक को छोटा देना (रोड्रिग्ज, 1992)।

सर्वव्यापी शिक्षा :–

डॉ० राधाकृष्णन ने शिक्षा को सभी के लिए समर्पित करने की बात की थी। उन्होंने कहा कि शिक्षा हर व्यक्ति का अधिकार होना चाहिए, और इसे किसी भी आधार पर नहीं छोटा किया जाना चाहिए। उनका मत था कि शिक्षा विभाजन नहीं, बल्कि समानता को बढ़ावा देनी चाहिए। उन्होंने इस बात को भी ज़ोर दिया कि शिक्षा का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार होना चाहिए ताकि वहाँ के लोग भी लाभान्वित हो सकें। इसके साथ ही उन्होंने शिक्षा के गुणवत्ता को महत्त्व दिया। उनके विचारों का असर हुआ और 'शिक्षा के अधिकार का अधिनियम' 2010 को पारित किया गया, जिससे 6 से 14 वर्ष के बच्चों को कक्षा 8 तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ (रोड्रिग्ज, 1992)।

ग्रामीण विश्वविद्यालय :–

ग्रामीण शिक्षा और विकास को बढ़ावा देने के लिए डॉ० राधाकृष्णन का विचार था कि गाँवों में विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए। इससे गाँव के लोगों को बहुत सारे लाभ हो सकते हैं, विशेषकर उन्हें वहाँ के कृषि, पशु–पालन, और अन्य कामों की शिक्षा मिल सकती है। इसके साथ, यहाँ के विश्वविद्यालयों में शोध कार्य करके कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए भी काम किया जा सकता है। इससे ग्रामीण इलाकों का विकास हो सकता है और वहाँ के लोगों को बेहतर अवसर मिल सकते हैं।

अन्य शिक्षण संस्थायें :–

डॉ. राधाकृष्णन ने व्यापक स्तरों पर समग्र शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया। उन्होंने स्कूल स्तर पर छात्रों को सामान्य शिक्षा और उच्च अध्ययन के लिए तैयार करने की ज़रूरत पर जोर दिया, उनके शिक्षा में व्यावहारिक पहलू को भी महत्त्व दिया जो महत्वपूर्ण है, चाहे वे उच्च शिक्षा ना लेना चाहें। उनका विश्वविद्यालयों के लिए दृष्टिकोण था कि वह सच्ची लोकतान्त्रिक मूल्यों को पोषण करने के लिए माहौल बनाएं, विविध दृष्टिकोणों को समझाने और बहस से मतभेदों को सुलझाने की प्रेरणा दें। उन्होंने उच्च शिक्षा में गुणवत्ता का महत्त्व जताया, जो व्यक्तियों को सिर्फ शैक्षिक रूप से नहीं, बल्कि उनके व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में भी मदद करती है (राधाकृष्णन, 1944)।

अनुशासन :–

डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा में अनुशासन को एक महत्त्वपूर्ण तत्व माना। उन्होंने इस विश्वास को जताया कि

विद्यार्थियों को आत्म–नियंत्रण के साथ रहना चाहिए, क्योंकि यह उनकी बौद्धिकता, चरित्र और विश्वसनीयता को सुनिश्चित करता है। विद्यार्थियों के भविष्य का आधार उनके बौद्धिक संकल्प, अध्ययन में समर्पण, कठिन परिश्रम और त्याग के ऊपर निर्भर करता है। उनके अनुसार, अनुशासन में रहना आवश्यक है, लेकिन विद्यार्थियों को दबावों से मुक्ति मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा कि हमें विद्यार्थियों को उनके पश्चात्ताप से बचाना चाहिए और उनके निर्णयों का सम्मान करना चाहिए। अनुशासन की भावना को विकसित करने के लिए, विद्यार्थियों को ध्यान केंद्रित रखना, प्रातःकालीन प्रार्थना, व्यायाम, एनएसएस और एनसीसी के माध्यम से इसे प्रैक्टिस करना चाहिए (मणि, 1965)।

शिक्षकों की भूमिका डॉ राधाकृष्णन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थी। उन्होंने शिक्षकों को सिर्फ शिक्षा प्रदान करने वाले नहीं, बल्कि समाज की संस्कृति और आदर्शों की रक्षा करने वाले सजग प्रहरी के रूप में भी देखा। उनके अनुसार, शिक्षक की महत्ता केवल विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम या उनकी पढ़ाई तक सीमित नहीं थी, बल्कि शिक्षक के योगदान से उनकी सोच और समझ में बदलाव आना चाहिए। उन्होंने विद्यार्थियों को ज्ञान के साथ–साथ नई ऊर्जा का स्रोत भी बताया। शिक्षकों के लिए सफलता का मापदंड सिर्फ विद्यार्थियों की पाठ्यक्रम की सफलता में नहीं, बल्कि उनकी गुणवत्ता में भी होना चाहिए। डॉ। राधाकृष्णन ने शिक्षकों को एक सच्चे राष्ट्रनिर्माता के रूप में देखा था और उनका कहना था कि शिक्षकों की समस्याएं समाज की समस्याओं को भी प्रभावित करती हैं, इसलिए इन्हें प्राथमिकता देनी चाहिए।

निष्कर्ष :–

इस विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि डॉ० राधाकृष्णन का शिक्षा–दर्शन मात्र आदर्शवादी नहीं है वरन् यह अत्यधिक प्रयोजनवादी भी है। ज्ञान के प्रति उनका लगाव केवल ज्ञान के लिये ही नहीं था वरन् व्यावहारिक उपयोगिता के लिये भी था। वह चाहते थे कि बच्चों एवं नवयुवकों को शिक्षा केवल उनके व्यक्तिगत हित के लिये न दी जाये वरन् देश में विकास एवं सम्पन्नता में वृद्धि करने के लिए प्रदान की जाये। उनका शिक्षा–दर्शन सार्वभौम प्रेम, सामंजस्य, पारस्परिक सहयोग और त्याग के सिद्धान्तों के ऊपर आधारित था। वे इस बात में विश्वास करते थे कि देश की प्रगति में विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं शिक्षण संस्थाओं की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसीलिये भारत के लिये उनके शिक्षा–दर्शन की सार्थकता बहुत अधिक है।

संदर्भ :–

1. मणी, आर०एस० (1965). एमिनेन्ट इडियंस; एज ट्रांसलेटिड हेयर इन टू हिन्दी फ्रोम ओरिजिनल इन इंगलिश। नई दिल्ली : न्यू बुक सोसायटी ऑफ इण्डिया।
2. राधाकृष्णन, एस० (1961). द फिलोसोफी ऑफ रविन्द्रनाथ टैगोर; एज ट्रांसलेटिड हेयर इन टू हिन्दी फ्रोम ओरिजिनल इन इंगलिश। बड़ौदा : गुड कम्पेनियंस बड़ौदा।
3. राधाकृष्णन, एस० (1960). ओकेजनल स्पीचलेस एण्ड राइटिंग्स; एज ट्रांसलेटिड हेयर इन टू हिन्दी फ्रोम ओरिजिनल इन इंगलिश। नई दिल्ली : पब्लिकेशन्स डिविजन्स।
4. राधाकृष्णन, एस० (1965). प्रेजिडेन्ट राधाकृशणन स्पीच्स एण्ड राइटिंग्स; एज ट्रांसलेटिड हेयर इन टू हिन्दी फ्रोम ओरिजिनल इन इंगलिश। नइ दिल्ली : पब्लिकेशन्स डिविजन्स।
5. राधाकृष्णन, एस० (1956). कल्की और द फ्यूचर ऑफ सीविलाइजेशन; एज ट्रांसलेटिड हेयर इन टू हिन्दी फ्रोम ओरिजिनल इन इंगलिश। बाम्बे : हिन्दी किताब लि०।
6. रोड्रिक्स, सी० (1992). द सोशल एण्ड पॉलिटिकल थॉट : एन एवोल्यूशन; एज ट्रांसलेटिड हेयर इन टू हिन्दी फ्रोम ओरिजनल इन इंगलिश। नई दिल्लीः स्टरलिंग पब्लिर्शस प्रा०लि०।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 180-185

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का दर्शनशास्त्र एवं नव-वैदान्तिक विचार

रितु, पीएच०डी० शोधकर्ता,
डॉ० नितिन, सहायक प्रवक्ता,
शिक्षा संकाय, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक।

सार :-

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के द्वारा प्रस्तुत दर्शनशास्त्र और नव–वैदान्तिक विचार सम्पूर्ण मानवता के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदेश लेकर आते हैं। उन्होंने हमें धर्म की एकता और समरसता का महत्त्व बताया है। उनके विचारों में विविधता की समृद्धि, सभी धर्मों के माध्यम से ईश्वर के प्रति भक्ति का मार्ग, और आत्मा के साक्षात्कार की महत्ता को जोर दिया गया है। उनके द्वारा प्रदत्त विचार और सिद्धांतों में सभी मानवता को समर्पित होने की भावना है, जो हमें एकता, शांति, और समृद्धि की दिशा में अग्रसर करती है। उन्होंने सिद्ध किया कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर जाने वाले अनेक मार्गों का होते हैं और उनका उद्देश्य एक ही होता है। उनके विचारों और सिद्धांतों का अध्ययन हमें आत्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से समृद्धि प्रदान करता है। यह हमें संवेदनशीलता, समझदारी, और सहानुभूति में वृद्धि करने का मार्ग दिखाता है। उनके संदेशों के माध्यम से हम एक सशक्त, समृद्ध, और सहयोगी समाज की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

कुंजी शब्द :- दर्शन शिक्षा, भक्ति, आध्यात्मए समाज।

भूमिका :-

स्वामी रामकृष्ण परमहंस एक महान धार्मिक और आध्यात्मिक गुरु थे जिन्होंने 19वीं सदी में भारतीय समाज को उत्तराधिकारी तरीके से प्रेरित किया। उनके दर्शनशास्त्र और शैक्षिक विचार भारतीय समाज को आदर्शवादी और आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इस लेख में, हम स्वामी रामकृष्ण के दर्शनशास्त्र और शैक्षिक विचारों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

स्वामी रामकृष्ण का जीवन एक गहरे आध्यात्मिक अनुभव के साथ जुड़ा हुआ था। स्वामी रामकृष्ण ने कई धार्मिक साधनाएँ की और विभिन्न धार्मिक दर्शनों को अपनाया, जैसे कि वैष्णव, शैव, तांत्रिक, और इस्लामी धर्म। वे अपने आध्यात्मिक अनुभवों के माध्यम से दिव्यता की ओर अग्रसर हुए। स्वामी रामकृष्ण का एक महत्वपूर्ण दर्शनशास्त्र है, "एकात्मादर्शन" जिसमें वे दर्शाते हैं कि सभी धर्म और मार्ग एक ही सच्चे आत्मा की ओर जाने के लिए हैं। वे यह मानते थे कि सभी धर्म एक ही सत्य की ओर जाने के लिए अलग–अलग मार्ग प्रदान करते हैं,

और व्यक्ति के चयन के हिसाब से वे उस मार्ग को चुन सकते हैं जो उनके लिए सही है।

स्वामी रामकृष्ण के दर्शनशास्त्र :-

स्वामी रामकृष्ण के दर्शनशास्त्र "एकात्मादर्शन" विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस दर्शनशास्त्र में वे एकात्मावाद की महत्वपूर्ण सिद्धांतों को प्रस्तुत करते हैं।

आत्मा की एकता :- स्वामी रामकृष्ण के अनुसार, सभी धार्मिक और दार्शनिक परंपराएँ एक सामान्य लक्ष्य की ओर जाती हैं, जो है – आत्मा की एकता का अनुभव करना। वे मानते थे कि आत्मा एक ही सच्चे ब्रह्म का अभिवादन है और सभी धर्म इसी ब्रह्म की ओर जाने के लिए मार्ग प्रदान करते हैं। (भट्टाचार्य, 1993)

सभी धर्मों का समान मूल :- स्वामी रामकृष्ण के अनुसार, सभी धर्म एक ही सच्चे आत्मा की ओर जाने के लिए हैं और इसलिए सभी धर्मों का मूल समान है। उनका मानना था कि धार्मिक तथा दार्शनिक मार्गों के बावजूद, सबका लक्ष्य एक ही है – आत्मा के उद्धारण और एकता की प्राप्ति।

धर्म और जीवन :- स्वामी रामकृष्ण के अनुसार, धर्म को सिर्फ विचारों और शास्त्रों की बात नहीं मानना चाहिए, बल्कि व्यक्ति के जीवन में उसके अच्छे आचरण और आदर्शों के माध्यम से दिखाना चाहिए। वे यह मानते थे कि सही धार्मिक अनुष्ठान और जीवन के साथ जुड़ा होना चाहिए।

ध्यान और साधना :- स्वामी रामकृष्ण ने ध्यान और साधना को आत्मा के साथ मिलने का माध्यम माना। उनका मानना था कि यह धार्मिक साधना के माध्यम से ही आत्मा की ओर बढ़ने का सही तरीका है।

साधक की साधना :- स्वामी रामकृष्ण ने साधक की आवश्यकता को महत्वपूर्ण माना और उन्होंने यह सिखाया कि साधना को ध्यान, आत्म–चिंतन, और आध्यात्मिक अध्ययन के माध्यम से किया जा सकता है।

धार्मिक सहमति :- स्वामी रामकृष्ण का मानना था कि धर्मिक सहमति और सद्भावना को बढ़ावा देना चाहिए। वे सभी धर्मों की समानता और सभी धर्मों के प्रति समर्पण की प्रेरणा देते थे। (भट्टाचार्य, 1993)

स्वामी रामकृष्ण का शिक्षा के प्रति समर्पण :-

स्वामी रामकृष्ण ने अपने जीवन के दौरान शिक्षा के प्रति भी विशेष समर्पण दिखाया। उन्होंने अपने शिष्यों को धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान के साथ जीवन के मूल्यों की भी शिक्षा दी। वे यह समझते थे कि शिक्षा सिर्फ ज्ञान का प्राप्त करना नहीं होती, बल्कि व्यक्ति के जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनाने में भी मदद करती है। उन्होंने अपने शिष्यों को धर्मिक साधना की महत्वपूर्णता के बारे में सिखाया और उन्हें ध्यान और आध्यात्मिक अध्ययन के माध्यम से आत्मा की ओर बढ़ने का मार्ग दिखाया। (बोधसारानंद, 2006)

स्वामी रामकृष्ण के शैक्षिक दृष्टिकोण का एक अहम हिस्सा था कि उन्होंने शिक्षा को व्यक्ति के आत्मा के विकास के लिए एक माध्यम माना और इसे धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों के साथ जोड़कर दिया। वे यह मानते थे कि शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ ज्ञान प्राप्त करना नहीं होता, बल्कि यह व्यक्ति के आत्मा के साथ जुड़ा होना चाहिए और उसे उसके जीवन में अपनाना चाहिए।

सांसारिक जीवन में आध्यात्मिकता :-

स्वामी रामकृष्ण ने आध्यात्मिक जीवन को संसारिक जीवन से अलग नहीं माना। उन्होंने यह बताया कि आध्यात्मिकता को संसार के मध्य में ही अपनाया जा सकता है। उन्होंने यह सिखाया कि संसारिक कर्मों को भी धार्मिक दृष्टिकोण से किया जा सकता है। व्यक्ति को अपने कर्मों को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखने की आदत

डालनी चाहिए ताकि वह अपने कर्मों को आत्मा के प्रति अधिक समर्पित और सच्चे भावनाओं के साथ करे। (दिवाकर, 1980)

समाज में सेवा का महत्व :–

स्वामी रामकृष्ण ने सेवा का महत्व को भी बताया। उन्होंने यह सिखाया कि आध्यात्मिक जीवन का अभिगम समाज में सेवा करने के माध्यम से होता है। वे सामाजिक सुधार के लिए अपने शिष्यों को प्रेरित किया और उन्हें समाज के उत्थान के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी। स्वामी रामकृष्ण का यह मानना था कि सेवा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने आत्मा को पूरी तरह से विकसित कर सकता है। उन्होंने यह भी सिखाया कि सेवा से आत्मा के साथ अच्छे आचरण और नैतिक गुण की विकास की दिशा में मदद मिलती है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुसार भक्ति की भूमिका :–

स्वामी रामकृष्ण परमहंस भारतीय 19वीं सदी के प्रमुख आध्यात्मिक नेता और रहस्यवादी थे। उनके शिक्षा और भक्ति (भक्ति) की प्रकृति पर किए गए अंदाज स्वाध्याय में भक्ति के भूमिका को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वामी रामकृष्ण का भक्ति के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिकोण, जिसे अक्सर भक्ति योग के रूप में जाना जाता है, इस विश्वास पर आधारित था कि यह दिव्य के साथ एकता प्राप्त करने का मार्ग है। (दासगुप्ता, 2001)

भक्ति की मूल भावना :– स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने जोर दिया कि भक्ति केवल एक धार्मिक अभ्यास नहीं है, बल्कि यह भगवान के प्रति गहरा और पवित्र प्यार और भक्ति है। यह यह एक गहरा भावनात्मक जुड़ाव और दिव्य के प्रति समर्पण है। यह प्यार आधीनिक या धर्मिक रिवाज़ों या सिद्धांतों से बंधा नहीं है, बल्कि यह भगवान की प्रतिष्ठा के लिए एक ईमानदार और निःस्वार्थ इच्छा है।

भक्ति के विभिन्न रूप :– स्वामी रामकृष्ण ने विभिन्न प्रकार की भक्ति की पहचान की, जैसे कि वात्सल्य भक्ति (बच्चे के लिए माता–पिता का प्यार), सख्य भक्ति (मित्रों के बीच प्यार), और गोपी भक्ति (भगवान के लिए गोपियों की तरह निःस्वार्थ प्यार और समर्पण)। उन्होंने यह माना कि लोगों के पास विभिन्न प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ होती हैं और वे अपने मन को स्वयं के मन से सहमत अनुसरण करके भगवान के पास पहुँच सकते हैं, जिनके साथ उनके दिल का संवाद हो।

सार्वभौमिक स्वीकृति :– स्वामी रामकृष्ण के शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू था, वे उन्होंने भगवान के पास जाने के सभी मार्गों को स्वीकार किया। उन्होंने अनेक धार्मिक अभ्यासों, जैसे कि हिन्दू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म को अमूल्यात्मक किया। उन्होंने इस बात की जोरदार मुद्रा की कि विभिन्न धर्म एक जल से जुड़े हुए विभिन्न नदियों की तरह हैं, जो सभी एक ही सागर में जाती हैं, जो है परमात्मा। इस आलोकने ने उनकी शिक्षाओं को सभी जीवन के लोगों और विभिन्न धर्मों के लोगों के लिए पहुँचनीय बनाया। (दासगुप्ता, 2001)

सरलता और ईमानदारी :– स्वामी रामकृष्ण मानते थे कि सरलता और ईमानदारी वास्तविक भक्ति के मूल हैं। उन्होंने व्यक्तियों को बच्चों के जैसे दिल से भगवान के पास आने की सलाह दी, जिसमें अहंकार और ढोंग की अभाव होता है। उनके लिए आराधना और विस्तारित अभिषेक आदिक केवल अपने दिल की पवित्रता और भगवान के प्रति अपने प्यार की गहराई के बराबर थे।

समर्पण का महत्व :– दिव्यता के प्रति समर्पण स्वामी रामकृष्ण के भक्ति दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू था। उन्होंने इस जोरदारी की कि एक भक्त को पूरी तरह से भगवान के पास समर्पित होना चाहिए, जैसे कि

एक बिल्ली अपनी मां पर पूरी तरह से निर्भर होती है। यह समर्पण निष्क्रिय नहीं होता, बल्कि दिव्य इच्छा की सक्रिय स्वीकृति और भगवान के मार्गदर्शन में गहरा विश्वास होता है।

भक्ति का जीवन में प्रयोग :– स्वामी रामकृष्ण मानते थे कि भक्ति केवल मंदिरों या धार्मिक आयोजनों से सीमित नहीं होनी चाहिए; यह किसी के जीवन के हर पहलू में प्रवेश करनी चाहिए। उन्होंने अपने अनुयायियों को दिनचर्या में भक्ति का अभ्यास करने के लिए प्रोत्साहित किया, सभी जीवों के प्रति प्यार और दया दिखाने का सूचना दिया। दूसरों की सेवा करने और सभी में दिव्य प्रतिष्ठा पहचानने का जीवन उनके लिए भक्ति का सबसे उच्च रूप था। (हर्षानंद, 1996)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के भक्ति पर शिक्षा लोगों को पूरी दुनिया भर में प्रेरित करते हैं। उनका सार्वभौमिक दृष्टिकोण, सादगी और प्यार और भक्ति को पूर्व मुख्य माध्यम के रूप में प्राप्त करने की जोरदार बात कर रहे हैं, आध्यात्मिक मनचल को गहरा प्रभाव डाल दिया है। उनकी यह मान्यता कि सभी धर्मों की आपसी जड़ों के बारे में और इस विचार का कि अंतिम सत्य को विभिन्न मार्गों से जाना जा सकता है, ने धार्मिक विभाजनों को भूगतान और विभिन्न समुदायों के बीच सामंजस्य को बढ़ावा देने में मदद की है।

संक्षेप में, स्वामी रामकृष्ण परमहंस की भक्ति पर शिक्षाएँ आध्यात्मिक जागरूकता की दिशा में इसके महत्व को प्रमुख करती हैं। उनका मुख्य योगदान निःस्वार्थ और पवित्र प्यार, समर्पण और इस भक्ति की विश्वस्तता के माध्यमों के रूप में आवश्यकताओं पर गहरा प्रभाव डाल चुका है। स्वामी रामकृष्ण के जीवन और शिक्षा आज भी उन लोगों के लिए प्रकाश की दिशा में खड़ी है, जो भक्ति के मार्ग पर हैं, उन्हें अपने जीवन में दिव्य के साथ गहरा और और मानवीय संबंध को कल्पना करने के लिए प्रेरित करते हैं।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के नव–वैदान्तिक विचार :–

स्वामी रामकृष्ण परमहंस, 19वीं सदी के भारतीय आध्यात्मिक दिग्दर्शकों में से एक थे और उन्होंने राष्ट्र के आध्यात्मिक प्रांगण को पुनः आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी शिक्षाएँ और भक्ति के स्वरूप के प्रति उनके दृढ़ और गहरे दृष्टिकोण आज भी आध्यात्मिक खोजको प्रभावित करते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भक्ति का महत्व स्पष्ट रूप से बताया कि यह केवल एक धार्मिक अभ्यास नहीं है; यह भगवान के प्रति गहरा और पवित्र प्यार और भक्ति है। यह एक गहरा भावनात्मक जुड़ाव और ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण है। यह प्यार अनुष्ठानों या धर्मिक धारणाओं से बंधा नहीं होता है, बल्कि यह भगवान की उपस्थिति की सच्ची और साहसी तथा पूरी चाह होती है। वे अक्सर अपने जीवन के माध्यम से इस प्यार को प्रकट करते थे, जहां उन्होंने पूजा में रत रहते समय आत्मिक भावनाओं की अत्यंत स्थितियों का अनुभव किया, बाह्य दुनिया की सभी जागरूकता को खो देते थे।

स्वामी रामकृष्ण ने भक्ति की विविधता को मान्य किया और उसे सराहा। उन्होंने समझा कि लोगों की विभिन्न प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ होती हैं और वे भगवान के पास अपने हृदय से मिल सकते हैं, जो उनके दिल को प्राप्त होता है। उन्होंने भक्ति को विभिन्न रूपों में वर्गीकृत किया, जैसे माता–पिता का बच्चे के प्रति प्यार (वात्सल्य भक्ति), दोस्तों के बीच का प्यार (सख्य भक्ति), और गोपियों के द्वारा प्रस्तुत स्वार्थहीन प्यार और समर्पण (गोपी

भक्ति)। इस प्रकार के विभिन्न मार्गों की पहचान ने उनकी शिक्षाओं को समावेशी और सभी वर्गों के लोगों के लिए सुलभ बनाया। (भजनान्द, (2013)

स्वामी रामकृष्ण की शिक्षाओं में से सबसे अद्वितीय पहलू में से एक यह था कि वे सभी मार्गों को भगवान की ओर ले जाने की स्वीकृति देते थे। वे सिर्फ प्रवचन नहीं देते थे, बल्कि विभिन्न धार्मिक प्रथाओं, जैसे हिन्दू धर्म, इस्लाम, और ईसाइयत, के अभ्यासों को भी मान्यता देते थे और प्रामाणिक बनाते थे। उन्होंने कई बार कहा कि विभिन्न धर्म भिन्न नदियों की तरह हैं, जो सभी एक ही समुंदर में मिलती हैं, जो भगवान है। इस यूनिवर्सल स्वीकृति के कारण, उनकी शिक्षाएँ सभी धर्मों और पृष्ठभूमियों से आए लोगों को आकर्षित करती थी।

स्वामी रामकृष्ण मानते थे कि सरलता और ईमानदारी सच्ची भक्ति की मूल आधार हैं। वे व्यक्तियों को बिना अहंकार और दिखावे के, एक बच्चे के दिल के साथ भगवान की ओर बढ़ने की प्रोत्साहना देते थे। उन्होंने अक्सर उदाहरण दिया कि बच्चे अपने माता–पिता से बिना किसी आशाओं या गणनाओं के प्यार करते हैं।

दिव्यता के प्रति समर्पण स्वामी रामकृष्ण की भक्ति दर्शनिकता का महत्वपूर्ण हिस्सा था। उन्होंने इसका बलात्कार किया कि भक्त को भगवान के पास पूरी तरह से समर्पित होना चाहिए, जैसे कि एक बिल्ली जो पूरी तरह से अपनी मां पर निर्भर होती है, जिसके द्वारा उसका पोषण और सुरक्षा होती है। यह समर्पण निष्क्रिय नहीं होता है, बल्कि दिव्य इच्छा की सक्रिय स्वीकृति और भगवान के मार्गदर्शन में गहरा भरोसा होता है। वे मानते थे कि वास्तविक समर्पण मुक्ति और दिव्य से मिलान लेता है। (शर्मा, 2008)

भक्ति की जीवन में महत्व :– स्वामी रामकृष्ण की शिक्षाएँ मंदिरों और धार्मिक जनसभाओं की सीमाओं से आगे बढ़ती थीं। वे मानते थे कि भक्ति को व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में घुस जाना चाहिए। उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित किया कि वे अपनी दैनिक दिनचर्या में भक्ति का अभ्यास करें, सभी जीवों के प्रति प्यार और सहानुभूति दिखाएं। दूसरों की सेवा करने और सभी में दिव्य प्रतिष्ठा की पहचान करने का जीवन, उनके लिए भक्ति का सबसे उच्च रूप था। उनका जीवन इस सिद्धांत का प्रतिष्ठान देता था, क्योंकि वे अपने पास आने वाले सभी लोगों की सेवा करते थे, उनके पृष्ठभूमि या धारणाओं के बावजूद। (शर्मा, 2008)

संक्षेप में, स्वामी रामकृष्ण परमहंस की भक्ति पर शिक्षाएँ वे लोगों के लिए एक अकालिक मार्गदर्शक के रूप में काम करती हैं जो दिव्य के साथ एक गहरा जुड़ाव ढूंढ रहे हैं। उनका प्रायण केवल और निष्काम प्यार, विश्वासी और सरलता के महत्व, सर्वसामान्य स्वीकृति, और समर्पण के महत्व पर आधारित है, और आज भी आध्यात्मिक खोजको प्रेरित करता है और मार्गदर्शन करता है। स्वामी रामकृष्ण का जीवन और उनकी शिक्षाएँ भक्ति और प्रेम की शक्ति के प्रमाण हैं, आध्यात्मिक अनुभव और दिव्य के साथ आत्मिक अवबोध और एकता प्राप्त करने के माध्यम के रूप में।

निष्कर्ष :–

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के जीवन और शिक्षाओं ने दर्शन, शिक्षा और सांस्कृतिक आलोचना के क्षेत्र पर एक अमिट छाप छोड़ी है। प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभव और सार्वभौमिकता में निहित स्वामी रामकृष्ण परमहंस का दर्शन, दुनिया भर के विचारकों और विद्वानों के साथ गूंजता रहता है, जिससे वह प्रेरणा और ज्ञान का एक कालातीत स्रोत बन जाते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दर्शनशास्त्र और शैक्षिक विचार भारतीय समाज के लिए

एक महत्वपूर्ण संदेश हैं। उन्होंने धर्म, जीवन, और शिक्षा के माध्यम से आत्मा की एकता की महत्वपूर्णता को बताया और सामाजिक सुधार के लिए सेवा का महत्व भी जागरूक किया। उनके दर्शनशास्त्र और शैक्षिक विचार हमें सच्चे आध्यात्मिक जीवन की ओर मार्गदर्शन करते हैं और व्यक्ति को अपने आत्मा की खोज में मदद करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शर्मा, श्रीराम आचार्य (2008). युग चेतना के सूत्रधार स्वामी रामकृष्ण परमहंस। मथुरा : युग निर्माण योजना।
2. भजनान्द (2013). धर्मों की समानता : श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण से, रामकृष्ण संस्कृति संस्थान, कोलकाता : गोल पार्क।
3. भट्टाचार्य, हरिदास (संपादक) (1993). भारतीय संस्कृति की सांस्कृतिक विरासत (भाग 3)। कोलकाता : रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान।
4. बोधसारानंद (2006). श्री रामकृष्ण की शिक्षाएं। कोलकाता : ट्रिओ प्रोसेस।
5. दासगुप्ता, आर.के. (2001). श्री रामकृष्ण का धर्म । कोलकाता : रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान।
6. दिवाकर, आर.आर (1980). श्री रामकृष्ण परमहंस । बॉम्बे : भारतीय विद्या भवन।
7. हर्षानंद (1996). श्री रामकृष्ण का दर्शनशास्त्र । बैंगलोर : रामकृष्ण मठ।
8. पैरागॉन, शिफमैन (1989). श्री रामकृष्ण, नए युग के एक नबी। न्यूयॉर्क : पैरागॉन हाउस।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 186-188

ज्ञानी देवी के गद्य-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

राजबीर सिंह
हिन्दी शोधार्थी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक।

शोध पत्र सारांश :-

21वीं सदी के साहित्य में ज्ञानी देवी के साहित्य का अपना स्थान है। इनका चिंतन बहुआयामी है। जिससे समाज में मध्यवर्गीय के जीवन को उकेरा है। मध्यवर्ग को परिभाषित किया है जो आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक तथा व्यावहारिक रूप से समता रखते हैं। जिनकी सोच में, कार्य में, व्यवहार में समानता है, जो भारतीय समाज को बदलने की ताकत रखते हैं, ऐसे पात्रों के माध्यम से समाज को नई दिशा देने का यह कार्य हुआ है।

बीज शब्द :- सामाजिक परिवेश, सामंजस्य, संघर्ष, क्रांतिकारी, दुःखदायक, राजनीति, मजदूर, ग्रामीण, संस्कृति, रूढियां आदि।

ज्ञानी देवी समकालीन रचनाकार है जो समाज के हर पहलूओं पर अपनी लेखनी को चलाती है। उनका चिंतन है कि समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है, व्यक्ति के बगैर समाज की कल्पना भी बेमानी है। मानव इस समुद्र रूपी विशाल समाज का एक अणुमात्र है। समाज के द्वारा व्यक्ति में अपनत्व की भावना का विकास होता है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग बन जाता है। जन्म के समय मानव भी मांस का एक लोथडा होता है। जो सामाजिक परिवेश के सम्पर्क में आने पर ही उसमें नये-नये अनुभव, भाव, क्रियाओं का विकास होता है।

मानव के विकास में दो मुख्य अवधारणाओं की भूमिका होती है एक वंशानुगत और दूसरी समाजगत या परिवेशगत। लिखा भी है – ''वंशानुगत अवधारणा को विकसित करने के लिए मनुष्य को समाज का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। इसी समाज के सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए मनुष्य द्वारा ही अर्थ और कर्म के आधार पर वर्ग विभाजन हुआ है। जिसे उच्च वर्ग, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग आदि के नामों से जाना जाता है। इन्हीं के आधार पर समाज में संघर्ष का जन्म भी हुआ है।''[1]

''समाज की संरचना में मनुष्य और प्रकृति के मध्य सामंजस्य होना आवश्यक है। व्यक्ति जन्म से प्रभावशाली नहीं होता अपितु परिस्थितियों में उत्तरोत्तर संघर्ष करते हुए अपने अर्जित और समाजगत अनुभवों से प्रभावशाली बन जाता है। यह प्रभावशाली व्यक्ति मध्यवर्ग से निकलकर आता है, जो न अमीर है और गरीब है। वह बीच की श्रेणी को परिभाषित करता है और वही सम्पूर्ण समाज का कर्णधार भी है।''[2]

''मध्यवर्ग वह है जो अमीरी और गरीबी के बीच की कड़ी है। मार्क्स ने जिसे सर्वहारा से उपर की संज्ञा दी। ये वर्ग सर्वाधिक मौलिक और क्रांतिकारी वर्ग है। समाज को बदलने की क्रांति लाने की अगर किसी वर्ग में क्षमता है तो वह मध्यवर्ग है।"[3]

21वीं सदी की लेखिका ज्ञानी देवी ने अपने चिंतन से मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है। समाज में गरीबी बहुत बड़ा अभिशाप तो है ही परन्तु इसमें मध्यवर्ग की पीड़ा भी दुःखदायक है। ऑटो रिक्शावाला मध्यवर्ग तबके से संबंध रखता है; वह सवारियों के लालच में बैठा हुआ है। उसके यथार्थ को रचनाकार ने इस तरह बयां किया है – '' अरे! आ तो चुकी हैं आठ सवारियाँ, अब और कहाँ बिठायेगा!

''जल्दी चलो! मुझे दफ्तर ने देर हो जायेगी।"

''मैडम! मैं आपकी देर की वजह से अपने पेट पर लाठी तो थी मार सकता ना।"[4]

बेटियाँ अपने माता–पिता की शान होती हैं। वह संघर्ष करके आगे बढ़ती है। क्योंकि संघर्ष ही जीवन की असली सीढ़ी हैं। उनकी खुशी से सारा परिवार खुश रहता है। समय पर जब बेटी की शादी हो जाती है तो उनका दायित्व बढ़ जाता है। इसी संदर्भ में लेखिका ज्ञानी देवी ने यथार्थ रूपी वर्णन किया है – ''बेटियों के लिए मायके से बढ़कर कौन सी जगह होगी जहां स्वर्ग का सुख हो। खासकर अगर माता–पिता जिन्दा हो और उनकी गाँठ भी मजबूत हो तो?''[5]

मध्यवर्गीय व्यक्ति को समाज में अनेक वर्गगत समस्याओं से रूबरू होना पड़ता है। कठोर जाति बन्धन, रीति–रिवाज, रूढ़ियां, परम्पराएँ सभी प्रकार की संस्कृति को मध्यम वर्ग ने जीवित रखा है।

देखिए ''मध्यवर्ग, समाज का संवेदी वर्ग माना जाता है। अस्तित्व की लड़ाई के लिए मध्यवर्ग हमारे समाज की रीढ़ का प्रतीक है। उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच हमेशा पिसता रहता है। इसी संदर्भ में ज्ञानी देवी जी के साहित्य का मध्यवर्ग स्वयं भोग्य वर्ग रहा है। उन्होंने आंचलिक, कस्बाई, नगरीय एवं महानगरीय जीवन को बहुत ही गहनता से जाना, समझा और भोगा है। मध्यवर्ग तमाम सांस्कृतिक प्रतिबन्धों से ओत–प्रोत हैं। जब यह अपने परिवेश से बाहर अवसर की तलाश में निकलता है। तब वह अपने इन तथाकथित थोपे हुए संस्कारों को परे धकेल देता है। बाहरी दुनिया जाति धर्म से परे हैं वहां पैसे कमाने के लिए ब्राह्मण होकर भी साफ–सफाई का कार्य कर लेंगे, तो यह सब जीवनोपार्जन है।"[6]

महान चिंतक अरस्तु की परिभाषा – ''राजनीति की जड़ें मनुष्य की भावना से जुड़ी हैं। यही कारण है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति के विविध आयाम जुड़े हैं ग्रामीण समाज के मध्यवर्ग की राजनीति परस्पर दलबन्दी, पंचायती चुनाव की अखाड़े बाजी, किसान सभा, मजदूर सभा आदि विविध रूपों ने देखी समझी जाती हैं। जो मध्यवर्गीय जीवन पर असर डालती हैं।"[7]

समकालीन रचनाकार ज्ञानी देवी जी के साहित्य ने मध्यवर्गीय नारी के सन्त्रास को उकेरा है। उनके अधिकांश साहित्य का केन्द्र स्त्री ही रही है। प्रत्येक वर्ग में आने वाली स्त्री को घर की, परिवार की जिम्मेवारी संभालने वाला ही माना गया है। परिवार की नींव रखने वाली स्त्री वर्तमान समाज की बड़ी से बड़ी जिम्मेदारी को संभाल रही है। मध्यवर्गीय स्त्री समाज, जीविकापार्जन हेतु धनोपार्जन भी करती हैं। कामकाजी नारी घर और कार्य स्थल को बखूबी से संभाल रही है। स्त्री पर परिवार और समाज की एक साथ ही दो जिम्मेदारियों का बोझ है उसके ऊपर परिस्थिति के साथ–साथ भूमिकाएं भी बदली हैं, साथ में उत्तरदायित्वों का बोझ भी सुरसा सा

मुँह फैलाए खड़ा है। इन सबसे सामंजस्य बैठाकर स्त्री अपने कार्य को गति दे रही है।

देखिए इस संसार की असामान्य शक्ति स्त्री है। वह स्वाभिमानी है। अपनी लड़ाई स्वयं लड़ती है। जीवन में संघर्ष करती रहती है। समकालीन रचनाकार ज्ञानी देवी ने सलोनी नाम की पात्र पारिवारिक अन्याय का विरोध करती है, क्योंकि परिवार में इज्जत के नाम पर उसका शोषण होता है। इसी प्रकार से वह अपने स्वाभिमान को बचाने के लिए अन्याय के प्रति गहरा विरोध प्रकट करती है। क्योंकि उसे बाल्यावस्था से ही अपने भविष्य के बारे में और ससुराल के बारे में अनेक स्वप्नों को संजोती रहती है। उन्हीं स्वप्नों के मध्य अपनी बाल्यावस्था को गुजारती है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती है – ''बुआ है यह मेरी, सी अपनी भतीजी को कुएं में डालेगी? बाबू के भरोसे तो अब तक.....इससे बढ़िया रिश्ता तो उन्हें दीया लेकर ढूंढने पर भी .....?''[8]

देखिए आज के दौर में मध्यवर्गीय स्त्री आर्थिक रूप से स्वतन्त्र और सशक्त तो हो गई है पर मानसिक और भावनात्मक रूप से टूट रही हैं, बिखर रही हैं। परिवार की सृजनहार नारी के परिवार टूट रहे हैं। विवाह संबंधों में तलाक जैसे मामलों में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

निष्कर्ष :-

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि मध्यवर्गीय जीवन शैली तथा संस्कृति में प्रेम और काम से पीडित होना, पारिवारिक विघटन, स्वार्थपरक सम्बन्ध बिखराव, आर्थिक स्थिति, नारी के प्रति असम्मान आदि बिन्दुओं के माध्यम से समकालीन रचनाकार ज्ञानी देवी ने समाज के सामने मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थ रूप से चित्रित किया है।

संदर्भ :-

1. डॉ. मुकेश कुमार, मनोहर श्याम जोशी का मध्यवर्गीय चिंतन, पृ. 162
2. वही, पृ. 69
3. वही, पृ. 45
4. ज्ञानी देवी, बौने होते किरदार, पृ. 13
5. वही, गुरु दक्षिणा, पृ. 30
6. डॉ. मुकेश कुमार, ज्ञानी देवी का साहित्यिक चिंतन, पृ. 9
7. वही, पृ. 8
8. ज्ञानी देवी इज्जत, पृ. 07

ईमेलः rajbeerkaul@gmail.com

Mob- No- : 9466239355

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 11-12
पृष्ठ : 189-194

चंद्रसेन विराट के गीत और समाज

शिवानी
शोधार्थी हिन्दी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।

सभी विद्वजन जो विपरीत विचारधाराओं के साथ साहित्य जगत में अपना सशक्त हस्ताक्षर किए वे सभी एक विषय पर एकमत है वह है – हितेन सहितम् अर्थात जो हित साधन करता है, वह साहित्य है। साहित्य आर समाज एक दूसरे से जुड़े हुए है। समाज साहित्य को कथ्य प्रदान करता है और साहित्य – समाज को दिशा देता है। उद्देश्यपूर्ण साहित्य लोकमंगल का विधान करती है। साहित्य में समाज या जीवन की अभिव्यक्ति कल्पना और यथार्थ के सम्मिश्रण से होती है। साहित्य सुंदर है इसलिए कल्पना का सहारा लेना पड़ता है वह इतिहास की तरह ठुंठ यथार्थ नहीं रखता।

हिन्दी साहित्य का सिंहावलोकन करने पर साहित्य और समाज के संबध का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। आदिकाल में श्रृंगार और वीर रस का ससो साहित्य में उल्लेख हुआ है जो तत्कालीन समाज की अभिव्यक्ति करती है। भक्तिकालीन साहित्य ने भारत की हताश जनता को भक्ति के रस में डूबोया। संपूर्ण रीतिकालीन साहित्य समाज की विलासप्रियता का घोतक है। आधुनिक काल के साहित्य समाज की विभिन्न समस्याओं, विचारधाराओं, आदर्शों, समाधानों को लेकर आगे बढ़ रही है।

गीतों में विराट का भावबोध सामाजिक– जीवन के परिवेश का सूक्ष्म संवेदनग्राही चित्र प्रस्तुत करता है मुक्तिबोध ने भी कहा है कि जीवन–जगत के संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन में समायी हुई आलोचना वृद्धि के बिना कवि–कर्म–अधूरा है। विराट भी भारतीय सामाजिक जीवन से गहरे जुड़े हुए है। समाज का स्वास्थ्य व सकारात्मक वर्णन के साथ ही उसकी विसंगतियों का भी वर्णन विराट ने किया है। श्रीमती हेमलता भट्ट के शब्दों में ''विराट एक कवि होने के नाते हर तरह से भारतीय समाज से सीधे जुड़े है। कवि मन समाज में होने वाले हर सूक्ष्म परिवर्तन को महसूस करता है और अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। हमारे वास्तविक सामाजिक जीवन का चित्रण विराट ने अपने काव्य में बखूबी किया है।[1] ''परिवार समाज का प्रथम सोपान होता है। समाज की तरह परिवार भी व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। चन्द्रसेन विराट ने अपने संग्रहों को परिवार के सदस्यों को समर्पित किया है।

भारतीय समाज में स्त्री की कामना रहती है कि वह मातृत्व प्राप्त करें। मातृत्व प्राप्त करने पर ही समाज एवं परिवार में उसको सम्मानजनक स्थिति प्राप्त होती है। विराट इसी भावना को व्यक्त करते हैं कि स्त्री माँ बनने पर माता के चौक पर दीप प्रज्ज्वलित करने का संकल्प लेती है। अपने हृदय मे वात्सलय प्रेम के आलम्बन रूपी पुत्र के लिए वह लालयित है। वह अपने बेटे को दूल्हा बनने तथा चाँद सी बहू लाने का स्वप्न देखती है। अपने

बेटे के कंधे पर चढ़कर ही वह इस संसार से विदा लेना चाहती है :–

''कौन मुझे गंगाजल देगा मेरी मिट्टी पूज कर?
कौन रखेगा तुलसी मुख में भीगी पलके पोंछकर?
कौन करेगा श्राद्ध कही फिर धूप दीप भी कौन दे।
किनके कंधो चढ़कर जाऊँगी मै इस संसार से?[2]

स्त्री की कामना मातृत्व प्राप्ति की होती है। बालक समाज निर्माण की भूमिका में देश का भविष्य होते हैं। इसलिए विराट 'अच्छे बालक गीत' में अच्छे बालक को सूर्यादय से पहले उठने की तथा माता – पिता के चरण स्पर्श के पश्चात् ईश्वर के आगें सिर निवाने का आदर्श प्रस्तुत करते है। नित्यकर्म के पश्चात् विद्याध्यन तथा घर के कार्यों में हाथ बंटाने की सलाह देते हैं। अच्छे बालक सदैव बड़ों का आदर तथा सबका हुक्म बजाते हैं।

''सूरज उगने से पहले ही विस्तर से उठ जाते है
माता पिता के चरणों को छू प्रभु को शीश नवाते हैं
संध्या को जो खूब खेलकर मंदिर को भी जाते हैं
ऐसे रहने वाले बालक सब अच्छे कहलाते हैं।''[3]

गीतकार विराट परिवार जो समाज का प्रथम सोपान है। उसमें आदर्श बालक के प्रतिमान रखने के साथ ही प्रत्येक शिशू जो आगे चलकर सामाजिक नागरिक बनेंगे उनके लिए माला उन्हें लोरी के माध्यम से प्यारे, राजदूलारे तथा आँखों का तारा कहकर संबोधित करती है। उसके लिए अनगिनत दुआएँ माँगती है –

''चाँदी की हों रातें तेरी
तेरी सोने से दिज आयें
सदा सुखी हो तू जीवन में
मेरी उमर तुझे लग जाये।''[4]

औधोगिकीकरण ने मनुष्य को भी एक यंत्र की भांति बना दिया है। सर्वत्र भौतिकता के परिवेश में मानवीय संवेदनाएँ भावनाएँ, नैतिक मूल्य का कोई महत्व नहीं रहा। सभ्यता और आधुनिकता की आड़ में वातावरण अशुद्ध हो गया है। मन जब रुग्न हो तो बिना वह स्वस्थ्य हुए वातावरण कभी स्वस्थ्य नहीं होगा –

''आज कल्मष मनुज में वहीं
लाख उजले दुख हों वसन।
भावना को कुचलता गया।
आदमी का मशीनीकरण। ''[5]

डॉ० कृष्ण गोपाल मिश्र ने विराट की सामाजिक चेतना का वर्णन करते हुए लिखा है कि ''समीक्ष्य युग की सामाजिक स्थितियों पर विचार करें तो स्पष्ट होता है, कि इस युग में व्यक्तिवादी चिन्तन ने माननवीय उदारता का पथ अवरूद्ध कर दिया है। 'वसुधैवकुटुम्बकं' का भाव तो दूर मनुष्य अपने कुटुम्ब को ही स्वीकार नहीं कर पा रहा है। पारिवारिक विघटन, एकल परिवारों की बढ़ती संख्या और विवाह विच्छेद के लिए नए प्रकरण इस मानवीय विखराव के साक्षी है। श्री विराट की सामाजिक चेतना व्यक्ति विघटन की इस त्रासदी को इस प्रकार रेखांकित करती है –

''कौन हुए हैं कब किन के
उड़े सभी आँधी मे तिनके
हवा फिरी सबने खख फेरे
सिमट गये रिश्तों के घेरे
जन्मों के वादे थे जिनके
वे साथी निकले पल छिनके।''[6]

मनुष्य ऐसे वातावरण में अपने अस्तित्व की चिंता करने लगता है। वह दुःख, ऊब, संत्रास व कुंठित हो जाता है। उसे लगता है जीवन में कहीं भी खुशी नहीं है। एक ही दिनचर्या व संदिग्ध वातावरण में वह अपने भविष्य को लेकर चिंतित है। रिश्तों में प्रेम या रस नहीं रह गया बल्कि औपचारिकता का निर्वाह है। आधुनिक युग मे गले मिलना प्रेम का प्रतीक न होकर औपचारिकता का निर्वाह है। विराटजी की चिंता है कि भगवान की पता नहीं क्या मर्जी है? सुबह का समय जो उत्साह और स्फूर्ति से भरा होता था आजकल वह अब से भरी होती थी, दोपहर घुटन और शाम में उदासी छाई रहती है।

''सिर्फ औपचारितका भर है
रस ही कहाँ रहा रिश्तों में
एक उम्र जीने की खातिर
रह रहकर मरना किश्तों में।''[7]

प्रेम के भी कई रूप होते है। कुछ प्रेम समाज में साकार हो जाते हैं, कुछ प्रेम के लिए समाज ही पहाड़ के रूप में खड़े हो जाते हैं। प्रेमी और प्रेमिका समाज के मूल्यों पर अपने प्रेम का त्याग कर देते हैं। आजीवन विरह जो समाज द्वारा देय है उसे भोगते हैं। समाज में उसकी अभिव्यक्ति तक नहीं करते। विराट अपने गीतों में मर्यादित प्रेम की विवाह–बेला में प्रेयसी की विदाई का वर्णन उसे आशीष देते हुए करते हैं –

'' देता है दुआ हृदय से
हारा जो जिठुर समय से
तेरे घर चंदा सूरज
चौपड़ खेले कंचन की।''[8]

शिक्षा पूँजी की दासी हो गई है। शिक्षा समाज का बहूमूल्य तत्व है। इसकी पहुँच सभी विद्यार्थियों तक होनी चाहिए किंतू समाज ने उसे दो भागों मे बाँट दिया है। सरस्वती लक्ष्मी साथ है, किन्तु जहाँ लक्ष्मी का अभाव है वहाँ सरस्वती भी नहीं है। शिक्षा कुबेर का खजाना रखनेवालों के पास चली गई। निजीकरण एवं व्यावसायिकरण आने से समाज का एक बड़ा वर्ग जो गरीब है, शिक्षा से बहुत दूर पहुँच गया है। समाज में शिक्षा मे भेदभाव से आर्थिक विषमता परिलक्षित हो रही है। जो लक्ष्मीपति है वे महंगी शिक्षा प्राप्त कर उच्च पदों पर आसीन होते है किंतु जो गरीब छात्र है वे प्रतिभावान होते हुए भी मंहगी शिक्षा नहीं पा सकते –

''महँगी शिक्षा से वंचित
प्रतिभाएँ कितनी अस्त है
पर कुबेर पूँजी का अभी भी

शोषण का अभ्यस्त है।''[9]

रामगोपाल परदेसी के शब्दों में ''एक समर्थ कवि अपने परिवेश में उपलब्ध सभी विषयों को स्पर्श करता है। उन्हें स्वर देता है। उन्हें जींवत करता है। किन्हीं खास विषयों के प्रति उदासीन हो जाये– ऐसा नहीं होता। उसका भीतरी कवि समभाव से सभी दृश्यों से अभिभूत होता है एवं अपनी लेखनी से उकेरता है।''[10] कवि 'मिलजूल के काम' नामक गीत में मेहनत करने का आह्वान करता है। समाज में सभी मिलकर मेहनत करेंगे तो मंजिल स्वयं चलकर कदमों के पास आयेगी। अपनी तकदीर मनुष्य मेहनत करके ही बदलता है। मेहनत से ही धरती बैकुंठ में परिवर्तित हो जाएगी –

''मिल जुल के वतन बनाये चलो
धरती पै बैकुंठ लायें चलो
मिलजुल के आओ उठायें कसम
आराम है अब हराम।''[11]

गीतकार समाज–निर्माण से पूर्व आत्म–निरीक्षण करने का संदेश देते हैं कि उस दिन की याद करो जब हमने अपनी जागीर जंजीर तोड़कर प्राप्त की। वो उन शपथों को याद करते हैं जो आजाद भारत में स्वतंत्र नागरिकों ने एक साथ ली थी। सभी मिलकर नवनिर्माण करेंगे। नया हिन्दुस्तान की रचना करेंगे। देश भले ही राजनीतिक आजादी प्राप्त कर लिया किंतु अभी अविधा, भूख, गरीबी, भाषा के प्रश्न सामने खड़े हैं। वो जागकर आत्म–निरीक्षण करने को प्रेरित करते हैं –

''आत्म–निरीक्षण किया अगर तो जागकर
झूठा मन का दंभ, अहम् को त्यागकर
सूरज को रखकर गवाह अंगड़ा उठो
बिसरा दो जो शपथें फिर दुहरा उठो।''[12]

सामाजिक के पतन के बावजूद विराट आशावादी हैं। वे निराशा से परास्त नहीं है। देश सँवरता जाता है, कविता में युवा समाज की प्रशंसा करते हैं जो अपने शोणित से देश को सँवारते हैं। देश में निर्माणों की नींव पड़ी है, यह सर्जन की बेला है। समाज करवट ले रहा है। समाज में दानवता नहीं मानवता की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित होगी। समाज स्वस्थ होगा–

''मानवता की सभा जुड़ी है जीवन पर्व मनायेगा
अब कोई भी इस धरती पर शोणित बेच न पायेगा।
धर्म न्याय का पहरा है अब जगजीवन के आँगन में
नर भक्षी दानव का साहसा आज सिहरता जाता है।''[13]

आवाज न दो गीत में कवि ने उन तमाम प्रश्नों को सामने खड़ा कर दिया है जो आज की जर्जर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थिति के लिए जिम्मेदार है। गीतकार ने स्पष्ट कहा है कि आज के सरकार का जनता से कोई सरोकार नहीं है। वे सिर्फ पदभार ग्रहण करते है। अपनी जयकार सुनते है, उन्हें कब फुर्सत होती है कि वे फरियाद सुने। नेताओं के लिए उनकी भगवान कुर्सी में है। इन लोगों ने अपने देश के लिए कोई त्याग नहीं किया है। इन्होंने अखबार तक को खरीद लिया। जनता के लिए वे पहरेदार स्वरूप थे इन्होंने जनता

को ही बेच दिया। अफसरों की अलग जात है। जनता को रोटी न मिले मगर इनके पकवान अलग ही पकते हैं। महँगाई बढ़ने से समाज में आभाव का नजारा है। नागरिकों के हाथ भी मजबूत है मगर उन्हें कोई काम नहीं मिलता। देश के खेवनहार के पास कोई दिशा नहीं है –

'' नैया है खेबनहार नहीं
कुछ दिशा नहीं है, द्वार नहीं
यह देश जवानी में जिसकी
है शक्ति मगर संस्कार नहीं।''[14]

डॉ० कृष्ण गोपाल ने लिखा है '' मंत्रियों और ऊँचे – ऊचे पदो पर पदासीन सर्वसुविधा सम्पन्न जनों को नये–नये घोटालो में लिप्त पाया जाना चंद वर्षों में अपार सम्पत्ति बटोर लेना भारतीय समाज में नैतिक मानवीय, मूल्यों के पतन का प्रमाण है। कहा जाता है कि बुभुक्षित किं न करोति पापम' अर्थात् भूखा व्यक्ति क्या पाप नहीं करता किन्तु यहाँ तो भूखे पेट वालों से भरे पेट वाले अधिक पाप कर रहे हैं।''[15]

समाज के विकास अर्थव्यवस्था के विकास पर टिका है। इसलिए नीति निर्माता ने पंचवर्षीय योजनाएँ लागू की। किंतु इन योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए जो राशि दी जाती है। वे प्रत्येक सोपने पर बैठे सरकारी कर्मचारी अपनी जेबों में भर लेते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य मदों पर पैसे की निकासी होती है किन्तु उसकी वस्तुस्थिति का वर्णन करते हुए विराट कहते हैं कि –

''दिल्ली से गाँवों तक आते रूपया पैसे रह जाता
कई दरारें, जिनमें पानी चुपके–चुपके बह जाता
यह विकास का धन, हर स्तर पर जिसकी टपकण भारी है।''[16]

समाज निर्माण में नारी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है विराट का गीत एवं संसार नारी चेतना से संपृक्त है। नारी की वस्तुस्थिति कितनी दयनीय है, इसकी अभिव्यक्ति उनके गीतों में हुई है। गर्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त तक उसका शोषण ही होता है। आधुनिकता नारी – जीवन का अभिशाप ही बन गयी है। वह शोषण की दोहरी मार झेल रही है। घर –बाहर दोनों जगह वह दोयम दर्ज पर ही नहीं बल्कि हाशिए पर है। चंद्रसेन विराट इसकी अभिव्यक्ति निम्न शब्दों में करते हैं –

''अबला, अबला बनी आज भी भरे आँख में पानी है
विज्ञापन का साधन, उसकी मनोव्यथा बेमानी है
नारी अब भी पहले जैसी शोषित है, दुखियारी है।''[17]

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि चंद्रसेन विराट ने समाज के सभी पहलुओं का रेखांकन किया है। विराट का समाज हो या वर्त्तमान समाज आज भी उन प्रश्नों से उलक्षा हुआ है विराट सिर्फ भारतीय सामाजिक समस्याओं को ही नहीं रखते वरन उनका निराकरण भी करने का प्रयास करता है। विराट के सामाजिक गीत भारतीय सामाजिक चिंतन से एकाकार हुई दिखती है।

संदर्भ–ग्रंथ :–

1. हेमलता भट्ट, विराट विमर्श. डॉ० अनन्तराम मिश्र (सम्पादक, लोकवाणी संस्थान, दिल्ली, 2004 ई०, पृष्ठ 237
2. चंद्रसेन विराट, मेहंदी रची हथेली, गिरधर प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष. 1965, पृष्ठ 15

3. चंद्रसेन विराट, स्वर के सोपान, भारती प्रकाशन, बम्बई, 1969 ई०, पृष्ठ 168
4. चंद्रसेन विराट, स्वर के सोपान, भारती प्रकाशन, बम्बई, 1969 ई०, पृष्ठ 155
5. चंद्रसेन विराट, ओ मेरे अनाम, लोक चेतना प्रकाशन, दिल्ली, 1968 ई०, पृष्ठ 35
6. चंद्रसेन विराट, किरण की कशीदे, सरल प्रकाशन, दिल्ली, 1974, पृष्ठ 33
7. चंद्रसेन विराट, किरण की कशीदे, सरल प्रकाशन, दिल्ली, 1974, पृष्ठ 59
8. चंद्रसेन विराट, पीले चावल द्वार पर, ममता प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977 ई०, पृष्ठ 54
9. चंद्रसेन विराट, मिट्टी मेरे देश की, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978 ई०, पृष्ठ 69
10. चंद्रसेन विराट, मिट्टी मेरे देश की, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978 ई०, एन्वेलप पर
11. चंद्रसेन विराट, मिट्टी मेरे देश की, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978 ई०, पृष्ठ 27
12. चंद्रसेन विराट, मिट्टी मेरे देश की, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978 ई०, पृष्ठ 88
13. चंद्रसेन विराट, मिट्टी मेरे देश की, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1978 ई०, पृष्ठ 77
14. चंद्रसेन विराट, भीतर की नागफनी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977 ई०, पृष्ठ 17
15. डॉ० कृष्णगोपाल मिश्र, चंद्रसेन विराट का काव्य, समान्तर प्रकाशन, उज्जैन, 2006, पृष्ठ 191
16. चंद्रसेन विराट, सन्नाटे की चीख, संवेदन प्रकाशन, कासीमपुरा, पॉवर हाउस, अलीगढ़, 1996, पृष्ठ–88
17. चंद्रसेन विराट, सन्नाटे की चीख, संवेदन प्रकाशन, कासीमपुरा, पॉवर हाउस, अलीगढ़, 1996, पृष्ठ–90

पता : 474 /D, रोड नं० 1, अशोक नगर, राँची. 834002
ई.मेल : shivanip1010@gmail.com
मो० : 8092282931

Impact Factor : 2.636
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/चिकित्सा/ पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा/ मानविकी/कला/ सामाजिक विज्ञान/ पुस्तकालय/शिक्षा/ शारीरिक शिक्षा/ वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर सम्पादकीय कार्यालय 6-एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान-335001 से वितरित की।

ISSN 2321:8037